हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक: हरिकृष्ण प्रेमी के विशेष सन्दर्भ में

HISTORICAL DRAMAS IN HINDI (KHADIBOLI) WITH SPECIAL REFERENCE TO HARIKRISHNA PREMI

by

P. A. SHEMIM

पी. ए. षमीम

Supervisor :

DR. N. E. VISWANATH AIYER

Professor & Head of the Deparment of Hindi

University of Cochin, Cochin-22

THESIS SUBMITTED TO THE UNIVERSITY OF COCHIN FOR THE DEGREE OF DOCTOR OF PHILOSOPHY

1977

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by P.A. Shemim under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
University of Cochin
Cochin 22

Dr. N.E. VISWANATHA AIYAR,
M.A.(Hindi & Sanskrit)
Ph.D
Supervising Teacher.

ACKNOWLEDGEMENT

The work was carried out in Department of Hindi, University of Cochin, Cochin - 22 during the tenure of scholarship awarded to me by the University of Cochin. I sincerely express my gratitude to the University of Cochin and the University Grants Commission for this kind help and encouragements.

March 1977

P.A. SHEMIM.

प्रा क्क थ न

प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय " हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक : हरिकृष्ण प्रेमी के विशेष संदर्भ में " है। हिन्दी साहित्य में रचे गये ऐतिहासिक नाटकों की संख्या बहुत अधिक है। इस प्रबन्ध में समस्त ऐतिहासिक नाटकों या नाटककारों पर विस्तारपूर्वक लिखने का अवसर नहीं रहा। प्रबन्ध के विस्तार के भय से तथा अनावश्यक विस्तार से बचने के लिए अत्यन्त सामान्य कोटि की महत्वहीन रचनाओं को छोड़ दिया गया है। हिन्दी नाट्यक्षेत्र में प्रमुख ऐतिहासिक नाटककारों के रूप में जिन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है उनके सारे नाटकों की मुख्य प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का स्वतंत्र निरूपण भी किया गया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिभा सम्पन्न महान कलाकार स्वर्गीय हरिकृष्ण प्रेमी का स्थान नाट्यक्षेत्र में अप्रतिम है, ऐतिहासिक धारा के नाटककारों में उनका स्थान अन्यतम है। इस प्रबन्ध में हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों के भावपक्ष पर ही सारा ध्यान केन्द्रित किया गया है।

शोध की दृष्टि से प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों का क्षेत्र अपूर्ण है। इन्दौर विश्वविद्यालय में राजेन्द्रकुमार ने ' हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन ' नामक विषय पर तथा मेरठ विश्वविद्यालय में श्री श्यामनाथ ने "हरिकृष्ण प्रेमी - व्यक्तित्व और कृतित्व" विषय पर शोध कार्य किया है। ये दोनों शोधग्रंथ अप्रकाशित हैं। प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों का क्रमविकास, शिल्प, नाटकीय कलात्मकता, आदि स्तरों पर कुछ विद्वानों ने विचार प्रकट किए हैं। लेकिन उनके नाटकों के भावपक्ष को समझने का प्रयास प्रायः नहीं किया गया है। यह कहना असंगत न होगा कि इस अभाव ने ही, प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों के भावपक्ष पर विशेष ध्यान देने के लिए मुझे प्रेरित किया।

यह प्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त है।

पहला अध्याय है - 'इतिहास और ऐतिहासिक नाटक'। इतिहास का शाब्दिक अर्थ एवं इतिहास की परिभाषा देते हुए साहित्य के परिप्रेक्ष्य में इतिहास प्रकरण के प्रयोजन का उल्लेख है। इतिहास एवं साहित्य में तथा इतिहासकार एवं नाटककार में जो साम्य एवं वैषम्य दिखाई पड़ता है, उसका भी स्पष्टीकरण किया गया है। ऐतिहासिक नाटकों के स्वरूप दर्शन के साथ ही वर्गीकरण एवं प्रेरणा स्रोत का विवेचन भी है।

दूसरा अध्याय है : 'हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक : उद्भव और विकास।' इसमें हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों के प्रारंभ एवं विकास का परिचय है। ऐतिहासिक नाटकों का विकासात्मक अध्ययन तीन कालों में विभाजित है तथा प्रत्येक काल के ऐतिहासिक नाटकों का परिचय भी है।

तीसरा अध्याय है 'हरिकृष्ण प्रेमी : जीवन रेखा, व्यक्तित्व और कृतित्व।' यहाँ प्रेमी का व्यक्ति एवं साहित्यकार के रूप में परिचय मिलता है। किसी लेखक का उपयुक्त अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि उसके दृष्टिकोण और कृतित्व की विशिष्टता को समझ लिया जाय। अतएव इस अध्याय में साहित्य के प्रति प्रेमी के दृष्टिकोण एवं उनके व्यापक कृतित्व की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है।

उपर्युक्त अध्यायों के आधार, मैं ने हिन्दी साहित्य तथा नाटक के इतिहास लेखकों की रचनाओं से प्राप्त किये हैं।

चौथा अध्याय है - 'हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीयता।' राष्ट्रीयता का अर्थ एवं परिभाषा तथा राष्ट्रीयता के विभिन्न तत्वों का निरूपण किया गया है। यह अनुसंधान और स्वतंत्र विश्लेषण के फलस्वरूप प्राप्त सामग्री पर आधारित है।

पाँचवाँ अध्याय है : 'हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में समसामयिक सामाजिक विचार।' साहित्य और समाज के पारस्परिक संबन्ध को बताते हुए प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में चित्रित विभिन्न सामाजिक समस्याओं तथा उनके समाधान का विश्लेषण किया गया है। लेखक ने कहीं कहीं युग के अंतर को पार कर अपने समय की समस्याओं को भी ऐतिहासिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में बतलाने का प्रयत्न किया है।

छठा अध्याय है : 'हरिकृष्ण प्रेमी के में ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व।' यह इस प्रबन्ध का सबसे प्रधान अध्याय है। इतिहास और नाटकीयता इन दोनों के संदर्भ में ही ऐतिहासिक नाटकों की आत्मा को समझा जा सकता है। प्रेमी के नाटक इतिहास और नाटकीय कला इन दोनों दृष्टियों से एकदम उत्कृष्ट है। उनके नाटकों को ऐतिहासिक घटना-कालक्रम के अनुसार विभाजित करते हुए उन्हें तीन कालों - प्राचीन काल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल - में रखा गया है और उनमें चित्रित इतिहास तत्व का विस्तृत एवं विशद विवेचन भी किया गया है। इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय इतिहास के किस काल ने हरिकृष्ण प्रेमी को अधिक प्रेरित किया। इन नाटकों के ऐतिहासिक तत्व का परीक्षण प्रामाणिक इतिहास ग्रंथों की कसौटी पर किया गया है। इसी अध्याय को मैं अपना विनीत योगदान मानती हूँ। जहाँ तक मुझे विदित है शोधक्षेत्र में और किसीने इस पक्ष पर प्रकाश नहीं डाला है।

उपसंहार में, ऐतिहासिक नाटककार के रूप में प्रेमी का मूल्यांकन है। मैं यह भी जोड़ देना चाहती हूँ कि प्रत्येक अध्याय के अन्त में तत्संबन्धी अध्ययन का सार निष्कर्ष रूप में देने की कोशिश मैंने की है।

इस शोध प्रबन्ध का प्रणयन कोचिन विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय डा॰ विश्वनाथ अय्यर के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में,

उन्हीं की प्रेरणा तथा उन्हीं के निरन्तर प्रोत्साहन के फलस्वरूप संपन्न हुआ है। मैं उनके प्रति श्रद्धा और आभार से नत हूं।

कोचिन विश्वविद्यालय ने छात्रवृत्ति देकर इस शोध कार्य में मुझे आर्थिक सहायता प्रदान की है, तदर्थ उसका मैं अत्यन्त आभार मानती हूं।

मैं उन सभी विद्वानों तथा लेखकों के प्रति कृतज्ञ हूं जिनकी रचनाओं तथा विचारों से मुझे यह प्रबन्ध लिखने में सहायता मिली है। कृतज्ञता ज्ञापन के इस अवसर पर हिन्दी विभाग पुस्तकालयाध्यक्ष श्रीमती कुंजिक्कावुट्टी तम्पुरान एवं लाइब्रेरी असिस्टेंट श्री पी॰के॰रामचन्द्रन की कृपा की स्मृति भी आवश्यक है जिन्होंने मुझे अध्ययन की सुविधा तथा पुस्तकों की प्राप्ति में सहायता दी।

अन्त में मैं उन सभी महानुभावों के प्रति आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने यह शोधप्रबन्ध तैयार करने में कुछ न कुछ सहयोग दिया है।

शमीम

।

अ नु क्र म

विषय - प्रवेश — पृ. 10-21

नाटक की महत्ता - विभिन्न विद्वानों के मत - ऐतिहासिक नाटक की महत्ता - हिन्दी नाट्यक्षेत्र में अनुसंधान - ऐतिहासिक नाटक और अनुसंधान कार्य - प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय के अध्ययन की आवश्यकता ।

अध्याय - 1 :: इतिहास और ऐतिहासिक नाटक :: — पृ. 22-69

इतिहासः शाब्दिक अर्थ - इतिहास की व्याख्या एवं उसका स्वरूप - भारतीय विद्वानों की इतिहास संबंधी विचारधारा - डा. राजेन्द्र प्रसाद ; श्री गोपाल दामोदर तामसकर; डा. राधाकुमुद मुकर्जी; डा. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा; शचीरानी गुर्टू - पाश्चात्य विद्वान - निकोलाई बेर्दियेफ - टर्नर; वाल्तेर; ट्रेवल्यान ; साहित्य शाब्दिक अर्थ - साहित्य की व्याख्या - भारतीय विद्वान ; गणपतिचन्द्र गुप्त; गुलाबराय ; डा. रामकुमार वर्मा ; मुंशी प्रेमचन्द ; गंगा प्रसाद पांडेय; - पाश्चात्य विद्वान हेनरी हडसन ; टामस कार्टन; शिलर - इतिहास और साहित्य का संबंध इतिहास और साहित्य में साम्य - इतिहास और साहित्य में वैषम्य - इतिहासकार और नाटककार - ऐतिहासिक नाटक : परिभाषा एवं स्वरूप - ऐतिहासिक नाटक : प्रेरणा और उद्देश्य - ऐतिहासिक नाटक के प्रमुख तत्व - कथानक , चरित्रचित्रण, भाषा - वातावरण - ऐतिहासिक नाटक - वर्गीकरण - वर्गीकरण के विभिन्न आधार - (1) नाटक में इतिहास को अपनाने की विधि : विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक ; मिश्रित ऐतिहासिक नाटक, काल्पनिक ऐतिहासिक नाटक - (2) नाटक में स्वीकृत इतिहास काल : प्राचीन कालीन ; मध्यकालीन एवं आधुनिक का-

लीन ऐतिहासिक नाटक (3) विषयवस्तु या वर्ण्य विषय की दृष्टि से : घटना प्रधान एवं चरित्र प्रधान - निष्कर्ष ।

अध्याय - 2 :: हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक :: उद्भव और विकास पृ॰ 70 - 151

ऐतिहासिक नाटकों का प्रारंभिकाल - तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ - विकास क्रम के आधार पर काल विभाजन - भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन नाटक (1881-1915) - प्रसादयुगीन नाटक (1916-1935); प्रसादोत्तर नाटक (1936 से आज तक) - भारतेन्दु एवं द्विवेदीयुगीन प्रमुख ऐतिहासिक नाटक — नीलदेवी - महारानी पद्मावती - महाराणा प्रताप - तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक - संयोगिता स्वयंवर - मीराबाई - सती चन्द्रावली अमरसिंह राठौर - अकबर गोरक्षा न्याय - पुरु विक्रम - रूपवती - वीर हम्मीर - चन्द्रगुप्त - तुलसीदास - भारतेन्दु एवं द्विवेदीयुगीन नाटकों की सामान्य विशेषताएँ - ।

प्रसादयुगीन नाटक - प्रसाद का आविर्भाव - उनके नाटक - राज्यश्री - विशाख - अजातशत्रु - स्कन्दगुप्त - चन्द्रगुप्त - ध्रुवस्वामिनी - अन्य नाटक - महात्मा ईसा - कर्बला - दुर्गावती - प्रताप प्रतिज्ञा - विक्रमादित्य - दाहर अथवा सिन्ध पतन - राजमुकुट - स्वर्ण-उत्सर्ग - प्रसादयुगीन नाटकों की सामान्य विशेषताएँ ।

प्रसादोत्तर युग के नाटक - अंतपुर का छिद्र - जय पराजय - आहुति - रेवा - मुक्तिपथ - शकविजय - कुलीनता - शशिगुप्त - भारतेन्दु - रहीम - महात्मा गांधी - अशोक - गरुड़ध्वज - वत्सराज - वितस्ता की लहरें - दशाश्वमेध - वैशाली में वसन्त - कवि भारतेन्दु - मृत्युंजय - कवि भारतेन्दु - पूर्व की ओर - हंसमयूर -

फूलों की बोली - बीरबल - झाँसी की रानी - काश्मीर का काँटा - कला और कृपाण - विजय पर्व - अग्निशिखा - जौहर की ज्योति - नाना फड़नवीस संत तुलसीदास - कोणार्क - शारदीया - आषाढ का एक दिन - लहरों का राजहंस - प्रसादोत्तर नाटकों की सामान्य विशेषताएँ ।

अध्याय - 3 :: हरिकृष्ण प्रेमी - जीवनरेखा, व्यक्तित्व और कृतित्व पृ. 151-19

हरिकृष्ण प्रेमी का जीवन परिचय - स्कूली शिक्षा - पत्रकार के रूप में - माखनलाल चतुर्वेदी से भेंट - फिल्म और आकाशवाणी में - 'प्रेमी' के नाटकों की प्रेरणाभूमि - गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव साहित्य में आत्मा की खोज - मानवतावादी साहित्यकार - विचारक के रूप में - प्रेमी का कृतित्व - कालक्रम के अनुसार उनकी कृतियों की सूची - प्रेमी की कृतियों के लिए पुरस्कार एवं सम्मान - प्रेमी की कविता - आँखों में - वन्दना के बोल - अग्निगान - जादूगरनी - अनन्त के पथ पर - रूप दर्शन - रूपरेखा - प्रेमी के नाटकों में गीत - प्रेमी के गीतिनाट्य - दुल्ला भट्टी - मिर्जा साहब - सस्सी पुन्नू - सोहनी महीवाल - हीर राँझा - प्रेमी की एकांकी कला - बादलों के पार - यह भी एक खेल है - घर या होटल - प्रेम अन्धा है - वाणी मंदिर - रूपशिखा - नया समाज - मातृभूमि का मान - यह मेरी जन्मभूमि है - निष्ठुर न्याय - पश्चात्ताप - प्रेमी के सामाजिक नाटक - छाया - बन्धन - ममता - निष्कर्ष ।

अध्याय - 4 :: हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीयता :: पृ. 199-246

राष्ट्रीयता का अर्थ - राष्ट्रीयता की परिभाषा - राष्ट्रीयता के प्रमुख तत्व - भौगोलिक एकता - जातीय एकता - भाषीय एकता धर्म की एकता - राजनैतिक तथा ऐतिहासिक एकता - प्रेमी के नाटकों

में राष्ट्रीयता के विभिन्न तत्वों का चित्रण - देश की प्राकृतिक सुषमा एवं संस्कृति का गौरवगान - देश प्रेम - स्वाधीनता - के महत्व का प्रतिपादन- आत्मोत्सर्ग या आत्म बलिदान की भावना - राष्ट्रीय एकता - हिन्दू-मुस्लिम एकता - प्रजातन्त्र का समर्थन - भारतीय दुर्दशा एवं पतन के कारण - राजाओं की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं - पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष - कलह - विरोध आदि - व्यक्तिगत स्वार्थ - साम्प्रदायिकता एवं प्रान्तीयता - व्यक्ति पूजा का विरोध - देशद्रोह एवं षडयन्त्र का विरोध - दूषित राजनीति - निष्कर्ष ।

अध्याय- 5: : हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में समसामयिक सामाजिक विचार पृ. 247-2[illegible]

साहित्य और समाज का संबंध - समाज की विकट [illegible] समस्याएं - प्रेमी के नाटकों में चित्रित सामाजिक समस्याएं - अस्पृश्यता - एवं छुआछूत की भावना - वर्ण व्यवस्था - सम्प्रदायिकता - सामाजिक असमानता - व्यक्ति का स्वार्थ - पूंजीपतियों का विरोध - पूंजीपतियों एवं मजदूरों की आर्थिक स्थिति में अन्तर - मजदूरों की दलित अवस्था - गरीबों एवं किसानों का शोषण - अकाल - देश की निर्धनता - पुलिस का अत्याचार - धार्मिक पाखण्ड - नारी समस्या का चित्रण - नारी की दयनीय स्थिति का निरूपण - वेश्या समस्या - वेश्यावृत्ति के विस्तार का कारण - पुरुष की कामुक प्रवृत्ति - विधवा विवाह का समर्थन - सती प्रथा की निन्दा - दहेज प्रथा - पर्दा प्रथा - नारी जागरण - शिक्षित नारी - नारी स्वतंत्रता - अपराजिता नारी की कर्तव्य निष्ठा - निष्कर्ष ।

अध्याय - 6 :: हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व :: पृ. 288-4..

भारतीय इतिहास का काल विभाजन - प्राचीन युग- मध्य युग - आधुनिक युग - इसी क्रम में हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों का वर्गीकरण ।

प्राचीन युग :- मौर्यकालीन नाटक - अमृत पुत्री - घटना काल (327-322) (ई. पूर्व) मौर्य कुमार - संक्रान्तिकालीन नाटक - संवत् प्रवर्तन (57 ई.पूर्व) गुप्त वर्धन - संक्रान्तिकाल - शपथ (525 ई. के लगभग)

मध्ययुग :- इस्लाम साम्राज्य काल - प्रकाशस्तम्भ (सन् 734-753)- शतरंज के खिलाड़ी (1294-1295) - आहुति (1302)- साँपों की सृष्टि (1306-1313) - उद्धार (1301) - कीर्तिस्तम्भ (.1509)-भग्न प्राचीर (1517) रक्षा बन्धन (1535)- अमर आन (1644)- स्वप्न भंग (1657-1659) शिवसाधना (1646-1674)-प्रतिशोध (1661-1705)-आन का मान (1679-1701) - विदा (1780-1792)

आधुनिक युग :- विषपान (1806-1808)-सेवापथ (1817-1822)-शीशदान रक्तदान, अमर बलिदान (1857 - निष्कर्ष ।

उपसंहार पृ. 448-451

सहायक ग्रंथसूची:-

1. प्रबन्ध में चर्चित ऐतिहासिक नाटकों की सूची पृ. 452-470
2. गीतिनाट्य एवं कविता
3. आलोचनात्मक ग्रंथों की सूची (हिन्दी)
4. इतिहास ग्रंथों की सूची (हिन्दी)
5. आलोचनात्मक ग्रंथों की सूची (अंग्रेजी)
6. इतिहास ग्रंथों की सूची (अंग्रेजी)

विषय-प्रवेश

नाटक की महत्ता

"काव्येषु नाटकं रम्यम्" उक्ति द्वारा गौरवान्वित नाटक, साहित्य की समस्त विधाओं में सर्वोपरि स्थान पर प्रतिष्ठित है। इस कला की यह विशेषता है कि यह भिन्न भिन्न रुचिवाले लोगों का समाराधन कर सकती है, सभी सामाजिकों का एक साथ मनोरंजन कर सकती है। सर्वजनयोग्यता इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। अत: कविकुलगुरु कालिदास ने लिखा -

'त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते ।
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्।' (1)

अर्थात् इस नाट्यकला के द्वारा ही भिन्न भिन्न रुचिवालों का मनोविनोद होता है।

नाटक में सभी कलाओं का उचित समन्वय हो जाता है। कला के सभी विशिष्ट अंग, गीत, वाद्य- नृत्य, आलेख्य, काव्य वेशविन्यास, दृश्ययोजना आदि अपने उचित परिमाण में उपस्थित किये जाते हैं। प्रत्येक ललित कला मनोहारी है, किन्तु व्यक्तिगत रुचिभिन्नता के कारण कोई संगीत अधिक पसन्द करता है तो कोई चित्रकारी, कोई काव्य में अधिक आनन्द पाता है तो कोई नृत्यकला में मुग्ध रहता है। इसलिए एक कला सब को पूर्ण तुष्टि प्रदान नहीं कर सकती। किन्तु नाटक में विविध ललित कलाओं का संगम है। अत: विभिन्न रुचियों के भी सब लोग इसमें समान आनन्द प्राप्त करते हैं।

---

(1) मालविकाग्निमित्रम् : प्रथमोऽङ्कः /4/
(कालिदास के नाटक - सं० रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री)

नाटक की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा प्रभावोत्पादन की शक्ति का आधिक्य है। यह स्वाभाविक है, जब तक हमारी आँखों में किसी भाव विशेष का चित्र अंकित न हो जाय, हम आनन्द नहीं पा सकते। अर्थात् मूर्त का प्रभाव अमूर्त के प्रभाव से अधिक स्थायी होता है। नाटक जैसे दृश्यकाव्य में मूर्त का विधान होता है, वास्तविकता का अनुकरण जीते जागते साधनों द्वारा किया जाता है। अन्य श्रव्य या पाठ्य काव्यों में केवल शब्दों तथा भावात्मक चित्रों के द्वारा कल्पना के योग से मानसिक चित्र प्रस्तुत किया है जब कि नाटक में शब्द, पात्रों की वेशभूषा, उनकी आकृति, भावभंगी क्रियाओं के अनुकरण, भावों के अभिनय तथा प्रदर्शन द्वारा दर्शक यथार्थ जीवन के निकट लाये जाते हैं।

नाट्य शास्त्र के आदि आचार्य भरत मुनि की नाटक विषयक मान्यताओं का अनुशीलन करने से नाटकीय दृष्टिसंपूर्णता का ज्ञान होता है। नाटक की परिभाषा के रूप में उन्होंने लिखा -

'नानाभावोपसंपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् (1)
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम्।।

अर्थात् 'नाना प्रकार के भावों से युक्त और नाना प्रकार की अवस्थाओं वाला तथा लोकव्यवहार का अनुकरण करनेवाला यह नाटक मैं ने बनाया।'

उपर्युक्त परिभाषा से तीन बातें स्पष्ट होती हैं। पहली बात यह है कि नाटक में मनुष्य के हृदय में उत्थित होनेवाली सभी भावनाओं को

---

1. भरत का नाट्यशास्त्र - भाग - 1, प्रथम अध्याय - 112
अनुवादकार - रघुवंश - पृ. 20 - प्रथम संस्करण - 1964

स्थान दिया जाता है। दूसरी बात यह है कि नाटक में देश, काल और परिस्थितियों के अनुकूल होनेवाले भावों की अवस्थाओं का चित्रण किया जाता है, तीसरी बात यह है कि नाटक लोक व्यवहार का अनुकर्ता है।

नाटक में प्रतिबिंबित जीवन की जो विविधता है, उसके संबंध में भी भरतमुनि ने लिखा है - - 'नाटक जीवन के सभी पहलुओं का स्पर्श करता है। कहीं धर्म, कहीं क्रीडा, कहीं अर्थ और कहीं श्रम, कहीं हास्य, कहीं युद्ध, कहीं काम और कहीं वध का दृश्य दिखाया जाता है । धर्म परायणों के लिए धर्म का, कामपरायणों के लिए काम का, दुष्टों के लिए दण्ड व्यवस्था का, और विनीतों के लिए दम क्रियाओं का वर्णन दिखलाया जाता है। यह नाट्यवेद कायरों में साहस उत्पन्न करनेवाला, मानी वीरों में उत्साह भरनेवाला, अज्ञानियों को विशेष बोध करानेवाला तथा ज्ञानियों को विद्वत्ता प्रदान करनेवाला है। यह ऐश्वर्यवानों के लिए विलास है, दुखियों को साहस देनेवाला, अर्थोपार्जन की इच्छा करनेवालों के लिए अर्थप्रद है और उद्विग्न चित्तवालों के लिए धैर्य प्रदान करनेवाला है।

जीवन के सत्यों, जीवन की गहराइयों, जीवन के समस्त सुख-दुखों, सफलता-विफलताओं, अन्तद्‌र्वन्द्वों का मनोज्ञतम चित्रण करनेवाली इस उत्कृष्ट कला के संबंध में निकोल ने ठीक ही लिखा- 'नाटक जीवन की प्रतिलिपि है। रीतिरिवाज का मुकुर है, सत्य का प्रतिबिंब है।' [1]

नाटक की श्रेष्ठता उसकी सामाजिकता में निहित है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक में समाज हित की भावनाएँ अधिक भरी हुई

- -

1. Drama is a copy of life, a mirror of customs and a reflection of truth" - Theory of Drama, Nicoll.

है। नाटक समाज की चेतना में साँस लेता है, इसलिए इसमें समाज की आत्मा का स्पन्दन ध्वनित होता है। नाटक किसी देश की सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक होता है। उसमें अपने समाज की सभ्यता और संस्कृति की मुखर प्रतिध्वनि होती है। किसी देश, काल और संस्कृति का जीता-जागता चित्र उपस्थित करनेवाला नाटक सर्वोत्तम सामाजिक कला है। जिस युग में किसी राष्ट्र की इच्छा भव्य प्रयत्न की ओर उन्मुख रहती है, वहाँ नाटक की प्रखर उन्नति होती है। और नाटक ही आगे बढ़कर उस युग के सांस्कृतिक दाय को संरक्षण प्रदान करता है। तीसरी से आठवीं शताब्दी के अन्त तक कुछ गुप्त वंश तथा हर्ष के शासन की पाँच शताब्दियों के भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग का जीवन चित्रण उस समय के काव्यों और नाटकों में ही उपलब्ध है। एथेन्स में पेरिक्लीज, रोम में आगस्टस, और इंग्लैंड में एलिज़ाबेथ प्रथम के शासनकाल की चरम गाथा उस युग के नाटकों में ही सुरक्षित है। नाटककार भास (400 ई.पू.) 'अविमारक' नाटक में तत्कालीन समाज की पनपती हुई वर्ग भेद की कटुता, 'दरिद्र-चारुदत्त' में राजनीति, विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' में सम्राट के प्रति भक्ति और तत्कालीन राजनीति और शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में जनसाधारण के जीवन और शासन व्यवस्था का जो जीवित चित्रण मिलता है, भारतीय इतिहास के लिए दूसरा कोई इतना प्रामाणिक स्रोत उपलब्ध नहीं।"[1]

श्री रतिभानुसिंह नाहर लिखते हैं -- "महाकवि कालिदास के प्रथम नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' से शुंग वंश तथा उसके पूर्ववर्ती राजवंशों की समकालीन राजनीतिक परिस्थिति का बोध होता है, राजकुलों के आन्तरिक जीवन का तो यह दर्पण है।"[2] अतः स्पष्ट है कि नाटक के द्वारा किसी देश के आचार-

- -

1. साहित्य का समाजशास्त्र मान्यता और स्थापना- श्रीराम मेहरोत्रा-पृ.150-151
प्रथम सं. 1970

2. प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास - रतिभानुसिंह नाहर
द्वितीय सं.1961, पृ.12

विचार, रहन-सहन, भाषा, जनरुचि, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक स्थिति, आदि बातों का परिचय आसानी से प्राप्त हो सकता है। नाटक-साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए सच्चिदानन्द वात्स्यायन ने लिखा - 'आधुनिक युग का बौद्धिक बौद्धिक, सामाजिक एवं संवेदनात्मक इतिहास उसके नाटक साहित्य के आधार पर लिखा जा सकता है। "[1] डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी का विचार भी महत्वपूर्ण है - 'आधुनिक युग की जटिल, अदृष्ट, अनुभूत, अननुभूत संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए नाटक जैसा उपयुक्त अन्य साहित्य रूप नहीं।"[2] आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का कथन भी उल्लेख्य है - 'नाटक गंभीर अभिनेय कला की सर्वोत्तम सृष्टि है। मानव चरित्र को शक्ति और गति देने में सामूहिक प्रतिक्रिया और प्रेरणा उत्पन्न करने में, जीवन का नवनिर्माण करने में जितना कार्य अभिनेय नाटक कर सकता है उतनी कोई कलाकृति नहीं। नाट्यकला ही समृद्धिशाली देशों की प्रतिनिधि और सर्वोच्च कला रही है। विविध राष्ट्रों में कला संबंधी उत्कर्ष को मापने के लिए नाटक ही प्रमुख उपादान रहा है। आज के अधिकांश साहित्य रूप व्यक्तिगत उपयोग के लिए हैं, सामूहिक उपयोग के लिए नाटक ही प्रधान साहित्यांग है।'[3]

नाटक के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए दशरथ ओझा ने लिखा, 'वह (नाटक) मनोरंजन की वस्तु नहीं, वह केवल घड़ी, दो घड़ी हँसाना नहीं चाहता, वह समाज का परिष्कार करना चाहता है और उसके प्रमाद या भ्रान्ति को दूर करने का इच्छुक है। समाज की किसी न किसी समस्या पर

---

1. हिन्दी साहित्य - एक आधुनिक परिदृश्य - सच्चिदानन्द वात्स्यायन - पृ० 116
2. हिन्दी नवलेखन - डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ० 142
3. आलोचना - पत्रिका - नाटक विशेषांक - जुलाई - 1956 - पृ० 6

निष्पक्ष रूप से प्रकाश डालना ही उसका मुख्य काम है और वह इस प्रकार कार्य को इस खूबी के साथ पूरा कर रहा है कि नाटक की मनोरंजकता में कोई बाधा न पड़े, फिर भी वह जीवन की सच्ची आलोचना पेश कर सके।' [1] पाश्चात्य विद्वान मार्जोरी बौल्टन ने इस तथ्य का उद्घाटन भी किया है कि इन दिनों मानसिक और स्नायविक अव्यवस्थाओं के उपचार के लिए नाटक एक उपाय के रूप में स्वीकृत है।' [2]

अतः सभी दृष्टियों से परखने पर स्पष्ट होता है कि नाटक में जीवन को पूर्णता प्रदान करने का परिवेश अधिक विस्तृत रहता है। नाटक की उपर्युक्त सभी विशेषताओं एवं महत्ताओं को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर आ सकते हैं कि नाटक का अध्ययन समाज और संस्कृति का अध्ययन है इसी कारण नाटक का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

ऐतिहासिक नाटक का महत्व

ऐतिहासिक नाटक में कथावस्तु का संयोजन सुदूर अतीत के इतिहास से किया जाता है। इसमें अतीत के जीवन, रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषताएँ, राजनीतिक और सामाजिक

---

1. समीक्षा शास्त्र - दशरथ ओझा - तृतीय संस्करण - 1963 - पृ. 22-23

2. Dramatic work is used as a good deal now-a-days in the cure of mental and nervous disorders, a fact which seems to support the view that 'pretend' games are valuable outlets for our feelings. Some psychiatrists encourage their patients to act out things that have distressed them and this is sometimes done in groups so that the members of the group have also the advantage of helping each other. - The Anatomy of Drama - Majorie Boultan, 3rd impression 1963, p.193.

परिस्थितियों आदि का यथार्थ, सशक्त एवं सजीव चित्रण मिलता है। ऐतिहासिक नाटक में कल्पना जगत की अपेक्षा वास्तविकता एवं तथ्यों की प्रधानता है। अतः प्रभावोत्पादन शक्ति भी भरी रहती है। यथार्थ घटनाएँ ही, काल्पनिक घटनाओं की अपेक्षा पाठक या दर्शक के मर्म को छूती है। उनपर अमिट प्रभाव डालती है।

प्राचीन शास्त्रकारों ने कथा एवं कथा काव्य के लिए नितान्त काल्पनिक के स्थान पर इतिहासोद्भववृत्त (ऐतिहासिक कथावस्तु) का विधान करते हुए उसे अधिक महत्ता दी है। ' 1

भरतमुनि नाट्य शास्त्र में इतिहासाश्रित नाटकों को अत्यन्त महत्व दिया --

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंग्रहम् ।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ।
सर्वशास्त्रार्थ संपन्नं सर्व शिल्प प्रवर्तकम् ।
नाट्याख्यं पंचमं वेदं सेतिहासम् करोम्यहम् । " 2

आनन्दवर्धनाचार्य लिखते है -

अत एव च भरते प्रख्यातवस्तुविषयत्वं
प्रख्या तोदात्त नायकत्वं नाटकस्यावश्यकर्तव्यतयो-
-पन्यस्तम् । तेन हि नायकौचित्यानौचित्य विषये
कविर्न व्यामुह्यति । । यस्त्वुत्पाद्यवस्तु । :

1• (क) इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्
(दण्डी कृत काव्यादर्श 1/ 15

(ख) प्रख्यातवंशो राजर्षि दिव्यो वायत्र नायकः
तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् । 13/23
(धनंजय कृत दशरूपक)

2• नाट्य शास्त्र - प्रथम अध्याय - पृ• 14-15

नाटकादि कुर्यात्तस्याप्रसिद्धमनुचित नायक स्वभाव वर्णने महान् प्रमाद।' 1

अर्थात् भरत मुनि नाटक के अन्दर प्रख्यात वस्तु का कथानक के रूप में उपादान करना और इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति को नाटक का नायक बनाना कवि का अनिवार्य कर्तव्य माना है। इसका कारण यह है कि प्रसिद्ध कथानकों के पात्रों के चरित्र तथा उनकी शक्ति की सीमा कवि के सामने सर्वदा सन्निहित रहती है। अत: उनका चित्रण करने में व्यामोह में नहीं पड़ता और पाठकों को भी उनके पात्रों के विषय में एक भावना बनी रहती है। अत: पाठक न तो उनकी संभावना में संदेह करते हैं और न उनका आस्वादन ही प्रतिहत होता है। इसके प्रतिकूल नाटकादि रचना में कवि को किसी पात्र के चरित्र की कल्पना स्वयं करनी पड़ती है और परिशीलक जब उस नई घटना को पढ़ता है या उसका अभिनय देखता है तब किसी विशिष्ट पात्र के विषय में उसकी धारणा चित्रण के अनुकूल बन जाती है न तो कवि के मस्तिष्क में उस नवीन पात्र के विषय में कोई कल्पना बद्धमूल होती है और न पाठकों के सामने उनको कोई चरित्र स्पष्ट होता है। ऐसी दशा में यह बहुत संभव है कि कवि स्वकल्पित चरित्र के ठीक ठीक निर्वाह करने में भूल कर जावे।

हमारी इतिहास संबंधी जिज्ञासा का शमन करने में भी एक हद तक ऐतिहासिक नाटक सहायक सिद्ध होते हैं। ऐतिहासिक लेखक ही इतिहास की घटनाओं को कल्पना के शहद में भिगो देते हैं जिससे यह लाभ होता है कि दर्शक तथा पाठकों के लिए इतिहास के गहन तथ्य सरस एवं सुबोध रूप में बदल जाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो इतिहास के कंकाल सत्य ऐतिहासिक नाटकों में कदम रखते ही मांसल एवं प्राणमय होकर हृष्ट-पुष्ट बन जाते हैं।

---

1. ध्वन्यालोक - तृतीय उद्योत : - पृ. 751-752

ऐतिहासिक कथावस्तु की लोकप्रियता के संबंध में डा॰ गोविन्दी जी का महत्वपूर्ण विचार यहाँ उद्धृत करना समीचीन लगता है : - 'ऐतिहासिक वृत्त एवं पात्र साहित्य सिद्ध आदर्शों को सजीवता से अनुप्राणित करते है, साहित्यिक कल्पना में यथार्थता ला देते है, तथा कथागत भावनाओं एवं विचारों को वायवी उडान से उतार कर संभाव्य एवं प्रतीति योग्यता की भूमि पर ला खडा करते है। इतिहास में वर्णित चरित्रों से जनसामान्य का संस्कारतः एक आत्मीय संबंध जुडा रहता है। जिससे साधारणीकरण तथा तादात्म्य स्थापित करने में सुगमता होती है। इसलिए विश्व के लगभग सभी साहित्यों में ऐतिहासिक वृत्तों की प्रधानता रही है।' [1]

हिन्दी नाट्यक्षेत्र में अनुसंधान

साहित्य की अन्य विधाओं के समान नाट्यक्षेत्र में भी शोधकार्य संपन्न रूप से चल रहा है। 1843 तक हिन्दी में नाटक संबंधी कोई शोध-कार्य न संपन्न हुआ था। 1943 में श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने साहस के साथ हिन्दी के नाट्यक्षेत्र में शोध कार्य करने के लिए कदम रखा और अपने प्रयत्न में सफलता भी प्राप्त की। अतः हिन्दी नाट्यक्षेत्र में शोध कार्य का श्रीगणेश 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' करते हुए प्रसाद के पडोसी जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने किया। तदुपरान्त तैंतीस वर्षों की अवधि में नाटक के विभिन्न पहलुओं के आधार पर लिखे गए अनेक शोध प्रबन्धों पर पी॰ एच॰ डी॰ की उपाधि मिल चुकी है। इन प्रबन्धों का एक सामान्य विवरण प्रस्तुत करते समय इन्हें कालक्रमानुसार विभक्त करना असंगत प्रतीत होता है। विषय की

1॰ हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग -
- डा॰ गोविन्दजी - पृ॰ 76

समानता के आधार पर इन्हें रखना अधिक समीचीन है। इनमें से कुछ शोध-प्रबन्ध नाट्यशास्त्र संबंधी है । तो और कुछ नाटक साहित्य के इतिहास संबंधी तथा नाटक के तत्व योजना संबंधी भी है । नाटक साहित्य के इतिहास से संबंधित प्रबन्धों में नाटक का उद्भव ढूंढ निकाला है तथा विकास का मार्ग भी दिखाया गया है। तत्व योजना पर प्रकाश डालते हुए रचित प्रबन्धों में पात्र-योजना, वस्तु योजना, चरित्र -चित्रण, रस, गीत, आदि तत्वों की प्रधानता रही है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक नाटककार पर उनके स्वतंत्र रूप से कार्य हुआ है, भारतेन्दु तथा प्रसाद को प्रमुख स्थान दिया गया है। नाटक की विशेष धाराओं (पौराणिक, समस्यामूलक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं एकांकी) को ध्यान में रखकर लिखे गए शोध प्रबन्धों की संख्या भी कम नहीं है। शोध क्षेत्र का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रयत्न है तुलनात्मक अध्ययन। यह तुलनात्मक अध्ययन भी भिन्न कोटि का है। दो नाटककारों की रचनाओं की तुलनात्मक दृष्टि से विवेचना हुई है, एक साहित्य का दूसरे साहित्य पर पडे प्रभाव का तुलनात्मक एध्ययन प्रस्तुत किया गया है। नाट्य क्षेत्र में प्रभाव संबंधी जो शोध कार्य हुआ, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं । हिन्दी नाटकों में स्पष्ट रूप से दिखाई पडनेवाले बाहरी प्रभावों को भी अनुसंधित्सुओं ने अपने शोध का विषय बनाया, विशेषकर पाश्चात्य नाटकों तथा नाट्य शैलियों को ध्यान में रखकर शोधकर्ताओं ने हिन्दी नाटकों का अध्ययन सम्यक् रूप से प्रस्तुत किया। रंगमंच भी शोध के विषय बन चुके हैं । नारी भावना संबंधी विषय की ओर भी शोधार्थियों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। साहित्य क्षेत्र में सदैव गुंजित यथार्थवाद , समाजसुधारवाद, राष्ट्रीय चेतना आदि विषय भी शोध क्षेत्र में दीख पडते हैं ।

ऐतिहासिक नाटक और अनुसंधान कार्य

ऐतिहासिक नाटकों को लेकर जो शोध प्रबन्ध लिखे गए है उनकी

सूची नीचे दी जाती है :-

1. प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटक - निर्मल शर्मा
2. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन-रामविहारी श्रीवास्तव
3. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक - मूलभूत प्रवृत्तियाँ और प्रेरक शक्तियाँ-मवाल्ल कपूर
4. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में कल्पना विधान- रामदीन गुप्त
5. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन-धनंजय पांडेय
6. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व- डा. धनंजय
7. हिन्दी और मराठी ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन-प्रा.भुपटकर
8. हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन-डा. लक्ष्मण भारद्वाज
9. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन- जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
10. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक - जगदीश चन्द्र जोशी
11. प्रसाद के नाटकीय पात्र - मनोवैज्ञानिक अध्ययन- डा. राधेश्याम शर्मा
12. हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन- राजेन्द्रकुमार
13. हरिकृष्ण प्रेमी - व्यक्तित्व और कृतित्व - श्री श्यामनाथ

प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय के अध्ययन की आवश्यकता

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों को शोध विषय के रूप में उद्देश्यपूर्वक चुना गया है।

हरिकृष्ण प्रेमी को छोड़कर अन्य सभी प्रमुख नाटककारों - जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, रामकुमार वर्मा , - की नाट्य - कृतियों पर पर्याप्त शोध प्रबन्ध लिखे गए। हिन्दी के नाट्य विषयक आलोचनात्मक ग्रंथों में भी इन नाटककारों के नाटकों का पर्याप्त विवेचन किया गया है। लेकिन हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों को आधार बनाकर लिखे शोधप्रबन्धों की गणना अँगुली पर की जा सकती है। शोध प्रबन्ध की बात छोड़िये, हिन्दी के नाट्य-

विषयक आलोचनात्मक ग्रंथों में भी प्रेमी के कृतित्व का अनुशीलन प्रायः नगण्य रहा है।

हरिकृष्ण प्रेमी की गणना उन सफल एवं श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटककारों में की जा सकती है जिन्होंने इतिहास और नाटक दोनों का सही समन्वय किया है। जिन्होंने विगत इतिहास के खण्डहरों में स्वच्छन्द विचरण करते हुए भी अतीत को पुनर्जीवित कर दिया। अतीत का चित्रण करते हुए भी वे अपने युगधर्म को नहीं भूले, यह उनकी एक अन्य विशेषता है। प्रेमी ने अपने साहित्यिक जीवन में लगभग तीस से अधिक नाट्यकृतियों का प्रणयन किया जिनमें से कुछ हिन्दी साहित्य के गौरव हैं। ऐसे एक नाटककार की कृतियों का विवेचन जितनी विपुलता से होना चाहिए था उतनी विपुलता से नहीं हुआ है। इस दिशा में कुछ योगदान केवल श्री विश्वनाथ प्रसाद 'बटुक' द्वारा किये गये कार्य से हुआ है। 'बटुक' जी ने अपनी आलोचनात्मक कृति 'नाटककार : हरिकृष्ण प्रेमी - व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में प्रेमी जी की साहित्यिक देन का उल्लेख करते हुए उनका मूल्यांकन किया है। ग्रंथ के प्रारंभ और अन्त में प्रेमी जी के व्यक्तित्व की चर्चा है। प्रेमी की कृतियों का अलग अलग परिचय भी दिया गया है। लेकिन प्रेमी ने नाटकों के माध्यम से इतिहास को कितना सुरक्षित और सजीव बनाया, इसका गहरा और प्रामाणिक अध्ययन 'बटुक' जी के ग्रंथ में नहीं मिलता है। समग्र रूप से इसमें इतिहास को महत्व नहीं प्रदान किया गया है जिसकी मेरे विचार से नितान्त आवश्यकता है। अतः प्रेमी के नाटकों में चित्रित इतिहास तत्व ही मेरे शोध प्रबन्ध का मुख्य प्रतिपाद्य रहता है।

प्रथम अध्याय

इतिहास और ऐतिहासिक नाटक

प्रथम अध्याय

इतिहास और ऐतिहासिक नाटक

इतिहास : शाब्दिक अर्थ

इतिहास शब्द इति, ह और आस के संयोग से व्युत्पन्न है। इति का अर्थ है इस प्रकार, 'ह' का अर्थ है निश्चित तथा आस का अर्थ है था। अर्थात् निश्चयपूर्वक ऐसा ही था ऐसा ही हुआ।[1] आचार्य दुर्ग (विक्रमीय षष्ठ शताब्दी के पूर्व) अपनी निरुक्त भाष्यवृत्ति में निरुक्तान्तर्गत इतिहास शब्द पर लिखता है --

' इति हैवमासीदिति कथ्यते यः स इतिहासः '
2/10 //

अर्थात् यह निश्चय से इस प्रकार हुआ था, यह जो कहा जाता है, वह इतिहास है। यह लक्षण जो इतिहास शब्द से स्वतः सूचित होता है सत्यता प्रदर्शक है। कल्पित, अनुमानित और संदिग्ध बातें इतिहास नहीं। अतः यह स्पष्ट है कि इतिहास के अन्तर्गत वास्तविक घटनात्मक तथ्य ही आते हैं।

इतिहास के लिए अंग्रेजी में 'हिस्ट्री' शब्द का प्रयोग होता है जो ग्रीक शब्द इस्तोरिया (Istoria) का अंग्रेजीकरण है।[2] ग्रीक भाषा में इस्तोरिया का अर्थ है गवेषणा या गवेषणा से प्राप्त जानकारी।[3] यूनानी विद्वान हिरोदातस ने इतिहास शब्द को खोज, गवेषणा या अनुसंधान के अर्थ में प्रयुक्त

---

1. हिन्दी विश्वकोश - खण्ड 1 पृ.476 - अतीत से वर्तमान- राहुल सांकृत्यायन

2. Origins - A Short Etymological Dictionary of Modern English - Eric Patridge p.289.

3. The Short Oxford English Dictionary, Second Edition.
The Oxford Dictionary of English Etymology - Ed. C.T. Onions p.442.

History - Latin'Historia'; Greek - historia, learning or knowing by enquiry.

किया है।"(1)

भारतीय साहित्य में इतिहास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अथर्ववेद में हुआ है माना जाता है गया है। शतपथ ब्राह्मण, जैमिनीय बृहदारण्यक, एवं छांदोग्योपनिषद में भी यह शब्द व्यवहृत हुआ। इतिहास का विषय निम्नांकित है।

" आर्यादि बहुव्याख्यानां देवर्षि चरिताश्रयम्,
इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुत धर्मयुक् । " (2)

अर्थात् इतिहास का विषय उस समय महान व्यक्तियों का गुण-कथन, ऋषियों, महापुरुषों का चरित्रगान और भविष्य को संकेतित करना माना गया है। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि पौराणिकों ने घटना की अपेक्षा चरित्र को महत्व प्रदान किया। इतिहास का आदर्श महाभारतकार वेदव्यास के अनुसार निम्नांकित है :-

"धर्मार्थकाममोक्षाणां उपदेशसमन्वितम्
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।"
— महाभारत — वेदव्यास।

अर्थात् इतिहास को उस समय अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन माना गया था।

भारत के मनीषीगण अतिप्राचीन काल से ही इतिहास तथा पुराण का उल्लेख करते रहे हैं एवं शतपथ ब्राह्मण के एक श्लोक से प्रमाणित होता है कि भारत में इतिहास तथा पुराण नाम के स्वतंत्र ग्रंथ प्राचीन काल से ही थे एवं अष्टादश शास्त्रों में के अंतर्गत माने जाते थे। (3)

- -

1. इतिहास दर्शन - डा० बुद्ध प्रकाश : पृ० 62 से उद्धृत

2. विष्णु पुराण की टीका - श्रीधर स्वामी:: श्लोक 3/4/10

3. 'ऋग्वेदो यजुर्वेदो: सामवेदोऽथर्वांगिरस
इतिहास: पुराणं विद्या उपनिषद: श्लोका: सूत्राण्यनुव्याख्यानानि।'
— यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण : 4/15/4/210

चाणक्य का कथन है :-

पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणम्
धर्मशास्त्रं अर्थशास्त्रं चेतिहास। " (1)

चाणक्य ने इतिहास के अन्तर्गत पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र सभी की गणना करके इतिहास को अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया।

शंकराचार्य के अनुसार इतिहास हमारे पक्ष में अप्रत्यक्ष रहते हुए भी प्राचीनों के लिए प्रत्यक्ष हुआ। —

इतिहास पुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेन सम्भवन् मन्त्रार्थवाद मूलत्वात्
प्रभवति देवता विग्रहादि प्रपंचयितुम। प्रत्यक्षमूलमपि सम्भवति ।
भवतिहि अस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरन्तनानां प्रत्यक्षं तथा च
व्यासदयो देवताभिः प्रत्यक्षं च व्यवहरन्तीति स्मयते । "(2)

प्राचीन ग्रंथों में कई स्थलों पर पुराण और इतिहास एक साथ आए हैं ।

'इतिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदम् ।' (3)

पुराण और इतिहास शब्द को समानार्थक माननेवालों में विद्वान रायकृष्णदास जी का नाम उल्लेखनीय है। " (4)

पुराण साहित्य की प्रामाणिकता के संबंध में विद्वानों में मतभेद

---

(1) कौटिल्य अर्थशास्त्र —— 5।4
(2) शारीरिक भाष्य —— 1/3/38
(3) छान्दोग्य उपनिषद् —— 7/1/1
(4) पुराण इतिहास : रायकृष्णदास — श्री वेंकटेश्वर समाचार, बंबई 22.10.54 का अंक

है। पुराण को इतिहास माना जाये या नहीं इसे लेकर विवाद चलता है। पुराण पुरातन से व्युत्पन्न है * जिसका अर्थ है प्राचीन गल्प या आख्यायिकाओं का संचय। इन आख्यायिकाओं में भले ही इतिहास का पुट मिलता हो, इन्हें इतिहास का समानार्थी नहीं माना जा सकता। क्यों कि पुराणों में मानव जाति के उत्थान पतन का लेखाजोखा प्रस्तुत करने के बदले मानव जैसे प्राणियों की सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन कई कथाओं के सहारे प्रस्तुत किया गया है। विष्णु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य पुराणों में उल्लिखित पुराण के लक्षण इसका प्रमाण है। पुराण का समानार्थी अंग्रेजी शब्द माइथालजी का व्युत्पन्न अर्थ है- "परंपरा से चली आई कहानियां जिनमें मानव राशि ने अपनी सृष्टि संबंधी धारणा को धार्मिक आचरणों के बल पर व्यक्त किया गया हो*", भी इनका अन्यतम प्रमाण है । अतएव स्पष्ट माना जा सकता है कि पुराण मानव राशि की काल्पनिक आख्यायिकाओं का वह संचित कोश है जो कहीं कहीं कहीं इतिहास का दिग्दर्शन कराते कराते चलता है। अतएव इतिहास एवं पुराणों में मुख्य अन्तर यह हो सकता है कि इतिहास मानव राशि के उत्थान पतन का वास्तविक लेखा जोखा है तो पुराण उनकी काल्पनिक उडानों की भरमार का व्याख्यान है हो सकता है जिसमें सृजन की प्रक्रिया पर विशेष बल दिया जाता है।

इतिहास की व्याख्या एवं उसका स्वरूप

इतिहास के व्यापक अर्थ एवं स्वरूप को समझने के लिए कुछ प्रमुख भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की इतिहास संबंधी विचारधारा पर प्रकाश डालना समीचीन रहेगा।

भारतीय विद्वान :-

प्रसिद्ध विद्वान एवं भारत गणतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति डा॰ राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा – "इतिहास की सबसे अधिक साधारण परिभाषा यही

है कि वह भूतकाल का वृत्तान्त है और उसका मुख्य ध्येय यह है कि समय की समाप्ति से उन बातों और व्यक्तियों को निकालें, जो कभी थी किन्तु आज नहीं है।" उन्होंने आगे कहा – "वह घटनाओं की कोरी नीरस कहानी न होकर ऐसा शास्त्र है जो हमें मानवीय समाजों और संस्थाओं के जन्म और विकास का पूरा पूरा ज्ञान कराता है। इतिहास तो सही अर्थ में तभी इतिहास होगा जब वह इन सब और दूसरी शक्तियों और बातों का जो मानवों पर या उनके द्वारा सक्रिय रहती है,विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार करें।" (1)

मराठा इतिहासज्ञ श्री गोपाल दामोदर तामसकर ने लिखा – "इतिहास अनुभवों का भण्डार है। उसमें मनुष्य जीवन के नाना प्रकार के सैकड़ों अनुभव भरे पड़े हैं। जीवन के अनुभव की पाठशाला एक तो स्वयं जीवन है, दूसरी है इतिहास।----- इतिहास का संबंध केवल अतीत से है। वर्तमान और भविष्य से उसका कोई संबंध नहीं।" (2) पं. जवाहर लाल नेहरू इतिहास को एक सिलसिलेवार मुकम्मिल चीज बताते हुए कहते हैं : "इतिहास को तो एक चित्ताकर्षक नाटक समझना चाहिए जो हमारे दिल को मोह लेता है - ऐसा नाटक जो कभी कभी सुखान्त लेकिन ज्यादातर दुखान्त रहा है और दुनिया जिसका रंगमंच और गुजरे जमाने के महान पुरुष और महिलाएं जिसके पात्र है। (3) प्रसिद्ध इतिहासकार राजबली पाण्डेय के अनुसार इतिहास केवल घटनाओं और तिथियों का समूह मात्र नहीं किन्तु उनके भीतर से प्रवाहित

- -

1. साहित्य, शिक्षा और संस्कृति --- डा. राजेन्द्र प्रसाद - पृ. 119-120

2. मराठों का उत्थान और पतन --- गोपाल दामोदर तामसकर

3. विश्व इतिहास की झलक (खण्ड 1) --- पं. जवाहरलाल नेहरू - पृ. 30

होनेवाली किसी देश के जीवन की धारा है।" (1) डा॰ राधाकुमुद मुकर्जी की राय है कि इतिहास किसी देश अथवा मनुष्यों के भूतकाल का वर्णन करता है, वर्तमान अथवा भविष्य का नहीं । जो हो चुका वह इतिहास का विषय है; जो अब है या आगे होना चाहिये वह इतिहास का विषय नहीं । इतिहास बीतीहुई सच्ची घटनाओं का ब्यौरा देता है।" (2) डा॰ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार देशों जातियों, राष्ट्रों तथा महापुरुषों के रहस्यों को प्रकट करने के लिए इतिहास एक अमोघ साधन है। किसी जाति को सजीव रखने, अपनी उन्नति करने तथा उस पर दृढ़ रहकर सदा अग्रसर होते रहने के लिए संसार में इतिहास से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं । अतीत गौरव तथा घटनाओं के उदाहरण से मनुष्य जाति एवं राष्ट्र में जिस संजीवनी शक्ति का संचार होता है उसे इतिहास के सिवा अन्य उपायों से प्राप्त करके सुरक्षित रखना कठिन ही नहीं प्रत्युत एक प्रकार से असंभव है। इतिहास भूतकाल की अतीत स्मृति तथा भविष्यत् की अदृश्य सृष्टि को ज्ञान रूपी किरणों द्वारा सदा प्रकाशित करता रहता है। "(3) शचीरानी गुर्टू की दृष्टि में इतिहास जीवन के चिरंतन स्वरूप को प्रतिबिंबित करनेवाला दर्पण है । (4) " सचित्र विश्वकोश के नवें खण्ड में इतिहास की परिभाषा निम्नलिखित है - - - - "आज से पहले जो कुछ होता रहा है उसकी कहानी है इतिहास। इतिहास विभिन्न युगों के विचारों की भी कहानी है ।" (5)

- -

(1) भारतीय इतिहास का परिचय - डा॰ राजबली पांडेय - प्रस्तावना
द्वितीय संस्करण, 2020 वि॰संवत्

(2) हिन्दी सभ्यता - डा॰ राधाकुमुद मुकर्जी - अनुवादक
डा॰वासुदेव शरण अग्रवाल - प्रस्तावना
चतुर्थ संस्करण • 1966

(3) राजपूताने का इतिहास - डा॰ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा पृ॰10

(4) साहित्य दर्शन - शचीरानी गुर्टू पृ॰610

(5) सचित्र विश्व कोश -इतिहास, व्यक्ति और घटनाएँ - नवाँ खण्ड - पृ॰12-13
प्रथम संस्करण • 1967

पाश्चात्य विद्वानों के मत :

प्रसिद्ध रूसी इतिहासज्ञ निकोलाई बर्दियेफ के मतानुसार केवल व्यक्तियों, घटनाओं और वस्तुओं की तालिका इतिहास का मृत रूप ही प्रस्तुत करती है। इतिहास का कर्तव्य मनुष्य जाति की आत्मा और आन्तरिक जीवन की खोज करना है। इसका उद्देश्य व्यक्तियों और घटनाओं का कारण प्रवृत्ति और आशय ढूँढना है। इस दृष्टिकोण से इतिहासकार को इतिहास की वास्तविक अनुभूति होनी चाहिए।"[1]

टर्नर के मतानुसार 'इतिहास एक सामाजिक स्मृति है (सोशल मेमॉरी) जो वर्तमान जीवन को अतीत के साथ संबंधित करती है और इस प्रकार वर्तमान को बोधगम्य बनाती है। इसका कार्य समाज की अक्षुण्णता को सुरक्षित रखना जो उसकी व्यवस्था का आधार स्तंभ होती है। अतः कोई समाज मनुष्य इतिहास के बिना नहीं रह सकता।'[2] वालतेर का मत है - इतिहास मानव कार्यकलाप की सभी अभिव्यंजनाओं का वृत्तांत है। इसमें जीवन के समस्त पक्षों का सामंजस्य सन्निहित रहता है। अतः इसका लक्ष्य केवल राजनीतिकघटनाओं की तालिका मात्र प्रस्तुत करना नहीं, वरन् जनजीवन के विविध पक्षों की चित्रमयी अभिव्यक्ति उपस्थित करना है।'[3]

ट्रेवेल्यान के अनुसार इतिहास का विस्तृत अध्ययन हमें यह अनुभव देता है कि अतीत भी उतना ही वास्तविक था जितना वर्तमान है।

---

1. बेर्दियेफ स्मिस्ल इस्तोरिइ (बर्लिन 1923) - अंग्रेजी अनुवाद : दि मीनिंग आफ हिस्ट्री - (बुद्ध प्रकाश का इतिहास दर्शन पृ.345 से उद्धृत)
2. दि ग्रेट कल्चरल ट्रेडिशन्स : भाग 1 प्रस्तावना इतिहास दर्शन - बुद्धप्रकाश पृ. 334-335 से उद्धृत)
3. इतिहास दर्शन - बुद्धप्रकाश पृ. 134 से उद्धृत

इसमें अध्ययन द्वारा ही हम अपने पूर्वजों को, उनकी आदतों, व्यवहारों और रुचियों के साथ प्रत्यक्ष देख सकते हैं । [1]

मैक्समूलर ने भी इतिहास को पूर्वजों की आदतों एवं गतिविधियों को समझानेवाली वस्तु कहा है। " [2]

साहित्य - शाब्दिक अर्थ

साहित्य की व्युत्पत्ति 'सम' उपसर्ग और 'धा' धातु के योग से मानी गई है। इसकी परिभाषा यों की गयी है - 'स हितस्य भावः साहित्यम्।' [3] सहित के दो अर्थ होते हैं - (1) साथ होना (2) हित का सम्पादन होना। इन अर्थों की व्याख्या काव्यशास्त्रज्ञों ने अपनी लगन के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में की है। गुलाबराय के अनुसार शब्द और अर्थ, विचार और भाव में जब पारस्परानुकूलता का सद्भाव निहित है तब साहित्य कहलाता है।' [4] दशरथ ओझा ने साहित्य की व्याख्या यों की है - "साहित्य वह है जिसमें मानव हित का सम्पादन होता है। " [5]

भारतीय विद्वानों की व्याख्या :-

डा. गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार साहित्य भाषा के

- -

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - श्री धनंजय (पृ.20 से उद्धृत)

2. . . . what history has to teach us before all and everything is our own antecedents, our own ancestors, our own descent - "India- what can it teach us" - Max Muller, Second Ed. 1961, pp.14-15.

3. साहित्य और समीक्षा — गुलाबराय पृ. दूसरा संस्करण 1956

4. काव्य के रूप — गुलाबराय पृ. 2

5. समीक्षा शास्त्र — दशरथ ओझा पृ.

माध्यम से रचित वह सौंदर्य या आकर्षण से युक्त रचना है जिसके अर्थबोध से सामान्य व्यक्ति को आनन्द की अनुभूति होती है। [1]

गुलाबराय का कथन है कि "साहित्य संसार के प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है और वह हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का साधन करने के कारण संरक्षणीय हो जाती है।" [2]

डा॰ रामकुमार वर्मा की राय में साहित्य राष्ट्र की तपस्या है। वह जीवन के अनन्त प्रयोगों की सिद्धि है और समस्त संवेदनाओं का सार रूप है। वह केवल आज का मनोरंजन नहीं, वरन् कल का संबल भी है। अतः उसमें जीवन का ऐसा परिष्करण या उर्ध्वीकरण है जिससे मनुष्य के भविष्य में बल मिल सके। दूसरी ओर यह भी माना जा सकता है कि वह मानवता का इतिहास है। मनुष्य ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये, उसने विविध प्रकार से जीवन का उपभोग किया, उसने अनेक भूलें कीं। उन सबको साहित्य ने संचित कर रखा।"[3] प्रेमचन्द की परिभाषा महत्वपूर्ण है- "मेरा अभिप्राय यह नहीं कि जो कुछ लिख दिया जाये वह सब का सब साहित्य है। साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों।"[4] प्रेमचन्द की व्याख्या के अनुसार साहित्य जीवन की आलोचना ही है। ऐसे साहित्य से हृदय एवं मस्तिष्क का परिमार्जन संभव

---

1. साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन - गणपति चन्द्र गुप्त - पृ. 31 (पहला सं: 1971)
2. साहित्य और समीक्षा - गुलाबराय - पृ. 3 (दूसरा सं: 1956)
3. साहित्य शास्त्र - रामकुमार वर्मा - पृ. 11 (प्रथम सं: 1968)
4. प्रेमचन्द - कुछ विचार - पृ. 5

हो पाता है। साहित्य का निर्माण मानव जीवन के चिरन्तन मूल्यों के उद्घाटन के उद्देश्य से किये जाने पर वह जीवन की निरन्तर प्रवृत्ति में मनुष्य का पथप्रदर्शक बन जाता है। वह कार्य साहित्य के अलावा कोई और सत्ता नहीं कर पाएगी। लेकिन साहित्य धार्मिक ग्रन्थों की भांति न केवल चिरन्तन सत्यों का भण्डार रहता है अपितु साहित्यकार की अनुभूति के लिए मान्य चिरन्तन सत्य का उद्घाटन भी इसमें संभव है। अनुभूति-बद्ध भाषा विश्वमंगल हेतु जब मूर्त रूप पकड़कर सामने आ जाती है तभी साहित्य कहलाएगी। गंगाप्रसाद पाण्डेय की उक्ति ' साहित्य विश्वमानव का हृदय'[1] का तात्पर्य भी यही है। उनके अनुसार साहित्य स्थायी विचारों के मानसिक विकास का चित है जो कि सतत सच और सनातन रहता है। अतएव उन्होंने साहित्य को युग युगों के महान् पुरुषों के मननशील प्राणों के आन्तरिक सत्य का आभास कहा है। जैनेन्द्र के अनुसार लिपिबद्ध अनुभूति भण्डार जो अनेकों युगों तक विश्व को प्राप्त रहेगा वही साहित्य है। उनका कथन है - मानव जाति की इस अनन्त निधि में जितना कुछ अनुभूति भण्डार लिपिबद्ध है वही साहित्य है। और भी अक्षरबद्ध-रूप में जो अनुभूति संचय विश्व को प्राप्त होता रहेगा, वह होगा साहित्य।" [2]

पाश्चात्य विद्वानों के मत :

हेनरी हडसन ने लिखा - साहित्य मूलतः भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है।" [3] टालस्टाय साहित्य या कला को जीवन के सुधार के

---

1. निबन्धिनि — गंगाप्रसाद पाण्डेय पृ.

2. साहित्य शिक्षा — जैनेन्द्र पृ. 10

3. It is fundamentally an expression of life through the medium of language - "An introduction to the Study of Literature", Hudson, p.10.

लिए मानते हुए कहते है : साहित्य का उद्देश्य बौद्धिक क्षेत्र से मानसिक क्षेत्र में उस सत्य की स्थापना करना है जिसका उद्देश्य मनुष्य मात्र में कल्याणकारी एकता को स्थापित करके भगवान की प्रेमपूर्ण बादशाहत को कायम करना है।" [1]

अंग्रेजी कविता का पहला सच्चा इतिहासकार टामस वार्टन की राय में साहित्य की अनूठी विशेषता ऐसी है कि वह हर युग की विशिष्टताओं को बहुत सचाई से अंकित करता है। आचार व्यवहार के नितान्त चित्रात्मक और अभिव्यंजनापूर्ण पहलुओं को निखार रखता है।" [2]

साहित्य एवं इतिहास का संबंध :-

साहित्य एवं इतिहास संबंधी विभिन्न परिभाषाओं की तुलना करने पर इन दोनों में कुछ समान तत्व दृष्टिगोचर होते है। साथ ही दोनों का वैषम्य भी व्यक्त होता है।

साहित्य एवं इतिहास में साम्य :-

साहित्य एवं इतिहास दोनों अनादि काल प्रवाह में निरन्तर प्रवाहमान जीवित मानव समाज की ही विकास-गाथा है। साहित्य मानव जीवन का अध्ययन एक रीति से करता है तो इतिहास दूसरी रीति से। दोनों की कार्यप्रणाली में

- -

2. Theory of Literature - Rene Wellek and Austin Warren,(trans.) B.S. Paliwal, pp.136-137.

1. The destiny of art in our time is to transmit from the realm of reason to the realm of feeling the truth that well-being for men consists in their being united together and to set up in a place of existing reign of force, that Kingdom of God, which is love, which we all recognise to be the aim of human being . . . " "What is Art? - Leo Tolstoy, p.12.

भिन्नता रहते हुए भी लक्ष्य एक ही है। मेडलिन डोरन का विचार यहाँ उद्धृत करना उचित होगा। " साहित्य विश्व तथा मानव जीवन का एक प्रकार से अध्ययन करता है, विज्ञान दूसरी रीति से, इतिहास तीसरी रीति से और दर्शन चौथी। लेकिन सभी अध्ययनों का अंतिम ध्येय निम्नानुसार है - " हम मानवों की आत्माएँ भ्रष्ट आत्माएँ हैं, मिट्टी के शरीर में निवास होने से वे आत्माएँ और भी कलुषित हो चुकी हैं।" उन आत्माओं को जहाँ तक हो सके पूर्णता की ओर ले जाना, पूर्णता में रुचि पैदा करना है।" [1]

साहित्य और इतिहास दोनों लोकमंगल को प्रतिष्ठित करते हैं, दोनों का लक्ष्य मानव को लोकमंगल की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्रदान करना है। उत्कृष्ट साहित्य का सृजन मनोरंजनार्थ न होकर लोकमंगल की भावना को लेकर होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं: - "कविता का अन्तिम लक्ष्य जगत के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है। इतने गंभीर उद्देश्य के स्थान पर केवल मनोरंजन का हलका उद्देश्य सामने रखकर जो कविता का पठन पाठन या विचार करते हैं वे रास्ते ही में रह जानेवाले पथिक के समान हैं। कविता पढ़ते समय मनोरंजन अवश्य होता है, पर उसके उपरान्त कुछ और भी होता है और वही और सब कुछ है। "[2]

साहित्य की प्रत्येक शाखा चाहे वह कविता हो, नाटक हो, उपन्यास हो या कहानी, प्रत्येक का मानव जीवन के साथ एक अटूट संबंध है, इनमें किसी न किसी रूप में कुछ संदेश प्रतिध्वनित होता है जिसका संबंध लोकमंगल से

---

1. Endeavours of art - Meclelin Doran, p.88.
(हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक - भुपटकर - पृ. 30 से उद्धृत)
2. चिन्तामणि - पहला भाग - कविता क्या है? - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल. पृ. 129

से रहता है। साहित्य की भान्ति इतिहास भी मानव कल्याण पर ज़ोर देता है। इतिहास मनुष्य को यह सिखाता है कि वह अतीत की उन भूलों को न दुहराये जो उसकी प्रगति के मार्ग को रोकती है एवं उसके मंगल के लिए विनाशकारी है। सन् 1857 की क्रान्ति हिंसात्मक क्रान्ति थी। इसी हिंसात्मक क्रान्ति के इतिहास से प्रेरणा लेकर गान्धीजी ने अपने स्वाधीनता संग्राम को अहिंसात्मक रूप दिया। - - - "स्पष्ट है गान्धीजी ने इतिहास से शिक्षा ग्रहण की। इसी इतिहास ने गान्धीजी को अपना संदेश दिया कि " गांधी हिंसा की लड़ाई में शत्रु से तुम्हारे देशवासी पहले ही परास्त हो चुके हैं। शत्रु तुमसे अधिक शक्तिशाली है। तुम्हारी रही-सही शक्ति पहले ही विनष्ट हो चुकी है। अतः तुम ऐसी भूल फिर न करना अन्यथा मानव संहार तो होगा ही, भारतीयों की स्वाधीनता और स्वराज्य की मौत सदा के लिए हो जाएगी और फिर युगों तक कल्पना में भी आशा नहीं की जा सकेगी। "- -- इतिहास के इसी संदेश को ग्रहण कर गान्धीजी ने अहिंसा और असहयोग के अस्त्रों से स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी जिससे घोर नरसंहार की पुनरावृत्ति नहीं हुई और अन्ततोगत्वा स्वाधीनता और स्वराज्य की उपलब्धि हुई। "[1] इतिहास की इसी महत्ता को दृष्टिगत करते हुए राजतरंगिनी के रचयिता इतिहासकार कल्हण ने '- "इतिहास को आनेवाली पीढ़ियों का शिक्षक माना है। वास्तव में इतिहास का महत्वपूर्ण उपयोग प्रगति के मार्ग का दिशाबोधन करना है। जिससे यात्री उसके मोड़ तोड़ को समझ सकें, उतार-चढ़ाव का ध्यान रखें। बवण्डरों के दचकों से बच सकें और रपटन और फिसलन से सतर्क होकर जाएँ - - - यह मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य का सूचक है और उनकी निरन्तर प्रगति का निदर्शक है। "[2]

---

1. हिन्दी कथा साहित्य में इतिहास - डा॰लक्ष्मीनारायण गर्ग - पृ॰ 36 (प्रथम सं॰ 1974)

2. इतिहास दर्शन - डा॰ बुद्ध प्रकाश पृ॰ 398 से उद्धृत

25 दिसंबर 1955 को कोयम्बत्तूर में एक व्याख्या देते हुए जवाहरलाल नेहरू ने कहा - "पिछले एक हजार या दो हजार वर्षों में इतिहास की वास्तविक शिक्षा यह रही है कि हम आपस में अलग रहें, और अन्य गुणों के होते हुए भी, लेकिन उस एकता के अभाव में, हमने हानि उठायी, इसलिए अब जब कि हम लोग स्वतंत्र व स्वाधीन हैं, हमें वही एकता बनानी है और उस प्रत्येक वस्तु को एक तरफ हटा देना है जो उस एकता के मार्ग में बाधक है। मैं यह चाहता हूँ कि हम लोग जाति, धर्म, राज्य व मनोविज्ञान की बाधाएँ तोड डालें जिससे एकता की भावनाएँ हम लोगों में बढ़ें तथा देश को शक्ति मिले।"[1]

साहित्य और इतिहास दोनों से समाज की किसी न किसी तरह की तस्वीर खींची जा सकती है। साहित्य समाज की चेतना में सांस लेता है। वह समाज का वह परिधान है जो जनता के जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण के ताने बाने से बुना जाता है। उसमें विशाल मानव जाति की आत्मा का स्पन्दन ध्वनित होता है। वह जनता के जीवन की व्याख्या करता है, इसीसे उसमें जीवन देने की शक्ति आती है। वह मानव को लेकर ही जीवित है। इसलिए वह पूर्णतः मानव केन्द्रित है। साहित्य उसी मानव की अनुभूतियों भावनाओं और कलाओं का साकार रूप है। मानव सामाजिक प्राणी है। सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा मनोभावों का जहाँ वह सृष्टा होता है, वहीं वह उनसे स्वयं भी प्रभावित होता है। इसी प्रभाव का मुखर रूप साहित्य है। इसीसे विद्वानों ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है।"[2]

इतिहास भी अपने को मुख्य रूप से समाज के चतुर्दिक ही केंद्रित करता है। मौरिसमेण्डलबाउम की राय में अतीत की समस्त घटनाएँ इतिहासकार

- -

1. Report in Hindustan Times, 26th December, 1955.
(हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन तथा संवैधानिक विकास - डा॰रामानन्द अग्रवाल
प्रस्तावना - पृ॰ 8 से उद्धृत)
2. साहित्यिक निबन्ध - राजनाथ शर्मा - एकादश सं॰ 1969 - पृ॰353

के क्षेत्र में नहीं आती । जातियों का उत्थान-पतन, किसी विशेष देश और काल की जीवन शैली, आर्थिक और बौद्धिक परिवर्तन, समाज के जीवन को बदलने में संस्थाओं या व्यक्तियों का योग और कार्य आदि इतिहास के विषय रहे हैं । जिस कार्य या घटना ने समाज के क्रम पर विशेष प्रभाव डाला हो वही इतिहासकार की गवेषणा का विषय होता है। यदि किसी प्राकृतिक घटना या वैयक्तिक विचार का सामाजिक गतिविधि से विशिष्ठ और व्यापक संबंध हो तो वह ऐतिहासिक महत्व रखता है अथवा समाज की भावनाओं को मुखरित करे। इतिहासकार का ध्यान प्रमुख रूप से समाज पर केन्द्रित रहता है। " [1]

साहित्य की सहितता का अर्थ अखंडता भी है। अर्थात् एक ओर वह मानव को मानवों से मिलाता है, उनकी अनुभूतियों को एक धरातल पर उपस्थित करता है तो दूसरी ओर वह कालगत दूरी की खाइयों को भी पाटता है। और वर्तमान को अतीत तथा भविष्य से जोड़कर कालगत अखण्डता का बोध कराता है। इतिहास के अनुशीलन का भी यही रहस्य है। - - - विविध घटनाओं में एक ही सत्य का संकेत करते हुए इतिहास हमें अखण्डता की दृष्टि प्रदान करता है। ' [2] टिलयार्ड ने लिखा - इतिहास काल एवं स्थान की दृष्टि से अलग किये गये मनुष्य को एक सूत्र में बांधता है। ' [3]

प्रत्येक युग का साहित्य अपने समाज या राष्ट्र का जीता-

- -

1. रीसेंट ट्रेन्ड्स इन दि थियरी आव हिस्ट्रियाग्रफी - मौरिस मेन्डल बाउम
(इतिहास दर्शन - बुद्धप्रकाश - पृ. 369 से उद्धृत)
2. चतुरसेन के उपन्यासों में इतिहास का चित्रण - विद्याभूषण भारद्वाज - (प्रथम संस्करण 1972 : पृ.22

3. History also knits together people separated by time and space" - 'Shakespeare's History Plays' - E.M.W. Tillyard, 4th impression, 1956, p.55.

जागता चित्र है । साहित्य एवं इतिहास के पारस्परिक संबंध पर प्रकाश डालते हुए राजबली पाण्डेय ने लिखा - "किसी देश के इतिहास की आत्मा को पहचानने के लिए उसकी परंपरा और जातीय संस्कारों से परिचय आवश्यक है। यह देश के साहित्य की घनिष्ठ जानकारी के बिना संभव नहीं । " [1]

साहित्य एवं इतिहास में वैषम्य :-

इतिहास प्राप्त सामग्री के आधार पर तथ्यों की खोज करके उनका परीक्षण विश्लेषण करके सत्य को निर्जीव अवस्था में जनता के सामने रखता है। लेकिन साहित्य इतिहास के कंकाल सत्य को मांसल बना देता है। साहित्य में मानवीय अनुभवों का जीवन की विस्तृत परिधि का तथा जनसाधारण के संपूर्ण संसार का जितना मार्मिक चित्रण मिलता है, उतना इतिहास में नहीं । इतिहास में तथ्यों के प्रति अगाध श्रद्धा रहती है, यह असीम श्रद्धा उसे जीवन के सत्यों से दूर कर देती है। साहित्य मानवीय सत्य की सरस उपलब्धि और स्थापना में तथ्यों की उपेक्षा भी कर सकता है। तथ्य उसके लिए बन्धन नहीं बन सकते उपकरण अवश्य हो सकते हैं।

इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास का अन्तर स्पष्ट करते हुए पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने जो विचार प्रकट किये, वह साहित्य और इतिहास के अन्तर को भी प्रकट करता है। - वे लिखते हैं - "इतिहास में राष्ट्र का उत्थान-पतन मुख्य विषय होता है। उसमें व्यक्ति के अपने जीवन की विशेष महत्ता नहीं रहती। राष्ट्र के उत्थान-पतन में जिन व्यक्तियों का हाथ रहता है, उनका वर्णन राष्ट्र का अंग होने से ही इतिहास में निबद्ध होता, स्वयं व्यक्ति का चरित्र उसमें गौण स्थान ही पाता है। उपन्यास में व्यक्ति को प्रधानता दी जाती है । देश के कर्मक्षेत्र में राष्ट्रीय जीवन का जो निर्माण होता है उसमें हम एक व्यक्ति के

---

1. भारतीय इतिहास का परिचय - प्रस्तावना - डा. राजबली पाण्डेय - पृ. 1

चरित्र को प्रधानता देकर उसीके सुख-दुख में देश और काल की विशेष परिस्थिति की प्रतिच्छाया देख लेते हैं। — इतिहास के पृष्ठों में जो राजा, सेनापति, नेता और शासक अपने अपने विशेष प्रभुताशाली पदों के कारण प्रख्यात हो गये हैं, उनके मानवीय भावों का उत्थान पतन हम उपन्यास में पाते हैं। - - - वे एकमात्र राष्ट्र के कर्णधार नहीं होते, वे मनुष्य होकर पिता, पुत्र, पति और प्रेमी रूप में भी प्रदर्शित होते हैं। तब हम उनके चरित्र और जीवन की गरिमा या हीनता का अनुभव करते हैं।" [1] अतः यह स्पष्ट है कि इतिहास मानव हृदय तथा मानव भावनाओं को उद्वेलित नहीं कर पाता जैसा कि साहित्य करता है। डा॰ धनंजय ने ठीक ही लिखा है कि कथा इतिहास से जो वस्तु ग्रहण करती है उसमें अनेक रेखाएँ ऐसी होती हैं जिनमें रंग भरने में इतिहास असमर्थ होता है। वह उन खाली रेखाओं को रंगकर जब उपस्थित करती है तो उनमें विशिष्टता आ जाती है एक प्रकार का आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। वृत्तान्तों और चरित्रों को आदर्श रूप प्रदान कर कथा उन्हें इतिहास की अपेक्षा अधिक पूर्ण बना देती है।" [2]

अब हमने साहित्य और इतिहास में क्या समता है, क्या अंतर है? इसपर विचार किया। मानव जीवन के लिए इतिहास और साहित्य इनमें से कौन महत्वपूर्ण है, इनके संबंध में विद्वानों में मतभेद है। पाश्चात्य विद्वान क्रोचे ने कविता और इतिहास दोनों को मानव जीवन के लिए अनिवार्य बताया है। [3] भारतीय विद्वान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इतिहास की अपेक्षा कविता को महत्वपूर्ण मानते हैं : - - "मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य असभ्य सभी जातियों में किसी न किसी रूप में पायी जाती है। चाहे इतिहास

- -

1. ऐतिहासिक उपन्यास : दिशा एवं उपलब्धि -पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : पृ॰ 73
(ऐतिहासिक उपन्यास : प्रकृति एवं स्वरूप : सं॰ श्री गोविन्दजी)
2. ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व : डा॰ धनंजय पृ॰

3. Poetry and history are, then, the two wings of same breathing creature, the two linked moments of knowing mind".

(क्रोचे, हिस्ट्री एज दि स्टोरी आफ लिबर्टी - पृ॰ 313)

न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो, पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा।" [1]

निष्कर्ष यह है कि साहित्य और इतिहास दोनों में श्रेष्ठ चाहे कोई भी हो, दोनों की आवश्यकता मानव को पड़ती है। न केवल साहित्य और न केवल इतिहास से हम अपने अतीत को समझ सकते हैं, दोनों का समन्वित रूप हमें कुछ प्राणवान वस्तु दे पाएगा।

इतिहासकार और नाटककार में कहीं कुछ साम्य है तो कहीं पर्याप्त वैषम्य भी है। इतिहासकार का ध्यान ऐतिहासिक घटनाओं, तिथियों एवं स्थूल घटनाओं और परिणामों पर केन्द्रित रहता है, लेकिन नाटककार की अभिरुचि केवल घटना विशेष या व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं रहता है। वह सामाजिक, राष्ट्रीय एवं धार्मिक परिस्थितियों के चित्रण करने की प्रबल इच्छा रखता है।

जहाँ इतिहासकार पात्रों के अन्तर्जीवन में घुसने में असफल सिद्ध होते हैं वहाँ नाटककार सफलता पाता है। नाटककार व्यक्ति की आन्तरिक अनुभूतियों का विश्लेषण करता है। विभिन्न परिस्थितियों के उपस्थित होने पर व्यक्ति के हृदय में होनेवाले संघर्ष विघर्ष को - - - व्यक्तिगत जीवन की उलझनों को नाटककार बड़ी सावधानी से चित्रित करता है। किन्तु इतिहासकार को व्यक्ति की आन्तरिकता से कोई मतलब नहीं होता। मनुष्य की अव्यक्त और व्यक्त अनुभूतियों और भावनाओं को चित्रमयी भाषा में वर्णित करके साकार बना देना इतिहासकार के वश की बात नहीं, यह नाटककार ही कर सकता है। भगवान बुद्ध द्वारा गृहत्याग के फलस्वरूप यशोधरा के दुख का उल्लेख शायद इतिहासकार कर दे, लेकिन वह उसके दुख के स्वरूप उसकी अभिव्यक्ति के आन्तरिक और बाह्य प्रकार का अत्यन्त सूक्ष्म चित्ताकर्षक वर्णन नहीं कर सकता। यह कार्य नाटककार का होता है। इतिहासकार,

---

1. चिन्तामणि - पहला भाग - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 148-149

महाराणा संग्रामसिंह और बाबर को युद्धभूमि में खड़ा कर सकते हैं, लेकिन वहाँ आने के पहले दोनों के मन में किस प्रकार का संघर्ष चल रहा था यह बताने के लिए इतिहासकार असफल सिद्ध होता है। नाटककार इन इतिहासपुरुषों के जीवन पर दृष्टि फेरते समय भी उनके व्यक्तित्व का अवलोकन करता है। उन महापुरुषों की मानसिक अवस्था एवं व्यक्तिगत रागद्वेष को स्पर्श करता है। इतिहासकार हमें यह ज्ञात कराता है कि कौन सम्राट या महापुरुष किस काल में उत्पन्न हुआ, उसकी शासन प्रणाली कैसी थी, उसके शासनकाल में कौन-कौन सी प्रमुख घटनाएँ घटित हुईं। किन्तु इस ज्ञान प्रदर्शन के बावजूद भी वह उस सम्राट या महापुरुष को हमारे सम्मुख इस प्रकार सजीव रूप में नहीं प्रस्तुत करता कि हम उसके हृदय का स्पन्दन, उसकी वाणी सुन सकें तथा उसे भावात्मक रूप से प्रत्यक्ष देख सकें। कारण कि वह जीवन के तथ्य मात्र देता है और घटनाओं का एक लेखा जोखा प्रस्तुत करके ही रह जाता है। जीवन के अन्तर में क्या है इस ओर वह दृष्टि नहीं डालता। "[1]

इतिहासकार की अपेक्षा नाटककार की एक विशेषता यह है कि जहाँ इतिहासकार मौन है वहाँ नाटककार मुखर होता है। सिकंदर के जीवन में कई ऐसे स्थान थे जो धुंधले थे और उनके आर-पार देखना मुश्किल था। जैसे यह बात कि महाराजा पुरु कैसे हार गये? और सिकंदर कैसे जीत गये? इतिहासकार साफ कहता है कि महाराजा पुरु बड़ा वीर और निपुण योद्धा था। उसका कद साढे छः फुट ऊँचा था। सिकंदर उसके सामने बच्चा मालूम होता था और पुरु की सेना पहाड़ से टकरा जानेवाली थी। इतिहासकार यह भी कहता है कि महाराज से लड़ने के बाद सिकंदर की सेना का साहस टूट गया था और सेना ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया था। अगर इतिहासकार यह नहीं बताता है कि पुरुराज जैसे शूर वीर योद्धा हार कैसे गया? वहाँ कहानी का सिलसिला टूटता था। यहीं नाटककार ने

- -

1. ऐतिहासिक उपन्यास - प्रकृति एवं स्वरूप - गोविन्दजी - पृ. 13।

अपनी सूझ-बूझ और कल्पना के कमाल से काम लिया। जो खाली स्थान थे उन्हें भर दिया, जो अटकावे थे, उन्हें दूर कर दिया और कहानी को चलने के लिए दोनों टाँगें दे दीं। अब कहानी आराम से चलती है। वह न लँगड़ाती है, न रुकती है, न ठोकर खाती है। अब कहानी का रास्ता सीधा और साफ है। इतिहासकार यह बताता है कि सिकंदर की सेना ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया और सिकंदर को विवश होकर यूनान लौटना पड़ा। मगर इतिहास नहीं बताता कि सिकंदर की सेना का साहस किस तरह टूटा? और सिकंदर ने जब यह बगावत देखी तो उसने क्या किया? इतिहास यह भी बताता है कि सिकंदर आठ दिन तक अपने खेमे में औंधे मुँह पड़ा रहा और रोता रहा। मगर इतिहास यह नहीं बताता कि उसकी सेना पर इसका क्या असर हुआ और सिकंदर ने अपने देश लौटना कैसे मंजूर कर लिया। यहाँ फिर शृंखला टूटती थी और कहानी बेजोड़ होकर रह जाती थी। इस जगह नाट्यकार फिर समुचित कारण लेकर आगे बढ़ा है और कहानी के चूल अपनी जगह बिठा दिये हैं।'[1]

अतः यह स्पष्ट है कि नाटककार में इतिहासकार की अपेक्षा इतनी निपुणता है कि जिस मनोजगत तक इतिहासकार की गति असंभव है, वहाँ कल्पना एवं मानवीय संवेदना के सहारे नाटककार की पहुँच है। इतिहासकार और नाटककार दोनों कल्पना का उपयोग करते हैं, लेकिन इतिहासकार के लिए कल्पना के पल्ले को पकड़ने की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी साहित्यकार के लिए आवश्यक है। --- दोनों की कल्पना में अन्तर है। जिस गंभीर उत्तरदायित्व से इतिहासकार बंधा रहता है, वह तथ्यों से दूर जाने की छूट नहीं देता, इसलिए नाटककार जैसे कल्पनाशील स्वायत्तीकरण (इमैजिनेटिक एप्रोप्रिएशन) तक को वह पहुँच जाता है। लेकिन इससे आगे नहीं बढ़ पाता है। मैकाले ने युक्तिपूर्ण ढंग से विचार

---

1. सिकंदर - सुदर्शन - भूमिका - पृ. 5 - 6 : दसवाँ सं. 1965

करते हुए लिखा है कि इतिहासकार में दशक कल्पना होनी चाहिए जिससे उसके वर्णन में स्पष्टता और प्रभावात्मकता परिलक्षित हो सके तो भी उसे इसपर नियंत्रण रखना चाहिए ताकि प्राप्त सामग्री में निरर्थक वक्तव्य जोड़कर हीनता उत्पन्न करने से वह अपने को रोक सके। उसमें पर्याप्त आत्मशक्ति भी होनी चाहिए, जिससे तथ्यों को कल्पना के द्वारा चाहे जिस रूप में परिवर्तित कर देने से अपने को बचा सके।"[1]

नाटककार, इतिहासकार से जो कथा ग्रहण करता है उसमें अनेक रहस्य एवं नीरस तथ्य भी होंगे। जहाँ इतिहास इनमें रंग भरने में असफल होता है, वहाँ नाटककार इनमें सहृदयता भरने का प्रयत्न करता है। इतिहासकार के निर्जीव तथ्यों को सजीव एवं पुष्ट बनाने के लिए नाटककार अपनी अलंकारिक भाषा एवं रोचक शैली का प्रयोग करते हैं। लेकिन इतिहासकार नाटककार की तरह आलंकारिक भाषा का प्रयोग नहीं करता। बात बात में वह नाटककार की तरह भावों और मुद्राओं का चित्रण नहीं करता। नाटककार कथावर्णन के साथ भाव और अनुभूति को भी ध्यान में रखता है, किन्तु इतिहासकार भाव और अनुभूति के वर्णन के स्थान पर घटनाओं को यथा-तथ्य रूप में प्रस्तुत करके नाम और तिथि निर्धारण को अधिक महत्व देता है।

इतिहासकार और नाटककार की कार्यप्रणाली में पर्याप्त भिन्नता है। सबसे पहले इतिहासकार कुछ सामग्रियों और उपकरणों को इकट्ठा करने का प्रयत्न करते हैं। सामग्री मिल जाने के बाद उसका परीक्षण निरीक्षण करता है। एवं उसके आधार पर स्थापित घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत करता है। प्राप्त सामग्रियों का अध्ययन एवं परीक्षण करते समय इतिहासकार

---

1. एस्सेज ऑन हिस्ट्री - मेकाले पृ. 72
(हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - पृ. 41)

की दृष्टि विशुद्ध वैज्ञानिक की होती है। डा॰ गणपति चन्द्र गुप्त ने भी लिखा है - "इतिहासकार आधारभूत तथ्यों का संकलन करता है, फिर वह उन्हें काल-क्रम से व्यवस्थित एवं वर्गीकृत करता हुआ प्रत्येक वर्ग की विशिष्ट प्रवृत्तियों के उद्गम एवं विकास की विवेचना करता है तथा तत्कालीन युग के परिप्रेक्ष्य में उनका मूल्यांकन करता है। इस प्रकार इतिहास लेखन का कार्य एक वैज्ञानिक शोध जैसा कार्य है जिसमें सामग्री संकलन, वर्गीकरण, विश्लेषण एवं संश्लेषण की विभिन्न प्रक्रियाओं का अवलंबन करना पड़ता है।" [1]

बेनीदित्तो क्रोचे ने अपने ढंग से इतिहासज्ञ की आवश्यकताओं का उल्लेख किया है - आदर्श इतिहासज्ञ वह है जिसके पास अतीत को यथावत् प्रतिबिंबित और पुनः प्रस्तुत करने के लिए दर्पण जैसी यांत्रिक सच्चाई और अविकलता है। जिसके पास सामग्री को छानने और पड़ताल करने के लिए वकील जैसी तर्क-बुद्धि है, जिसके पास विचित्र विरोधी वर्णनों के भीतर से सत्य तक पहुँचने का न्यायाधीश जैसा पक्षपातहीन न्याययुक्त भाव है, और अन्त में जिसके पास वह सूक्ष्म और पैनी आँख है, जिसमें नयी प्रमाणिक सामग्री का दर्शन होता है और नये नये अनाविष्कृत क्षेत्रों तक पहुँचा जा सकता है। " [2]

मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक " India what can it teach us " में इतिहासकार की कार्यप्रणाली का विचार

1• आधुनिक साहित्य और साहित्यकार - गणपतिचन्द्र गुप्त - प्रथम सं॰ पृ॰193

2• हिस्टिरिक - पृ॰ 220-23 - ऐन्सली कृत अनुवाद
(हिन्दू सभ्यता - राधाकुमुद मुकर्जी - पृ॰20, विषय प्रवेश से उद्धृत)

किया है। ७ ।

' The New Encyclopaedia Britanica ' के आठवें खण्ड में भी इस बात पर विचार किया गया है। "[2]

---

1. It seems to me more than ever the duty of the true historian to find out the real proportion of things to arrange his materials according to the strictist rules of artistic perspective and to keep completely out of sight all that may be rightly ignored by us in our passage across the historical stage of world. It is this favour of discovering what is really important that distinguishes the true historian from the mere chronicles, in whose eye everything is important particularly if he discovered it himself" - 'India What can it Teach Us? - Max Muller, pp.14-15.

2. A historian has to subject his sources to a whole series of preliminary investigations. First comes external criticism aimed at determining whether the sources are appropriate and adequate for the particular task in hand.

2. Once a haitorian has decided through the application of external criticism on the sources that are relevant to his purpose, he must next by 'internal criticism' make sure that he fully understands what he has selected" - The New Encyclopaedia Britanica, Vol. 8, 15th edn. p.958.

नाटककार के लिए यह वर्जित है कि वह पहले विषय सोचे, बाद में विषय को रोचक और संप्रेषणीय बनाने की बात भी सोचे। नाटककार में विषय तथा उसके प्रतिपादन के ढंग की समस्या अलग अलग उपस्थित नहीं होती। इतिहासकार और नाटककार दोनों की सामग्री एक ही है, जैसे वेशभूषा, भित्ति-चित्र, वास्तुमूर्तियाँ, पाण्डुलिपियाँ, पुरातत्व, सिक्के, दस्तावेज आदि। इतिहास-कार अपने सभी उपकरणों द्वारा जो सृष्टि करता है वह देश के काल, घटना, और संस्कृति के उत्तरोत्तर एवं क्रमिक परिवर्तनों की यथार्थ सूची अर्थात् इतिहास होता है। नाटककार उस सूची के अंश विशेष को ग्रहण कर उसे नाटक के सूक्ष्म शरीर में इस प्रकार सुसज्जित कर देता है कि वह साहित्य का संपूर्ण अंक बन जाता है।" [1]

इतिहासकार भावना को स्थान नहीं दे सकता। उसका आधार बुद्धि है। वह घटना प्रसंगों में कार्य कारण संबद्ध स्थापित करता हुआ उसे अधिकाधिक बुद्धिग्राह्य एवं विश्वसनीय बनाने का प्रयत्न करता है। एक बौद्धिक जिज्ञासा से ही इतिहासकार प्रेरित होता है, जब कि नाटककार प्रधानतः सौंदर्यात्मक तथा प्रतिभा ज्ञानात्मक पद्धति अपनाता है।

नाटककार की अपेक्षा इतिहासकार के लिए नियमों का बन्धन कठोर है। वह अपनी इच्छा के अनुकूल घटनाओं को तोड़ मरोड़कर उनमें परिवर्तन नहीं कर सकता। उसके सामने एक सीमा रेखा खींची होती है जिसके बाहर वह नहीं जा सकता और जाने पर उसका ज्ञान दूषित और अग्राह्य माना जाता है। नाटककार राजनीति, धर्म और संस्कृति, भूगोल, विज्ञान और इतिहास तथा समाजशास्त्र आदि के व्यावहारिक पक्ष की सीमा का अतिक्रमण कर सकता है, किन्तु

---

1. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक : जगदीश चन्द्र जोशी पृ.

इतिहासकार के पास इतिहास की सीमाओं में विचरण करने के सिवाय कोई अन्य मार्ग नहीं। इतिहासकार को घटनाओं का विवरण स्वयं प्रस्तुत करना पड़ता है। किन्तु नाटककार के पास अनेक पात्र होते हैं जिनके माध्यम से विभिन्न शैलियाँ अपनाकर वह अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है।

नाटककार खण्डित तथ्यों और घटनाओं को कल्पना की सहायता से संयुक्त कर पूर्ण रूप देता है। लेकिन इतिहासकार के लिए ऐसा करना वर्जित है। नाटककार अपनी कल्पना शक्ति से स्थूल सत्य के भीतर सूक्ष्म सत्य को ढूँढ निकालने का प्रयत्न करता है। इतिहासकार कम से कम अनुमान का सहारा लेना चाहता है, पर ऐतिहासिक नाटककार तथ्य को साधन बनाकर उसे रसमय बनाने के लिए कल्पना का यथेष्ट आश्रय लेता है। इतिहास को कलाकृति मानते हुए भी स्वयं मुंशी को इतिहास में कल्पना तत्व की सीमा स्वीकार करनी पड़ी। इतिहासकार बिना किसी आधार के किसी पात्र के कृत्यों का सृजन नहीं करता और न काल्पनिक वार्तालाप द्वारा चरित्र का निरूपण ही कर सकता है। इतिहासकार की कल्पना और सर्जकता को अतीत ऐतिहासिक प्रमाणों का कठिन बन्धन स्वीकार करना पड़ता है।" [1]

कलाकार की सर्जक कल्पना अतीत को प्रत्यक्ष और पुनर्जीवित कर सकती है जब कि इतिहासकार अपनी सीमा के भीतर कल्पना का उपयोग करने पर भी अतीत को पुनर्जीवित नहीं कर सकता, क्यों कि इतिहास का अतीत मृत अतीत है। इसी प्रकार यदि कोई नाटककार केवल इतिहासकार के चरण चिह्नों पर चले, उसमें कलात्मक प्रतिभा का प्रयोग न करे तो उसके नाटक निष्प्राण होंगे, इसमें संदेह नहीं।" [2]

---

1. आदि वचनों अने बीजां व्याख्यानो- कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी - पृ. 265
2. प्रिजिड लाइफ - टेनिसन्स ड्रामाज़ - शेक्सपीयर्स रोमन टेल्स : मेक केलर- पृ.90 (प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक - जगदीशचन्द्र जोशी - पृ.)

इतिहासकार छोटे छोटे और बिखरे हुए रंग बिरंगे टुकडों को बडी सतर्कता और सावधानी से जोडकर एक ऐसा आकार दे देता है जिसका स्वरूप उन छोटे छोटे अवयवों में निहित रहता है। यही इतिहासकार की कला है। परन्तु उन रंग बिरंगे टुकडों को देखने मात्र से ही ऐतिहासिक नाटककार के मनचक्षुओं के सामने एक सम्पूर्ण कलात्मक दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है। वे बिखरे हुए टुकडे उसकी प्रेरणा के लिए बाह्य उपकरण मात्र है इसलिए जहाँ इतिहासकार अपनी संश्लिष्ट संभाव्यता का प्रयोग करता है, वहाँ नाटककार अपनी सर्जक कल्पना का। ऐतिहासिक नाटककार इतिहास के किसी एक मेघखण्ड पर अपनी सर्जक कल्पना की विद्युत् से कितनी नयी आडी तिरछी रेखाएँ खींच सकता है। मेघ खण्ड इतिहास का है, रेखाओं से बने सारे चित्र नाटककार के अपने है। इस प्रकार नाटककार की कला के लिए इतिहास एक आधार मात्र रह जाता है।"[1]

मानव चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की दृष्टि से, नाटककार का इतिहास से कुछ अपेक्षित स्वतंत्रता लेना सहज स्वाभाविक है। वह इतिहास के महापुरुषों को व्यक्ति-मानव के स्वरूप में देखता है और घटना के परिणामों पर केन्द्रित होने की अपेक्षा उसके मूल कारण पर प्रकाश डालता है।"[2]

---

1. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक - जगदीशचन्द्र जोशी - पृ.

2. Tolstoy in his appendix to "War and Peace" writes:- An historian and an artist describing a historic epoch has two quite different tasks before them. As an historian would be wrong if he tried to present an historical person in his entirety, in all the complexity of his relations with all sides of life, so the artist would fail to perform his task were to be represent the person always in his historic significance. . . . The historian has to deal with the results

ऐतिहासिक नाटक परिभाषा :-

ऐतिहासिक नाटक का स्वरूप निर्धारण करनेवाली विविध व्याख्याएँ विभिन्न आलोचकों ने की हैं :-
बेकन के अनुसार -- "ऐतिहासिक नाटक इतिहास का दृश्य रूप या साक्षात्कार है। वह अतीत की कृतियों की वर्तमान प्रतिमा है।" [1]

ऐतिहासिक नाटक में अतीत और वर्तमान के बीच की अनुल्लंघ्य खाई को पाटने का प्रयत्न होता है। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए आर०डाटालर लिखते हैं :- सामयिक स्थिति का ~~चित्र~~ चित्रण अथवा उस क्षण के रहन सहन को अंकित करनेवाला नाटक आगे की पीढियों के ऐतिहासिक नाटक बनता है, पर वास्तविक ऐतिहासिक नाटक असल में पुनर्रचना का प्रयत्न होता है।

---

of an event, the artist with the fact of the event. . . . Either from his own experience or from his letters, memoirs and accounts, the artist realises a certain event to himself, and very often (to take the example of battle) the deductions the historian permits himself to make as to the activity of such and such armies prove to be the very opposite of artist's deductions.

1. इंग्लिश हिस्टरी इन शेक्सपीयर : आई०ए०आर०मेरियट - द्वि० सं० पृ ।
(हिन्दी मराठी के ऐतिहासिक नाटक - तुलनात्मक अध्ययन- प्रा०रा०ज्ञ०पटकर: पृ०48 से उद्धृत)

स्वीकृत सामग्री होती है, नाटककार उसे उठाता है। दृश्यक्रम से वह एक चित्र बनाता जाता है। यह चित्र अतीत विश्व का होता है और वह प्रस्तुत किया जाता है वर्तमान विश्व के मनोविनोद तथा हृदयबोध के लिए। ऐतिहासिक नाटक के द्वारा एक पुल बाँधा जाता है जिसपर से होकर समकालीन पीढ़ियों को इस पार से उस पार ले जाता है ताकि घंटे दो घंटे ये लोग उस (अतीत) विश्व की झाँकी पाएँ, अचरज करें, विस्मित हों और तब फिर अपने पूर्व परिचित परिवेश में रम जाएँ। " [1]

एच. एन. हडसन ने लिखा - ऐतिहासिक नाटक अतीत का सैकेन्द्रित इतिहास होता है। वह उस बिंदु पर हमारे विचार केन्द्रित करता है जहाँ सत्य के अनेक पहलू मिल जाते हैं और जहाँ नाटककार के विषय के क्षेत्र की एकता और विविधता के साथ दर्शक सर्वेक्षण कर सकते हैं। " [2]

" Dictionary of Literary Terms " में हारी शा ने ऐतिहासिक (नाटक की) परिभाषा दी है। ' [3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा-'ऐतिहासिक नाटक इतिहास की साहित्यिक प्रतिकृति है जो नाटककार की सृजनात्मक अथवा सृत्याभास कल्पनाशक्ति से परिवेष्टित होती है। " [4]

---

1. Drama and Life - आर. डाटलर : पृ. 52
2. Shakespeare - His life, Art and Character - The Rev. H.N. Hudson, Part II.
3. A drama dealing with events from history, especially critical and crucial episodes in the career of a ruler or outstanding military personage. A Historical play is synonymous with chronicle play, although the latter is more likely to deal with incidents involving only one major character and to make greater use of pageantry (Coronations, battle scenes, state funerals) than the former. - Dictionary of Literary Terms - Harry Shaw, p. 184.

4. चिन्तामणि - भाग 1 - पृ. 25

ऐतिहासिक नाटक : प्रेरणा एवं उद्देश्य

ऐतिहासिक नाटक लिखने की प्रेरणाएँ ही उनके उद्देश्य को निर्धारित करती है। दोनों में अन्तर इतना ही रहता है कि प्रेरणा भावात्मक रहती है जहाँ उद्देश्य कार्यात्मक तथा मूर्त रहता है।

बीते हुए युग के प्रति सहज जिज्ञासोन्मुखता ऐतिहासिक नाटककार के इतिहासाश्रय की पहली प्रेरणा है। अतीत के लोगों के रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्थाएँ जानने की मनुष्य की उत्सुकता प्रबल है, इतिहास मानव की इस जिज्ञासा का शमन करता है। नाटककार इतिहास की सीमा में प्रवेश करके अपने पूर्वजों के जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधियाँ जान लेते है और सृजनात्मक कल्पना शक्ति के द्वारा उन विगत घटनाओं को सरस, सुबोध एवं जीवन्त रूप में दर्शकों या पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है -- " अतीत की स्मृति में मनुष्य के लिए स्वाभाविक आकर्षण है। अर्थपरायण लाख कहा करें कि गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या फायदा, पर हृदय नहीं मानता, बार बार अतीत की ओर जाया करता है, अपनी यह बुरी आदत नहीं छोड़ता। इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। हृदय के लिए अतीत का एक मुक्ति लोक है जहाँ वह अनेक प्रकार के बन्धनों से छूटा रहता है और अपने शुद्ध रूप में विचरता है। वर्तमान हमें अन्धा बनाता रहता है, अतीत बीच बीच में हमारी आँखें खोलता रहता है। मैं तो समझता हूँ कि जीवन का नित्य स्वरूप दिखानेवाला दर्पण मनुष्य के पीछे रहता है ; आगे तो बराबर खिसकता हुआ दुर्भेद्य परदा रहता है। बीती बिसारनेवाले 'आगे की सुध' रखने का दावा किया करें, परिणाम अशान्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं। " [1]

---

1. चिन्तामणि - पहला भाग - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -
(लेख - रसात्मक बोध के विविध रूप - पृ. 209)

नाटककार को इतिहास के दबे हुए स्तरों में से कथानक ढूंढ निकालने की ओर प्रेरित करने में राष्ट्रीय चेतना एवं जातीय गौरव का महत्वपूर्ण हाथ है। राजनीतिक पराधीनता के कारण जब देश की दशा विकृत हो जाती है तो नाटककार देश में राष्ट्रीय आंदोलनों को अतीत की पृष्ठभूमि में अभिव्यक्ति प्रदान करना अपना दायित्व समझता है। राष्ट्र के उद्धार के लिए उत्तम आदर्शों को प्रस्तुत करना एवं देश के नवनिर्माण के मार्ग की बाधाओं को दूर करना वह अपना कर्तव्य मानता है। मोह निद्रा से ग्रस्त देश-वासियों को अज्ञान एवं मूर्खता से मुक्त करके उन्हें साहस प्रदान करने एवं उन्हें राष्ट्रीय मानापमान का बोध कराने के लिए देश के गौरवपूर्ण अतीत गौरव की ओर नाटककार का ध्यान जाना आवश्यक है। नाटककार इतिहास से ऐसे चरित्रों का आदर्श सामने रखता है जिन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा एवं एकता के लिए अथक प्रयास किया था, जनता के हृदय से आत्महीनता और पारस्परिक भेद भाव को मिटाकर एक राष्ट्र की भावना पर बल दिया था, पराधीनता का आमरण प्रतिकार करने की दृढ़ प्रतिज्ञा ली थी, अन्ततः स्वाधीनता के महायज्ञ में हंसते हंसते अपने प्राणों की आहुति भी दी थी। ऐतिहासिक नाटकों के उद्देश्य के सम्बन्ध में कालरिज का विचार महत्वपूर्ण है। वे लिखते हैं --'ऐतिहासिक नाटक का महान उद्देश्य अपने देश की महान् विभूतियों से जनता को परि-चित कराना होता है। इसके जरिये वह दृढ़ देश भक्ति की भावना को उत्ते-जित करता है, स्वदेश के प्रति प्रेम भाव जागृत करता है तथा सभी मनुष्यों को एक सूत्र में पिरोनेवाली सामाजिक जीवन की आधारभूत संस्थाओं के प्रति श्रद्धा को जागृत करता है।'[1] हेवुड के मत में इन नाटकों का उद्देश्य होता है प्रजा को शासन के प्रति आज्ञाकारिता सिखाना, पराक्रमी एवं बहादुर होते हुए भी जिन्होंने स्वार्थवश विद्रोह किये, बगावत की, ऐसे व्यक्तियों का लांछनास्पद अन्त दिखाना भी इन नाटकों का ध्येय होता है। जो आज्ञाकारी होते हैं- उनके

---

1. Lectures and notes on Shakespeare and other Dramatists - S.T. Coleridge, p.81

जीवन की समृद्धि का प्रदर्शन इन नाटकों में होता है। दर्शकों के निष्ठा भाव की जागृति नाटककार का ध्येय होता है। तथा भोली-भाली जनता को देशद्रोही एवं हीन कुचक्रों से सावधान करना नाटककार की आकांक्षा होती है।" [1]

इतिहास के ताने बाने में नाटक लिखे जाने का एक उद्देश्य यह भी हो सकता है कि वर्तमान की समस्या के लिए अतीत से उद्बोधन प्राप्त करना। देश की ज्वलन्त समस्याएँ नाटककार के हृदय को कचोटती है। विगत में वर्तमान सदृश्य परिस्थितियों को देखकर नाटककार उनकी ओर आकृष्ट होते है और उन घटनाओं को उठाकर नाटक लिख डालते है। जब कभी नाटककार अतीत में किसी ऐसे तत्व को देखता है जिसकी आवश्यकता आज भी है तो वह उस तत्व को जीवन में लाने का भरसक प्रयत्न करता है। श्री जगदीशचन्द्र जोशी के अनुसार ऐतिहासिक नाटककार जो कुछ कलाकृति प्रस्तुत करता है, वह वास्तव में वर्तमान की ही अनुकृति होती है, उसका दृष्टिकोण भले ही ऐतिहासिक हो। " [2] अमेरिका में अधिकांश ऐतिहासिक नाटककार अतीत के माध्यम से वर्तमान समस्या के समाधान के लिए ऐतिहासिक नाटकों की रचना में प्रवृत्त होते है। [3] अपने युग की समस्याओं को अतीत के संदर्भ में देखने

---

1. हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक: प्र.रा.भुपटकर- पृ. 70 से उद्धृत
2. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक : जगदीशचन्द्र जोशी - पृ.
3. 'It is however to be noted that whereas in general the Englsih writers tended to avoid using material from the past as commentary on present, American authors have tended to pursue a path diametrically opposed to this and to seek for themes which might aid them in expressing social judgements on the twentieth century' - World Drama, A. Nicoll, p.864.

से लाभ यह होता है कि अतीत के संदर्भ में प्रस्तुत समाधान अधिक प्रभावशाली एवं ग्राह्य बन जाते हैं । युग यथार्थ के प्रति सचेत समस्त नाटककारों ने चाहे वे किसी भी समय के किसी भी साहित्य के रहे हों समसामयिक समस्याओं को व्यक्त किया है। ऐतिहासिक नाटक वह दर्पण होता है जिसमें हम अपनी सामाजिक, राजनीतिक, कलात्मक जागरूकता का प्रतिबिंब पाते हैं ।" [1]

नाटककार इतिहास का आश्रय ग्रहण कर देश की सांस्कृतिक आत्मा के उदात्त एवं परिष्कृत रूप की सफल अभिव्यक्ति करते हैं जिससे आत्माभिमान एवं राष्ट्रीय गौरव की स्थापना हो जाए। वे अपने देश की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के आधार पर वर्तमान जीवन पद्धति को संचालित करने का आग्रह भी करते हैं ।

कभी ऐसा भी होता है कि एक चतुर ऐतिहासिक नाटककार इतिहास के विकृत तथ्यों को सही ढंग से प्रस्तुत करने के लिए ऐतिहासिक नाटक की रचना में प्रवृत्त होते हैं । इतिहास में तथ्य अपने सही रूप में बहुत कम सुरक्षित रह पाता है, जिसका समर्थन निम्नलिखित विवरण से होता है, - "कारलेट एलीजबेथ ने एक बार बोहेमिया के शासक अपने पितामह लुइस चौदह में जीवन की घटनाओं के बारे में इतिहास की किसी पुस्तक में पढा वह विवरण इतना काल्पनिक था कि एलीजबेथ को विवश होकर कहना पड़ा कि यदि अपेक्षाकृत निकट की घटनाएं जिन्हें हमने प्रत्यक्ष देखा, इस तरह से झूठे रूप में वर्णित होते हैं तो प्राचीन घटनाएं कितने सही रूपमें रही जाती होंगी।' [2] विदेशी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के साथ न्याय नहीं किया, अतः इन

---

1. : आर० हेटलर - पृ० 7
(हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा० धनंजय - पृ० 100 से उद्धृत)
2. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा० धनंजय - पृ० 39 से उद्धृत)

विदेशी इतिहासकारों के विरोध में विशिष्ट ऐतिहासिक तथ्यों की स्थापना के लिए वृन्दावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी आदि नाटककारों ने प्रयत्न किया है।'विषपान' के वक्तव्य में प्रेमी जी ने व्यक्त किया है – " ऐतिहासिक नाटकों की ओर मेरी विशेष रुचि है। मेरे देश का संपूर्ण इतिहास गलत तरीके से उपस्थित किया है। मैं उसपर नया प्रकाश डालना चाहता हूं।"[1] वृन्दावनलाल वर्मा लिखते है -- "आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के एक पुराने इतिहास प्रोफेसर फ्रूड ने अपने निबन्ध में लिखा है कि इतिहास के तथ्य ताश के पत्तों की भांति होते हैं, इनमें जिस इतिहास लेखक की जैसी इच्छा हो मन्दिर, मसजिद, क्लब घर, महल इत्यादि जो चाहे बना लें। अंग्रेजी लेखकों द्वारा लिखे गये भारतीय इतिहास पढते समय हम फ्रूड के कथन की वास्तविकता समझ सकते हैं, क्यों कि भारत का इतिहास लिखनेवाले अनेक अंग्रेजी लेखकों ने शोध के परिश्रम और विद्वत्ता के साथ इसको न्याय नहीं दिया।"[2]

इतिहास द्वारा अपेक्षित महत्वपूर्ण चरित्रों पर प्रकाश डालना, ऐतिहासिक नाटकों का ही एक अन्य उद्देश्य हो सकता है।भारत के व्यावसायिक इतिहासकारों ने शेरशाह के आदर्श चरित्र का परिचय नहीं कराया है। सेठ गोविन्ददास का'शेरशाह'नाटक शेरशाह से अधिक परिचित होने में प्रेरक सिद्ध होते है। 'प्रतिशोध' में हरिकृष्ण प्रेमी ने बुन्देलखण्ड के प्रामाणिक और विस्तृत इतिहास को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है, जो उपेक्षित सा रहा था। 'बिदा' और 'विषपान' के कथानक भी ऐसे है जिनकी ओर इतिहासकारों का ध्यान बहुत कम ही गया है।

ऐतिहासिक नाटक लिखने का और भी एक उद्देश्य हो सकता है, यह है पलायनवादी मनोवृत्ति का। ऐतिहासिक कथावस्तु को आधार

- -

1. विषपान - हरिकृष्ण प्रेमी - पुकार - पृ. 14 - पंचम सं. 1958

2. ऐतिहासिक उपन्यास : प्रकृति एवं स्वरूप : सं. गोविन्द जी पृ. से उद्धृत

बनाकर नाट्य रचना करने के मूल में ए० निकल ने पलायनवादी मनोवृत्ति की प्रेरणा ही मानी है। अंग्रेजी के अनेक नाटककारों ने वर्तमान संत्रास से मुक्ति के लिए इतिहास का आश्रय लिया है। " [1]

अतः ऐतिहासिक नाटकों की रचना का उद्देश्य केवल मनोरंजन या इतिहास का नाटकीय रूप उपस्थित करना मात्र नहीं। ऐतिहासिक नाटक लिखने के पीछे नाटककार की प्रेरणाओं एवं उद्देश्यों में से प्रमुख है - (1)अपने देश के अतीत से वर्तमान के लिए कुछ सीख प्राप्त करना और (2) मनुष्य का सार्वभौम ~~विकास~~ विकास। ऐतिहासिक नाटक का यह सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रतीत होता है। पाश्चात्य विचारकों ने ऐतिहासिक नाटकों के इस महत्व का ठीक इसी प्रकार के शब्दों में उल्लेख किया है :- मेकमिलन के अनुसार ऐतिहासिक नाटककार का उद्देश्य नायक के जीवन और उसके देश काल की चुनी हुई घटनाओं एवं परिस्थितियों की ठीक ठीक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति है। जो एक दूसरे से इस प्रकार संबद्ध है कि मानवता और उसके भविष्य पर नया प्रकाश पड़ सके। " [2]

---

1. World Drama, A. Nicoll, p.861.

2. प्रसाद के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नाटकों का अनुशीलन

(माधुरी वाजपेयी - प्रथम संस्करण 1969 पृ० 177)

ऐतिहासिक नाटक के तत्व

कथानक

ऐतिहासिक नाटक में कथा के लिए इतिहास का आश्रय ग्रहण किया जाता है। नाटक में प्रख्यात वृत्त के उपादान के औचित्य पर भरतमुनि ने प्रकाश डाला है। जैसे :-

अत एव च भरते प्रख्यातवस्तुविषयत्वं प्रख्यातोदात्त नायकत्वं च नाटकस्यावश्यकर्तव्यतयोपन्यस्तम । तेनहि नायकौचित्य विषये कविर्न व्यामुह्यति । यस्तूत्पाद्यवस्तु नाटकादि कुर्यात्तस्याप्रसिद्धानुचितनायकस्वभाववर्णने महान प्रसाद : "[1] ।

भरम मुनि ने नाटक के अन्तर प्रख्यात वस्तु का कथानक के रूप में उपादान करना और इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति को नाटक का नायक बनाना कवि का अनिवार्य कर्तव्य माना है। इसका कारण ही यह है कि प्रसिद्ध कथानक के पात्रों के चरित्र तथा उनकी शक्ति की सीमा कवि के सामने सर्वदा सन्निहित रहती है। अतः कवि उनका चित्रण करने में व्यामोह में नहीं पड़ता और पाठकों की भी उनके पात्रों के विषय में एक भावना बनी रहती है, अतः पाठक न तो उनकी संभावना में संदेह करते हैं और न उनका आस्वादन ही प्रतिहत होता है। उसके प्रतिकूल काल्पनिक नाटकादि की रचना में कवि को किसी पात्र के चरित्र की कल्पना स्वयं करनी पड़ती है। और परिशीलक जब उस नई घटना को पढ़ता है या उसका अभिनय देखता है तब किसी विशिष्ट पात्र के विषय में उसकी धारणा चित्रण के अनुकूल बन जाती है।

---

1. ध्वन्यालोक - श्रीमदानन्दवर्धनाचार्य विरचित: पृ.781-782
(द्वितीय खण्ड : व्याख्या लेखक डा. रामसागर त्रिपाठी - प्रथम सं. 1963)

इतिहास की सीमा अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत होने के कारण, ऐतिहासिक नाटककार को कथा के लिए अपनी रुचि तथा उद्देश्य पर खरा उतारनेवाला विषय मिलना कठिन है। अतः ए.डी. शफर्ड ने ठीक ही लिखा है-- "... हर काल में, हर घटना में, हर शिलालेख में, हर पुराने हथियार में और हर उद्धृत कविता में ऐतिहासिक नाटक के कथानक के बीज कि विद्यमान रहते हैं। कठिनाई होती है चयन की। यह जानना जितना महत्व रखता है कि किसे ग्रहण किया जाये उतनी ही महत्वपूर्ण यह जानकारी होती है कि किसे छोड़ दिया [illegible] जाय। " [1]

ऐतिहासिक नाटकों के कथानक में इतिहास का सत्य है, कल्पना का पुट भी विद्यमान है। इतिहास को इसके अनुकूल बनाने में कल्पना के उपयोग की सम्मति भारतीय आचार्यों ने दी है। प्रख्यात कथावस्तु पर आधारित नाटकों में रस सिद्धि के लिए मूल कथानक तक में अपेक्षित परिवर्तन करने की स्वीकृति दी गई है।

> तत्प्रख्यते विधातव्यं वृत्तमत्तविकारकम्
> यत्तत्रानुचितं किंचित नायकस्य रसस्य वा
> विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।" [2]

इसी प्रकार आनन्दवर्धन की स्थापना है कि नाटककार के मंतव्य की इतिश्री इतिवृत्त इतिहास आदि की घटनाओं को चित्रित मात्र कर देने से नहीं होती। रसात्मकता में बाधक अंशों को परिवर्तित कर देने का अधिकार उसे है।" - ध्वन्यालोक पर आनन्दवर्धन की 3, 14 पर वृत्ति ।

---

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व : डा. धनंजय, पृ.85-86 से उद्धृत
2. दशरूपक : धनंजय - तृतीय प्रकाश पृ. 24-25

ऐतिहासिक नाटक में कल्पना के प्रयोग के संबंध में अरस्तू का विचार आनन्दवर्धनाचार्य के मत से मिलता जुलता है। अरस्तू के नाटककार को घटनाएँ एवं पात्र और संभवतः वातावरण में भी मनोनुकूल परिवर्तन कर सकने का अधिकार है। लेकिन ऐसा होना चाहिए कि कल्पना की अतिशयता से इतिहास का सत्य विकृत न बन जाए। ऐतिहासिक नाटक को विशुद्ध कल्पनात्मक कला का कार्य माननेवाले अरस्तू वागहाट की दृष्टि में कलात्मक भूल करते है ।'' [1] अतः नाटककार के लिए यह अपेक्षित है कि इतिहास से कथानक ग्रहण करते समय वह ऐतिहासिक तथ्यों से अधिक दूर न जाए। स्केलिगर की मान्यता है कि नाटकीय स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो सत्य से अधिक से अधिक सजीव हो। " [2]

चरित्र चित्रण :-

चरित्र नाटक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है जिसकी उत्कृष्टता नाटक की सफलता का एक कारण है। कथावस्तु को गति देने एवं संघर्षों को दर्शक से केन्द्रित करने में चरित्र बहुत सहायक होते है । इनकी आन्तरिक संबद्धता हमारे अपने मनोभावों से रहती है। जैसी धारणा उनके प्रति मन में बनती है, उसी प्रकार के भाव मन में उठते है ।

यदि नाटककार अपने चरित्रों को प्रभावशाली व्यक्तित्व देना चाहता है तो इतिहास से उसे सहायता मिल सकती है। ऐतिहासिक नाटकों के यूरोपीय व्याख्याकार मंजोनी की धारणा है कि इतिहास को जितनी गंभीरता से नाटककार लेगा, उसके चरित्र उतने ही सजीव होंगे। इतिहास में ऐसा प्रभावशाली चरित्र पात्र है जो उसे आकर्षित करता है। उससे मानव प्रकृति के बारे में

---

1. Literary Studies - W. Vag Hwat, Part III, P.183.
2. The events . . . . should be made to have such sequences and arrangement as to approach age near age possible to truth, J.C. Skaliger-poetics 'European Theories of Drama', p.62

बहुत कुछ जाना जा सकता है। नाटककार उस चरित्र को ग्रहणकर उसे उभारता है। चरित्र निर्माण में नाटककार ऐतिहासिक तथ्यों की सीमा से अलग नहीं हटता है, जहाँ अपने अभिप्राय की पुष्टि उसे करनी होती है अथवा किसी विशेष संदर्भ में उसे अधिक महत्वपूर्ण बनाना होता है। लेसिंग की स्थापना में "भी नाटककार को तथ्यों से अधिक महत्व पात्रों को देना चाहिए", प्रच्छन्न रूप से यह संकेतित है कि तथ्यों के फेर में पड़कर पात्रों के मनाविज्ञान को नष्ट करना श्रेयस्कर नहीं।"[1] कार्य के पीछे व्यक्ति का जो मनोविज्ञान होता है उसे भी दिखाना आवश्यक है। अन्यथा वह यान्त्रिक जैसा प्रतीत होगा। जैसे महाराणा प्रताप ने जंगल में घास की रोटियाँ खाकर कुछ दिनों तक जीवन व्यतीत किया था, वह एक ऐतिहासिक तथ्य है। नाटक में यदि इतना ही दिखाया जाय तो प्रभावात्मकता नहीं आएगी। इस स्थिति में किस तरह के विचारों से वे आन्दोलित हुए थे इसे सूक्ष्मता से दिखाये बिना सजीवता नहीं आ सकती। इतिहास के प्रमुख चरित्रों को चित्रित करते समय तथ्यों को न बदलते हुए भी मनोविज्ञान की रक्षा करनी होती है। अप्रधान चरित्रों के साथ इस तरह का बन्धन प्रायः नहीं रहता। दर्शक उसे अपरिचित या अल्प परिचित होने से उनके प्रति पहले कोई धारणा नहीं रखता। इससे स्वरूपमें परिवर्तन कर देने पर भी नाटकीय प्रभाव में कमी नहीं आती।

कल्पकथा की कृतियों के चरित्रों का वर्णन रस्किन ने सर्वसाधारण मानवों के प्रतिनिधियों के रूपमें किया है - व्यक्ति जो एक बार अस्तित्व में आ थे और जो फिर दुबारा अस्तित्व में आनेवाले है। इनमें परिवर्तन आया हो तो इतना ही कि विशिष्ट युग में प्रचलित विशिष्ट चालढाल तथा रहन सहन परिवर्तन आया हो। ये चरित्र वही करेंगे जो एक बार किया जा चुका है। उनकी भावनाएँ वे ही होंगी जो एक बार किसी की रही होंगी,

---

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा॰ धनंजय पृ॰ 88 से उद्धृत

आगे चलकर ये ही क्रियाएँ की जाएँगी, ये ही भावनाएं हृदय को छू जाएँगी और इन्हीं विचारों का मन्थन मस्तिष्क में होगा। दर्शकों को इस बात की प्रतीति करा देना कि चरित्र रास्ते के नर-नारियों की तरह जीवित व्यक्ति है सरल बात नहीं है। " 1

भाषा :-

ऐतिहासिक नाटकों का संबंध अतीत युग के साथ है। अतीत युग वर्तमान युग से भिन्न होता है। इसलिए भिन्न युग के लिए भिन्न भ भाषा का प्रयोग वांछनीय माना जा सकता है। चूँकि अतीत युग पुराना युग होता है, पुरानी शब्दावली और रचना प्रयोगों द्वारा पुराने युग की झाँकी दी जा सकती है। निकटतम अतीत के युग की कथा में वर्तमान कालीन भाषा का प्रयोग क्षम्य माना जाएगा, बशर्ते जिस देश की कथा हो उस देश में वह भाषा बोली जाती हो। ऐतिहासिक रचना में प्रयुक्त भाषा के संबंध में स्काट का अभिप्राय निम्नानुसार है —

जिस रचना का ध्येय मनोरंजन मात्र होता है उसकी अभिव्यक्ति सहज बोधगम्य होनी चाहिए। जनसेवक केवल पुरातत्वान्वेषियों को संबोधन करता है तो उसे साधारण पाठक की इस शिकायत के लिए तैयार रहना चाहिए - 'सब कुछ मैं समझता ही, नहीं, मुझे इससे क्या सरोकार?' "जो व्यक्ति प्राचीन भाषा के अनुकरण में सफलता पाता है उसे उसकी व्याकरणिक प्रकृति, अभिव्यक्ति के ढंग और रचना प्रणाली की पद्धति पर अधिक ध्यान देना चाहिए। उसे अप्रचलित, विलक्षण शब्दों को ढूंढने का प्रयत्न न करना चाहिए, क्योंकि प्राचीन लेखकों द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्द आज भी प्रचार में हैं भले ही उसमें कुछ अर्थ-

---

1. हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक : तुलनात्मक अध्ययन - भुपटकर पृ॰ 604 से उद्धृत

परिवर्तन एवं वर्तनी में अंतर आया हो। लेकिन ऐसे परिवर्तनों का अनुपात भी 1 : 10 से अधिक नहीं होता। आगे चलकर स्काट यह भी लिखते हैं कि लेखक को अपनी रचना में जिस सामग्री का प्रयोग करना होता है, लेखक को मालूम होगा भाषा एवं रहन सहन की वह सामग्री वर्तमान में भी औचित्यपूर्ण है जितनी उसकी अंकित घटना के समय में रही होगी।" 1

लेखक ने जो काल अपनी रचना के लिए चुना होगा, उस काल के लेखकों की रचनाओं का जहाँ तक हो सके, अध्ययन तथा अनुकरण करना होगा। यदि उसका चुना हुआ इतिहास युग सुदूर अतीत से संबद्ध है तो उसे कम से कम उस काल का भाव और रहन सहन पकड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। दुरूह प्राचीनता का बहिष्कार करना चाहिए। अतीत फिर भी वर्तमान में प्रयुक्त सरल शब्दों का प्रयोग उसके लिए वांछनीय है।

वातावरण :-

वातावरण ऐतिहासिक नाटक का स्थाई अंग है, जो किसी भी नाटक को अन्य नाटक के प्रकारों से अलग करके ऐतिहासिक नाटक के पद पर प्रतिष्ठित करता है और इतिहास की गरिमा प्रदान करता है। वातावरण की सहायता से नाटककार पाठक को वर्तमान से उठाकर भिन्न किसी सुदूर ऐतिहासिक काल में पहुँचाता है, और उस संसार की, उस युग की प्रत्येक वस्तु एवं प्रत्येक व्यक्ति से उसकी पहचान कराता है। जिस प्रकार मरुस्थल को पार कर किसी पार्वत्य प्रदेश के समीप पहुँचते ही शीतल और सुमधुर समीर के झोंकों से यात्री को नवीन प्रदेश का आभास मिल जाता है, उसी प्रकार ऐतिहासिक वाता-

---

1. - ए.एम.क्लार्क - पृ. 9 - 10 (1946)

वरण द्वारा ही हमें आज के भिन्न देश और काल के नूतन वातावरण का आभास मिलता है। अतः इसे देश काल भी कहा जा सकता है।" [1]

ऐतिहासिक नाटक को आन्तरिक विस्तार प्रदान करने वाले तत्वों में मुख्य है वातावरण। इसके सृजन में तत्कालीन भौगोलिक परिस्थिति, आचार-विचार, वेशभूषा, रीति-रिवाज, खान-पान, उत्सवों, संबोधनात्मक पद, अभिवादन पद्धतियाँ, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियाँ सहायक सिद्ध होते हैं। हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में वातावरण की सृष्टि के लिए राजा को परम भट्टारक, मंत्री के लिए महाकुमारामात्य, अमात्यवर, बड़ी रानी के लिए महादेवी के प्रयोग से पुराने सांस्कृतिक वातावरण लाने में सहायता मिली है। राजदरबारों में नृत्य, गान, शराब आदि ऐतिहासिक युग के वैभव विलास के सूचक है जो प्रायः सभी ऐतिहासिक नाटकों में समाविष्ट होकर नाटक को युग के अनुकूल बनाते हैं। तत्कालीन वातावरण का यथार्थ चित्र अंकित करते हैं। वास्तव में जो नाटककार अपने ऐतिहासिक नाटकों में उन युगों की भाव भाषा, आचार विचार एवं रीति नीति को ढालने में सफल होता है, वही श्रेष्ठ कहलाता है और उसकी कृतियाँ उच्च कोटि की रचनाओं में गिनी जाती है।"[2] रैब ने ऐतिहासिक नाटककार की असफलता का मूल कारण वातावरण एवं देश काल में खोजा है।" [3]

नाटक में जिस देश या जिस काल का चित्रण होता है उसकी मर्यादा के अभाव में नाटक हास्यास्पद हो जाते हैं। किसी ऐतिहासिक नाटक में बादशाह हुमायूं को अंग्रेजी वेशभूषा में दिखाना ~~मोटर की सीट का कार्य~~ अर्जुन-

- -

1. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक - जगदीश चन्द्र जोशी पृ.
2. हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि का विकास - डा.शान्ति मालिक, प्रथम सं.पृ.524
3. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक - जोशी पृ. 34 से उद्धृत

और गुप्तकाल में मोटर की दौड का वर्णन करना ऐतिहासिक नाटक की हत्या करना है। अशोक के काल में युद्ध वर्णन करते समय तत्कालीन सैनिक व्यवस्था का इतिहास के अनुसार चित्रण न करके हवाई जहाज या प्रक्षेपणास्त्र द्वारा युद्ध दिखाना अस्वाभाविक एवं हास्यास्पद होगा। ऐसे वर्णनों की जितनी अधिकता होगी हँसनेवालों की संख्या भी उतनी ही अधिक होती जाएगी। रचनाओं के ऐतिहासिक औचित्य पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - "यदि बाबर के सामने हुक्का रखा जाएगा, गुप्तकाल में गुलाबी या फिरोजी रंग की साड़ियाँ, मेज पर सजे गुलदस्ते, झाड फानूस, लाए जाएँगे, सभा के बीच खड़े होकर व्याख्यान दिये जाएँगे और उनपर करतल ध्वनि होगी, बात बात में धन्यवाद, सहानुभूति ऐसे शब्द, सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना ऐसे फिकरे पाए जाएँगे तो काफी संख्या में हँसनेवाले और नाक भौं सिकोड़नेवाले मिलेंगे।"[1] ऐतिहासिक नाटकों में वातावरण की महत्ता पर डा॰ रमासेन गुप्त ने प्रकाश डाला है - "ऐतिहासिक नाटकों का स्वरूप उसके ऐतिहासिक तथ्य, कार्यकारण परंपरा, काल्पनिक वस्तु तथा पात्र सृजन के अतिरिक्त ऐतिहासिक वातावरण सृजन पर अधिक निर्भर करता है। सुदूर अतीत के स्थान, काल क्रियाओं का इस तरह चित्रण करना कि वे वास्तविक प्रतीत होते हुए भी विगत लगें, आधुनिक विचारों का समावेश होते हुए भी वे भूतकाल प्रतीत हों, सजीव चित्रण होते हुए भी भूत का एक झीना पर्दा उनकी रहस्यात्मकता, सुदूरता तथा गंभीरता की सृष्टि करें - ऐतिहासिक नाटकों की यह कसौटी है। लेखक की कुशलता, इसी वातावरण चित्रण पर निर्भर करती है एवं जो लेखक जितने सुदूर अतीत के रहस्यमय चित्र को स्पष्ट तथा सजीव रेखाओं में खींच सकता है वह उतना ही सफल ऐतिहासिक नाटककार है।"[2]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ॰ 514

2. हिन्दी तथा बँगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन - डा॰ रमासेन गुप्ता : पृ॰ 82 - प्रथम सं॰ 1971।

ऐतिहासिक नाटक :- वर्गीकरण

ऐतिहासिक नाटकों के वर्गीकरण के विभिन्न आधार निम्नलिखित है : -

1. नाटक में इतिहास को अपनाने की विधि ।
2. नाटक में स्वीकृत इतिहास काल।
3. विषय वस्तु या वर्ण्य विषय ।
4. उद्देश्य ।

इतिहास को अपनाने की विधि :

नाटक में इतिहास एवं कल्पना तत्वों का समावेश किस अनुपात में होता है इस आधार पर ऐतिहासिक नाटकों को चार श्रेणियों में विभक्त कर सकते है ।

1. विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक:-

इनमें इतिहास का आधार दृढ एवं ठोस होता है। कल्पना की न्यूनता है। प्रायः सभी प्रधान पात्र, घटनाएं, वातावरण ऐतिहासिक होवे हैं। नाटककार ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र को भी ज्यों का त्यों स्वीकार करते है । नाटककार कभी कभी कुछ काल्पनिक पात्रों की सृष्टि करते है जो प्रधान चरित्रों को गति देने के लिए और संघर्षों की योजना के लिए सहायक सिद्ध होते हैं । विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक की रचना करते समय नाटककार को इतिहास से तटस्थ रहना पडता है। दूसरी और नाटकीय शिल्प की और से भी सावधान रहना पड़ता है। संभवतः इस निर्वाह में असमर्थ होने के कारण ही विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक कम लिखे जाते है ।" [1]

---

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व : डा. धनंजय - पृ. 6।

उदा : जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, उदयशंकर भट्ट का 'शक विजय', लक्ष्मी नारायण मिश्र की 'वितस्ता की लहरें'।

मिश्र ऐतिहासिक नाटक :-

इन नाटकों में मूल कथानक ऐतिहासिक है। अर्थात् इतिहास कथा की दिशा का संकेत करता है। प्रधान चरित्र कल्पना के आधार पर निर्मित है। कभी कभी प्रधान पात्र ऐतिहासिक होता है और कल्पित वृत्तों में उन्हें जोडकर वातावरण के जरिये ऐतिहासिकता उत्पन्न करता है। उदा: जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद का - 'प्रताप प्रतिज्ञा'।

काल्पनिक ऐतिहासिक नाटक :-

इनमें कथानक, पात्र सभी अनैतिहासिक है। पाठकों में ऐतिहासिकता का बोध लाने के लिए वातावरण का सहारा लेता है। नाटक में किसी ऐतिहासिक ख्यात व्यक्ति का उल्लेख करके ऐतिहासिकता का भ्रम उत्पन्न करता है। राधाकृष्णदास का 'सती चन्द्रावली' काल्पनिक ऐतिहासिक नाटक है। नाटक से औरंगजेब का कोई संबंध नहीं। फिर भी ऐतिहासिक वातावरण उत्पन्न करने के लिए उसका नामोल्लेख कर दिया गया है। भारतेन्दु का 'नीलदेवी' भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

काल के आधार पर :-

नाटककार अतीत के जिस युग को अपनाता है उसके आधार पर तीन प्रकार के ऐतिहासिक नाटक उपलब्ध होते हैं।

1. प्राचीन कालीन ऐतिहासिक नाटक।
2. मध्यकालीन ऐतिहासिक नाटक।
3. आधुनिक कालीन ऐतिहासिक नाटक।

विषय की दृष्टि से :-

दो प्रकार के ऐतिहासिक नाटक मिलते है :-

1. घटना प्रधान ऐतिहासिक नाटक ।
2. चरित्र प्रधान ऐतिहासिक नाटक ।

घटना प्रधान नाटकों में घटनाएं ही घटनाएं उपस्थित की जाती है । इनमें घटनाओं की श्रृंखला मात्र प्राप्त होती है।

चरित्र प्रधान नाटकों में ऐतिहासिक नाटकों के लिए इतिहास के विशिष्ट युग तथा विशिष्ट समस्याएं अपने ढंग से औचित्यपूर्ण सिद्ध होती है । ऐतिहासिक चरित्र में रुचि रखनेवाले नाटककार को अतीत के उन्हीं युगों तथा उन्हीं पहलुओं को अपनाना चाहिए जिनमें व्यक्तित्व केवल प्रभावी ही नहीं रहता, बल्कि जीवन की हर अवस्था में विश्व पर अपनी धाक जमाए रहता है।

चरित्र प्रधान ऐतिहासिक नाटक घटना प्रधान नाटकों की अपेक्षा अधिक ऊंची श्रेणी के प्रतीत होते है । किन घटनाओं ने मानव को किस रूप में प्रभावित किया, तथा घटनाओं से प्रभावित होते हुए मानव उन घटनाओं का किस प्रकार प्रतिकार करता गया, विजय किसकी हुई आदि बातें नाटककार तथा दर्शकों के लिए सबसे महत्वपूर्ण होती है , विजय और पराजय अपने आप में महत्व नहीं रखती। विजय या पराजय में विद्यमान मनुष्य की संघर्ष वृत्ति महत्व की होती है। जीवन से संघर्ष करते हुए मनुष्य यदि अपना आशावादित्व अक्षुण्ण रखता है तो हर ऐसे एक मनुष्य की सामर्थ्य के प्रति प्रति श्रद्धा होनी चाहिए। चरित्र-प्रधान ऐतिहासिक नाटक इसी श्रद्धा के विकास में योग देता है।

उद्देश्य की दृष्टि से :-

तीन प्रकार के नाटक है ।

1. ऐतिहासिक राष्ट्रीय नाटक।

2. ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटक।

3. जीवनीपरक नाटक ।

ऐतिहासिक राष्ट्रीय नाटक :- इस प्रकार के नाटकों में राष्ट्रीयता का स्वर प्रबल रहता है। इनका मूलाधार राष्ट्रीय और नैतिक चेतना है। इनमें वीरता, देश-भक्ति एवं राष्ट्रीय एकता की भावनाएँ प्राप्त होती हैं । ऐतिहासिक राष्ट्रीयनाटकों के मुख्य उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए डा॰ शान्ति मलिक ने लिखा - "इन नाटकों का मुख्य उद्देश्य मानवता का चित्र प्रस्तुत कर, मनुष्य का सार्वभौम विकास करनेवाले तथा स्वराष्ट्र रक्षा में सहायता देनेवाले तत्वों को विकसाना तथा राष्ट्र के अस्तित्व को दुर्बल करानेवाले उपकरणों से सजग करना है। " [1]

ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटक:- इनमें सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना स्पष्टतःदिखाई पड़ती है। देश की सांस्कृतिक एवं सभ्यता का चित्रण मुख्य रूप से नाटक में होता है। इन नाटकों में सांस्कृतिक चेतना का स्वर प्रबल रहने के कारण राष्ट्रीय पुकार का स्वर मंद पड़ता है।

जीवनीपरक ऐतिहासिक नाटक :- इन नाटकों की रचना आदर्श पुरुषों - उत्कृष्ट साहित्यकार, नेता लोग, महात्मा - की जीवनियों को लेकर की जाती है।ऐसे नाटकों में लेखक का प्रयास प्रायः यही रहता है कि जिस चरित्र को वह नाटकीय रूप देने जा रहा है - उससे संबंध तत्कालीन प्रमुख घटनाएँ एवं उसके द्वारा प्रतिपादित विशिष्ट सिद्धान्त व आदर्श इस प्रकार साहित्यिक रीति से ग्रथित हो जाएँ कि जिससे उसके चरित्र की एक स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष झलक सामाजिकों व पाठकों को प्राप्त हो सके । इसके निमित्त लेखक को कतिपय मौलिक परिवर्तन, अर्थात् घटनाओं को

---

1. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास : डा॰ शान्ति मलिक पृ॰ 26।

आगे पीछे करना पड़ता है जिससे नाटकीय संगठन में सहायता मिलने के साथ साथ नाटकीय प्रभाव एवं रोचकता में भी वृद्धि हो सके। " ।

****

****

---

1. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - डा॰ शान्ति मलिक - पृ॰ 303

द्वितीय अध्याय

हिन्दी ऐतिहासिक नाटक : उद्भव और विकास

::: द्वितीय अध्याय :::

हिन्दी ऐतिहासिक नाटक :: उद्भव और विकास

हिन्दी में ऐतिहासिक नाटकों का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। उस समय की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ साहित्यकारों में युगबोध की चेतना जागृत करने में सहायक सिद्ध हुई। अंग्रेजी शासन भारतवासियों के लिए केवल राजनीतिक दृष्टि से नहीं वरन् धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी एक अभिशाप था। विदेशी सत्ता की जंजीरों में जकड़ी जनता पराभुखापेक्षी हो गई थी। अंग्रेजों ने जनता में परस्पर अविश्वास, ईर्ष्या, कलह आदिमनोवृत्तियाँ पनपने के वातावरण की सृष्टि की। फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान शत्रु बन गये। भारतवासियों को भुलावा देने के लिए अंग्रेज शासक नई सुविधाओं और विज्ञान के चमत्कारों का प्रयोग कर रहे थे। अंग्रेजों द्वारा बिछाये गये कूटनीति के जाल में फंसे भारतवासियों ने वास्तविक वस्तु स्थिति समझ ली कि अंग्रेज उन्हें शरीर से ही नहीं, वरन् आत्मा से भी दास बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। देशवासियों की असंतृप्ति एवं विवशता ने 1857 की जनक्रान्ति का रूप धारण किया। इस क्रान्ति का भारतीय इतिहास में विशेष महत्व है जिससे देश में राजनीतिक जीवन का संचार हुआ और सुधारवादी भावनाओं का प्राबल्य हुआ। देशवासियों को देश की दुर्दशा से अवगत कराकर उनमें देशप्रेम की भावना जगाना साहित्यकों ने अपना कर्तव्य समझा। देश की दुरवस्था तथा विदेशियों के अत्याचारों ने गद्यलेखकों को यथार्थवादी मनोदृष्टि दी। जनमानस में सुलगी हुई स्वाधीनता की चिनगारी को प्रज्वलित ज्वाला में बदलने के लिए जनता को अपने स्वर्णिम अतीत का स्मरण दिलाना आवश्यक था जिससे उनमें स्वाभिमान की भावना जाग उठे। इतिहास ही सबसे उपयुक्त माध्यम था जिसकी ओट में वर्तमान समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया जा सकता था।

ऐतिहासिक नाटक लिखने की प्रेरणाओं पर अपने विचार प्रकट करते हुए डा॰ भुपटकर लिखते है ---" 1854 के आसपास भारत के तीन प्रमुख नगरों में विश्वविद्यालय स्थापित हो चुके थे। ---अंग्रेजी के अध्ययन में शेक्स्पीयर का एकाध ऐतिहासिक नाटक रहा करता था। विश्वविद्यालय के साथ साथ कुछ नगरों में अंग्रेजों ने अपने मनोविनोद के लिए नाट्य गृह भी खोल रखे थे। इन नाट्य मंदिरों में अंग्रेजी नाटकों के अभिनय हुआ करते थे जिनमें शेक्स्पीयर के ऐतिहासिक नाटकों की प्रधानता रहा करती थी। कुछ विश्वविद्यालय तथा शिक्षा संस्थाएं भी अपने वार्षिक स्नेहसम्मेलन आदि के अवसरों पर शेक्स्पीयर का एकाध ऐतिहासिक नाटक खेला करती थी। ... इन दो साधनों से भारत की पढी लिखी जनता इंग्लैंड के महान् अमर नाटककार शेक्स्पीयर से परिचित हो चुकी थी और प्रभावित थी। शेक्स्पीयर की देखादेखी ऐतिहासिक नाटक लिखने का मोह भारतीय साहित्यकारों को होना अनिवार्य था। " [1]

ऐतिहासिक नाटकों के विकास क्रम को तीन अवस्थाओं में रखा जा सकता है।

प्रथम अवस्था — सन् 1881 से 1915 तक
द्वितीय अवस्था— सन् 1916 से 1936 तक
तृतीय अवस्था — सन् 1937 से आज तक

विशिष्ट नाटककारों के नामोल्लेख के आधार पर इन तीनों अवस्थाओं में लिखे गये नाटकों को क्रमशः भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन नाटक, प्रसाद युगीन नाटक एवं प्रसादोत्तर नाटक कहा जा सकता है।

प्रथम अवस्था :: भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग :-

ऐतिहासिक नाटक का जन्मदाता बाबू भारतेन्दु हरिश्चंद्र

---

1. हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक: तुलनात्मक विवेचन - प्र॰ रा॰ भुपटकर पृ॰ 282, प्रथम सं॰ संवत् 2027

है। 1880 में रचित 'नीलदेवी' हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक नाटक है। इस युग में भारतेन्दु के अतिरिक्त एक भी ऐसे प्रतिभाशाली नाटककार का उदय नहीं हुआ है जिसने नाटक के क्षेत्र में सफल प्रयोग किया हो। उनका उदय उस समय हुआ जब कि प्राचीन और नवीन विचारधाराओं के बीच संघर्ष चल रहा था। उन्होंने न तो प्राचीन का अपमान किया, न उसके मोह में बंधे रहे। उन्होंने न तो नवीन का अंधानुकरण किया और न उससे सशंकित ही रहे। कहना चाहिए कि भारतीय नाट्यशास्त्र के बन्धनों के झमेले में न पड़कर और साथ ही पश्चिमी कला का अन्धानुकरण न करके उन्होंने स्वाधीनता से लिखना आरंभ किया और नवीन पथ का निर्माण किया।" [1]

पाश्चात्य देशों की तुलना में अपने देश को पिछड़ा हुआ देखकर तथा विदेशी शासकों के पंजे में दबे हुए अपने देश का करुण क्रंदन सुनकर भारतेन्दु की आत्मा छटपटा उठी। उनके विक्षुब्ध हृदय से देश के प्रति भक्ति भावना की जो सरिता बह निकली वही उनके साहित्य सृजन का प्रेरणा स्रोत था। देशप्रेम की इसी भावना से अभिभूत होकर 1831 में 'नीलदेवी' का प्रणयन किया।

<u>नीलदेवी :</u>

पंजाब के राजा सूर्यदेव को रात्री के समय अब्दुश्शल शरीफखां का एक सैनिक बन्दी बना लेता है। कारागृह में बन्द राजा, धर्म परिवर्तन के लिए उसे प्रेरित करनेवाले मुसलमानों पर थूक देता है और यों कहता है - 'तुझ पर थू और तेरे धर्म पर थू' [2] शत्रु से लड़ते हुए वह वीर गति प्राप्त करता है। सूर्यदेव की पत्नी नीलदेवी एक ऐसी राजपुतानी नहीं थी

---

1. हिन्दी नाटककार - जयनाथ नलिन - पृ॰ 49 द्वितीय सं॰ 1961

2. भारतेन्दु नाटकावली - प्रथम भाग - पृ॰442: सं॰ ब्रजरत्नदास - द्वितीय संस्करण संवत् 2004

जो अपने पुरुष के पराजित होने पर जौहर ज्वाला में भस्म हो जाती थी, क्यों कि वह जानती थी कि यदि वह जौहर की ज्वाला में स्वयं को जलाकर खाक कर दे तो अपने देश की सहस्त्रों अनाथ अबलाओं को विजेताओं की नृशंसता एवं स्वेच्छाचारिता का शिकार बनना पड़ेगा। उसने यह भी जान लिया कि अल्पसंख्यक राजपूतों को साथ लेकर शत्रुओं से लड़ें तो भी कोई फायदा नहीं। अपने पति के वध का प्रतिशोध लेने के लिए एक नर्तकी के वेश में वह शत्रुओं के दरबार में पहुँचती है। दानव रूप शत्रुओं के मध्य में - विशेषकर अब्दुल शरीफखाँ के सामने चंडी के सदृश निर्भय जाकर रानी प्रलय नृत्य करती है। नृत्य एवं संगीत से मुग्ध शराब में मतवाला अमीर जब 'जान साहब' कहता हुआ नीलदेवी के निकट आता है, तो वह उसकी छाती में छुरा भोंककर उसका वध करती है। अपने पति के घातक से प्रतिशोध लेने के बाद वह सुखपूर्वक प्राण त्याग कर दती है।

पुरानी मान्यताओं के विरुद्ध लेखक ने अपील की है कि भारतीय नारियों को अपने विरोधियों का जवाब भी देना होगा, खलों, समाज विरोधियों का दमन भी करना होगा, उन्हें दण्ड भी देना होगा, तभी सांस्कृतिक गौरव की रक्षा हो सकेगी क्यों कि आत्मरक्षा में असमर्थ व्यक्ति देश, समाज, धर्म और संस्कृति की तो बात ही क्या, किसी के लिए कुछ नहीं कर सकता। इसलिए आवश्यकता पड़ने पर 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' का भी आचरण करो - यही भारतेन्दु का नवयुग के लिए उद्बोधक संदेश है।[1] भारतेन्दु ने नीलदेवी के साहसी एवं व्यवहार कुशल व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए भारतीय नारी जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है। और यह भी सिद्ध किया है कि भारतीय नारी केवल भोग्य ही नहीं, प्रत्युत अपने चरित्र एवं साहस द्वारा वह वीरांगना बनकर स्वदेश एवं समाज के गौरव की रक्षा करने की सामर्थ्य भी रखती है। नीलदेवी तो ऐसी एक देवी थी जिसने जाति की स्वतंत्रता बचाई,

---

1. हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण मिश्र - बब्बन त्रिपाठी पृ.42-प्रथम सं.1968

अबलाओं का धर्म बचाया, अन्याय युद्ध कर्ताओं को अधर्म का मजा चखाया, प्रजा को सुखी देखते हुए पति के साथ हंसते हंसते अन्त में चिता पर भस्म हो गयी। 1

महारानी पद्मावती :

राधाकृष्णदास ने चित्तौड के साथ अमर बनी हुई ऐतिहासिक कथा के आधार पर इस नाटक की रचना की है। मेवाड की महारानी पद्मावती के अप्रतिम सौंदर्य पर मुग्ध होकर अल्लाउद्दीन चित्तौड पर आक्रमण करता है। युद्ध में असफल होने पर राणा रत्नसिंह को धोखे से बंदी बना लेते हैं। कुशल नारी पद्मावती अपनी बुद्धि युक्ति से राणा को छुडा लेती है, चित्तौड पर अल्लाउद्दीन का पुनः आक्रमण होने पर राजपूत हारे जाते हैं और पद्मावती अपने सतीत्व को बचाने के लिए अन्य राजपूत स्त्रियों के साथ जौहर ज्वाला में भस्म हो जाती है।

महाराणा प्रताप : राधाकृष्ण दास (1897)

राधाकृष्ण दास के इस उत्कृष्ट नाटक का आधार महाराणा प्रताप और बादशाह अकबर के बीच का संघर्ष है। महाराणा द्वारा अपमानित राजा मानसिंह अकबर को राणा के विरुद्ध उकसाता है। अकबर की सेना द्वारा पराजित होने पर भी वीर प्रताप अपना आत्म सम्मान नहीं छोडता, वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अरावली की पहाडियों में अत्यन्त कष्टपूर्ण

---

1. श्री हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - दशरथ ओझा
पृ॰ 183, तृतीय सं॰ 1961

जीवन बिताता है। अपने बच्चों को भूख से तड़पते हुए देखकर भी वह शत्रु के सिर झुकाने की कल्पना तक नहीं करता। उसका शपथ है कि म्लेच्छों से स्वराज्य को मुक्त करना तथा दासता की श्रृंखला तोड़ना। उसके स्वप्न का साक्षात्कार हो जाता है ■ जब कि देशभक्त मंत्री भामाशाह की दी हुई संपत्ति से पुनः सैन्य संगठित कर वह उदयपुर जीतता है।

भारतेन्दु युग की लगभग समाप्ति के समय रचित इस नाटक में भारतेन्दु युगीन नाट्यसाहित्य के अंकुरित बीजरूप के दर्शन होते हैं। डा॰ सोमनाथ गुप्त की दृष्टि से यह इतना सफल नाटक है कि 'यदि किसीको यह न बताया जाय कि महाराणा प्रताप सन् 1897 की रचना है तो वह यही समझेगा कि यह नाटक 1935 के बाद लिखा गया है।" 1

<u>तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक</u> : काशीनाथ खत्री - 1884

इसमें तीन विभिन्न कथाओं का समावेश है। प्रथम रूपक है 'सिन्धु देश की राजकुमारियाँ' जिसकी कथावस्तु सन् 712 से संबंधित है। सिन्धु के राजा दाहर और मुहम्मद बिन कासिम के बीच हुए युद्ध में दाहर मारे जाते हैं। दाहर की दो पुत्रियाँ शत्रु से प्रतिशोध लेती है। अपनी युक्ति से सतीत्व की रक्षा भी करती हैं। दोनों राजकुमारियों को जीते जी दीवार में चुनवा दिये जाने के साथ नाटक दुखान्त हो जाता है। दूसरे रूपक 'गुन्नौर की रानी' में रानी की वीरता एवं साहस का परिचय मिलता है। अपने पति का घातक बादशाह के पास निकाह के लिए राजी होने का छल करके विष में डुबाए हुए वस्त्र पहनाकर रानी अपने शत्रु का अन्त करती है। बाद में नर्मदा की धारा में उसका प्राण भी लीन होता है। तीसरा रूपक 'लव जी का स्वप्न' ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता।

---

1. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास : डा॰सोमनाथ गुप्त : पृ॰227
चौथा संस्करण, 1958

<u>सँयोगिता स्वयंवर</u> : लाला श्रीनिवासदास (1885)

श्रीनिवासदास ने पृथ्वीराज सँयोगिता की प्रेमकथा को नाटकीय रूप दिया है। कई अस्वाभाविकताओं से भरा हुआ नाटक निम्न स्तर का है। चन्दबरदायी की 'पृथ्वीराज रासो' की कुछ घटनाएँ बिना किसी परिवर्तन के नाटक में रखी गई है।

<u>मीराबाई :</u> बलदेवप्रसाद मिश्र

मीराबाई की जीवनी पर आधारित इस नाटक का मूल उद्देश्य उसके श्रेष्ठ एवं उदात्त स्वरूप की प्रतिष्ठा है। मीरा का पति महाराणा कुंभा अपने मित्र भोजनदास के कुचक्रों के वशीभूत होकर मीरा के सतीत्व पर संदेह करता है, उसे घर से निकाल देता है। मीरा व्रज रूप गोस्वामी के पास जाकर ईश्वर भजन में काल यापन करती है। भोजनदास की कलई खुलने के बाद पश्चात्ताप विवश होकर राणा मीरा के पास पहुँचता है। पर मीरा = गोविन्दमूर्ति में अन्तर्धान हो चुकी थी। इसमें अनैतिहासिक एवं अप्राकृत तत्वों की भरमार है।

<u>सती चन्द्रावली</u> : राधाचरण गोस्वामी (1890)

औरंगजेब के शासनकाल से संबंधित इस दुखान्त नाटक में देश और धर्म की रक्षा के लिए अपनी आहुति देनेवाली एक वीर नारी का चित्रण है। एक बार शाहजादा अशरफ खाँ के बाग में भूल से मेंहदी तोड़ने गई हिन्दू बाला चन्द्रवली को ~~छुड़वाने के लिए~~ ब शाहजादा बन्दी बनाकर उससे निकाह का प्रस्ताव रखता है। जिसे वह बड़े साहस के साथ इनकार कर देती है। चन्दावली को छुड़वाने के लिए हिन्दू सेना और मुगल सेना में घमासान युद्ध होता है। अपने प्राणों की रक्षा की खातिर चलनेवाले भीषण हत्याकाण्ड को रोकने के लिए

चन्द्रावली झोपड़ी में आग लगाकर आत्महत्या करती है।

<u>अमरसिंह राठौर</u> : राधाचरण गोस्वामी - 1895

राधाचरण गोस्वामी ने इसमें राजपूती वीरता एवं स्वाभिमान का परिचय दिया है। साथ ही देशप्रेम की भावना को उत्तेजित करना भी उसका उद्देश्य है।

जोधपुर का महाराजा [illegible] गजसिंह अपने पुत्र अमरसिंह को देश से निर्वासित कर [illegible] देते हैं। अमरसिंह मथुरा जाकर ऐक्य भावना संचारित करके, मुगलों से लोहा लेने के प्रयत्न में है। दरबार में 5, 6 महीने तक गैरहाजिर होने के अपराध में शाहजहाँ अमरसिंह पर पाँच हजार रुपये जुरमाना कर देता है। अपमानित अमरसिंह भरे दरबार में सलावतखाँ को मृत्यु के घाट उतार देता है। वह अकेला राजपूत मुगल सेना से लड़ कर वीरगति प्राप्त करता है। उसकी रानी सूर्यदेवी मुगल सेना का सामना करके पति की लाश उठा ले आती है, पति की चिता पर कूद कर सती बन जाती है।

<u>अकबर गोरक्षा न्याय</u> : पं॰ जगतनारायण शर्मा • 1895

इस उपदेशात्मक नाटक में अकबर- प्रताप आदि ऐतिहासिक पात्रों के साथ अन्य पौराणिक पात्र भी हैं। नाटककार ने अकबर के उस न्याय पर प्रकाश डाला है जिसमें उसने गोवध निषेध को कानूनी रूप में स्वीकार किया है। अकबर ने हिन्दू और मुसलमान के बीच एकता स्थापित करने के लिए ही इस कानून को स्वीकार किया था।

<u>जया</u> : हरिप्रसाद जिन्जल

अलाउद्दीन चित्तौड़ के राजा रत्नसिंह को बन्दी

बनाता है। रत्नसिंह की पुत्री जया को यवन सरदार घेर लेते हैं, जैसलमीर का राजा जैपाल, जया की रक्षा करता है। जैपाल अलाउद्दीन की सेना का सामना करके, रत्नसिंह को भी कारागृह से छुड़ा लाने में सफल बनता है। रत्नसेन जया की शादी जैपाल से कर देता है।

पुरु विक्रम : लाला शालिग्राम (1905)

शालिग्राम ने पोरस और सिकंदर के युद्ध को नाटक का विषय बनाकर देशप्रेम की ज्योति फैलाने का प्रयत्न किया है। नायिका कलाविका की चरित्रप्रतिष्ठापना भली भाँति हुई है। वह कर्तव्य के आगे प्रेम को अधिक महत्व न देती है। इसलिए जब उसका प्रेमी पुरुराज, यवनों से युद्ध करने के पूर्व उससे प्रेम प्रदर्शन करता है तो वह पुरुराज को कर्तव्य पथ की ओर अग्रसर होने के लिए उत्तेजित करती है। डा॰ सत्येन्द्र तनेजा ने लिखा है -"नाटक की पृष्ठभूमि में राष्ट्र स्वर सुनाई देता है।"[1]

रूपवती : परमेश्वर मिश्र - 1906

राजा राजसिंह ने रूपनगर की राजकुमारी रूपवती को जिस कुशलता से कुटिल औरंगजेब के हाथों से बचाया, इसका वर्णन मिश्र जी ने विशेष रूप से किया है। मेवाड़ के राजपूतों की वीरता, साहस और उदारता का परिचय नाटक में मिलता है।

भारत पराजय : हरिहरप्रसाद (1908)

पृथ्वीराज एवं मुहम्मद गोरी के बीच हुए युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय, उसके मंत्री पुत्र विजयसिंह के विश्वासघात के कारण होती

---

1. हिन्दी नाटक : पुनर्मूल्यांकन - डा॰ सत्येन्द्र तनेजा पृ॰ 115

है। पृथ्वीराज हीरे की अपनी अँगूठी चाटकर मर जाते हैं ।

<u>वीर हम्मीर</u> : लाला रूपनाथ (1913)

ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा काल्पनिक प्रसंगों से भरे हुए इस नाटक में नाटककार राजपूतों की महत्वाकांक्षा, वीरता एवं साहस को विशेष रूप से पाठकों के सम्मुख रखता है। अलाउद्दीन अपनी बेगम के प्रेमी को फाँसी की सजा देता है। रणथंभोर के राजा उसे शरण देता है तो अलाउद्दीन क्रुद्ध होकर रणथंभोर पर चढ़ाई करता है। युद्ध में हम्मीर अलाउद्दीन के दाँत खट्टे कर देते हैं । जब हम्मीर अपने सैनिकों के साथ शत्रुओं की छीनी हुई पताका को लिए किले की ओर लौटता है वीर क्षत्राणियाँ समझती हैं कि यवन सैनिक राजपूतों को जीतकर इधर आ रहे हैं जिससे रानी, कुमारी देवल आदि अपने को अग्नि में आहुति दे देती हैं । इसपर हम्मीर दुखी होकर आत्मघात करना चाहता है, किन्तु उसके सैनिक उसे रोक लेते हैं ।

<u>चन्द्रगुप्त</u> : बदरीनाथ भट्ट

भट्ट जी इसमें देशी विदेशी पद्धति का समन्वय करना चाहते हैं । उन्होंने चन्द्रगुप्त के समय की झलक मात्र दिखलाने का प्रयत्न किया है। ऐतिहासिक पात्र तो बहुत स्पष्ट नहीं हो पाया, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिल्यूकस और राक्षस को छोड़कर बाकी पात्र सर्व काल्पनिक हैं ।

<u>तुलसीदास</u> : बदरीनाथ भट्ट

तुलसीदास के चरित्र को गौरवान्वित करने के लिए भट्ट जी ने तुलसी की भक्ति भावना एवं समन्वयात्मक प्रयास का स्पष्टीकरण किया है। यह नाटक भी ऐतिहासिक आधार पर कम लिखा गया है, जनश्रुतियाँ एवं अलौकिक घटनाओं का समावेश अधिक मात्रा में हुआ है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'बैजनाथ कृत वीरबाला', 'गोपाल राम गहमरी कृत यौवन जोगिनी' (1893), 'रामनरेश शर्मा कृत सिंहल विजय', (1896) रत्नसेन वकील कृत 'न्याय सभा', प्रतापनारायण मिश्र कृत 'हठी हम्मीर'[1] सैयद शेर अली कृत 'कत्ल हकीकत राय' (1897), हरिहरप्रसाद कृत 'जया' एवं राजसिंह(1906), भारत पराजय(1908), शंकर शरण गुप्त कृत 'वीरार्य शिवाजी' (1915), हरिदास माणिक कृत 'संयोगिता हरण' (1915) [2] आदि ऐतिहासिक नाट्यकृतियों का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है।

भारतेन्दुकालीन ऐतिहासिक नाटकों का सामान्य परिचय

1881 से 1915 तक लिखे गये ऐतिहासिक नाटकों में कुछ सामान्य विशेषताएँ पायी जाती है। प्रायः सभी नाटकों के मध्यकालीन भारतीय इतिहास से विशेषकर राजपूतकालीन इतिहास से कथानक ग्रहण किया गया है। नाटककारों ने देशप्रेम की भावना को उद्बुद्ध करने के लिए भारत के जिस अतीत काल का गान किया था वह हिन्दू काल का स्वर्ण युग है। सभी नाटक इतिहास के उन प्रसंगों पर आधारित थे जो हिन्दू जाति की गौरव भावना को पुष्ट करते रहे। अतः भारतेन्दु कालीन नाटककारों की राष्ट्रीयता हिन्दू राष्ट्रीयता ही कही जा सकती है। देश की रक्षा के लिए बलिदान पथ की ओर बढनेवाले राजपूत वीरों एवं वीरांगनाओं के उज्वल चरित्र प्रस्तुत करके जनता में राष्ट्रीय भावना जगाने का प्रयत्न किया गया है। नीलदेवी, पद्मावती, सिन्धु देश की कुमारियाँ, चन्द्रावली, महाराणा प्रताप,

---

1. (अ) भारतेन्दु युग नाट्य साहित्य - डा. भानुदेव शुक्ल पृ. 175
   (आ) भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य - डा. गोपीनाथ तिवारी पृ. 233
2. हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक : तुलनात्मक विवेचन : प्र: भुपटकर पृ. 102, 104, 105, 106, 108

अमरसिंह राठौर, पुरु, वीर हम्मीर, चन्द्रगुप्त ये सब ऐसे चरित्र है जो भारतीय जनजन के मस्तिष्क और हृदय पर पर्याप्त राष्ट्रीय चेतना का प्राण फूंकते रहे।

नाटकों की मुख्य कथा के साथ साथ उपकथाएँ भी चल चलती है। कथावस्तु की रोचकता बढाने के लिए उसे रोमांटिक पृष्ठभूमि भी दी गई है। इसलिए अधिकांश नाटकों में प्रेमकथा का समावेश हुआ है।

इन नाटकों में नारी का एक विशिष्ट स्वर उभर कर सामने आया है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय नारी की स्थिति शोचनीय थी। समाज की रूढियों एवं परंपराओं से प्रताडित भारतीय नारी पुरुष की दासी एवं उपभोग्य सामग्री मात्र समझी जाती थी। लडकियों को शिक्षा देने का विचार भी उठता था। यूरोपियन महिलाओं को पुरुषों के साथ स्वच्छंदता के साथ घूमते फिरते देखकर साहित्यकारों के मन में अपने देश की नारी की हीनावस्था के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई। 'नीलदेवी' के प्रारंभ में अंग्रेजी युवतियों की जागरूकता एवं प्रगतिशीलता का उल्लेख करते हुए भारतेन्दु ने लिखा है कि —" जिस भांति अंग्रेजी स्त्रियाँ सावधान होती है, पढी लिखी होती है, घर का कामकाज संभालती है, अपने संतानगण को शिक्षा देती है, अपना स्वत्व पहचानती है, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति को समझती है उसमें सहायता देती है और इतने समुन्नत मनुष्य जीवन को व्यर्थ गृहदास्य और कलह ही में नहीं खोतीं, उसी भांति हमारी गृहदेवियाँ भी वर्तमान हीनावस्था को उल्लंघन करके, कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा है। [1]

नायिकाओं के जीवन लक्ष्य में भी समानता दीख पडती है। नीलदेवी, पद्मावती, चन्द्रावली, सूर्यकुमारी आदि नायिकाएँ मनोनीत

---

1. भारतेन्दु नाटकावली - प्रथम भाग पृ.421, संपादक - ब्रजरत्नदास - द्वितीय संस्करण सं.2004

पति के साथ आदर्श रक्षा के लिए स्वप्राण अर्पित करती है। ' पति के आदर्श का पालन, शत्रु से प्रतिशोध लेने का प्रयास, प्रियतम के लिए प्राणार्पण, एकनिष्ठ प्रेम उस काल का आदर्श था। दाम्पत्य प्रेम में धर्म और जाति की मर्यादा का पालन आवश्यक था। " [1]

कतिपय भारतेन्दुकालीन नाटकों में सामयिक समस्याओं का प्रस्तुतन हुआ है। 'अकबर गोरक्षा न्याय' में गोवध के लिए हिन्दू और मुसलमानों में होनेवाला संघर्ष तथा अकबर द्वारा प्रस्तावित गोवध निषेध के माध्यम से नाटककार सामयिक समस्याओं की ओर संकेत करता है।

विकास की शैशव दशा में होने के कारण इन नाटकों में कई त्रुटियाँ आ गई हैं। अधिकांश नाटकों में ऐतिहासिक असंगति पाई जाती है। बिरले ही नाटककारों में अनुकरणीय इतिहासभाव के प्रति सचेतनता के दर्शन होते हैं। डा॰ धनंजय की राय में ऐतिहासिक नाटकों के विकास काल में नाटककारों ने इतिहास को अस्पष्ट तथा अप्रामाणिक तौर पर ग्रहण कर उसमें यथेष्ट परिवर्तन कर विकृत बनाया था। " [2] नाटककारों में इतिहास प्रयोग की उत्कृष्ट पद्धति के अभाव के कारण भी वे बताते हैं। 'इतिहासके प्रति उनकी अस्पष्टता को दायित्वबोध की अतिशयता मात्र कहकर नहीं टाला जा सकता। वास्तविकता यह है कि आधुनिक कही जानेवाली वैज्ञानिक ऐतिहासिक दृष्टि से उस समय तक कोई परिचित न था। " [3]

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - एकादश भाग - पृ.20
   सं. सावित्री सिन्हा, दशरथ ओझा, लक्ष्मीनारायणलाल - प्रथम सं.
2. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा॰ धनंजय, पृ.153, प्रथम सं.
3. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा॰ धनंजय, पृ.153.

द्वितीय अवस्था - प्रसादयुगीन नाटक (1916 - 1936)

उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति के समय भारतीय जनमानस में जागृत स्वतंत्रता प्राप्ति की आकांक्षा, बीसवीं शती के प्रारंभ होते ही और भी सशक्त और साकार हो उठी। ब्रिटिश शासक जनता को दबाने के लिए दमननीति चलाते रहे, लेकिन इन दमननीतियों की उग्रता के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन भी विस्तृत और व्यापक होती गई। इसी समय महात्मा गांधी ने इस राष्ट्रीय रंगमंच पर पदार्पण किया। गांधीजी का नीतिप्रेम, अहिंसा, त्याग, आदि का हिन्दी साहित्यकारों पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा। गांधीजी के मानवतावादी सिद्धान्तों की ओर साहित्यकार आकृष्ट हुए।

अंग्रेजी शासक भारत के विभिन्न धर्मों, संप्रदायों और भाषाओं के विभेद स्थापित कर उस फूट के सहारे भारत को अपना बनाये रखना चाहते थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य के बीज बोए। लेकिन गांधीजी ने अंग्रेजों के सारे प्रयत्नों को कमजोर बना दिया। साहित्यकारों ने इस तथ्य को पकड़ा और राष्ट्रीय आन्दोलन को क्षति पहुँचानेवाले हिंदू मुस्लिम वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न किया।

राजनीतिक क्षेत्र में जो परिवर्तन हुआ उससे सामाजिक व्यवस्था भी बदलने लगी। भारतीय जनता सामाजिक रूढ़ियों एवं बंधनों से मुक्ति पाने के लिए आकुल हो उठी। रूढ़िवादिता अपनी समस्त अंधविश्वासी परंपरा सहित अपना प्रभाव खोने लगा। जनता का यह दृष्टिकोण तत्कालीन साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। बदले हुए सामाजिक परिवेश के साथ ही साथ नारी का कार्यक्षेत्र और उसकी कार्यप्रणाली भी बदली। उसकी महत्ता और गरिमा बढ़ी। राष्ट्रीय आन्दोलनों में उसने पुरुष के कन्धों से कन्धा मिलाकर भाग लिया। नारी नवचेतना को ग्रहण कर आत्मत्याग और बलिदान की शक्तियों का

प्रदर्शन करने लगी। साहित्य भी उपर्युक्त परिस्थितियों से अछूता न रह सका। उसे भी तत्कालीन नवचेतना के अनुकूल अपने रंग रूप में परिवर्तन करना पड़ा। "तीव्र उत्तेजना और निराशा के बाद जनमानस की दृष्टि आत्मोन्नति की ओर गई। भावना के क्षेत्र में परिवर्तन के कारण सांस्कृतिक गरिमा के चित्रण से पूर्ण ऐतिहासिक नाटकों की रचना होने लगी।" [1]

इस काल में अनेक प्रतिभाशाली तथा उच्चकोटि के नाटककारों ने भारती के मंदिर में नाटकों की दिव्य भेंट चढ़ाई है। भारतीय सांस्कृतिक जागरण के देवदूत स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद का आविर्भाव हिन्दी नाटक के क्षेत्र में एक अध्याय था। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व ने इस काल को और भी समुज्वल तथा उनकी अमर कृतियों ने उसे और भी सुसमृद्ध बना दिया। लगभग सभी आलोचकों ने जयशंकर प्रसाद को नाट्यकला में नवीनता का प्रवर्तक माना है। डा॰नगेन्द्र के अनुसार सच्चे अर्थ में पुनर्निर्माण या पुनरुत्थान की प्रवृत्ति प्रसाद में थी।" [2] उन्होंने संस्कृत नाटकों के रस सिद्धान्त, पाश्चात्य नाटकों के अन्तसंघर्ष बाह्यसंघर्ष तथा शील वैचित्र्यकी परंपरा बंगला की भावसंवेदना को अपनाकर उनकी प्रतिभा के समन्वय से हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में स्वच्छंदतावादी अभिनव नाट्यकला को जन्म दिया।" [3] अतीत भारत की गरिमामयी संस्कृति के परिपार्श्व में इतिहास का अनुसन्धान करके प्रसादजी ने ऐतिहासिक नाटकों का प्रणयन किया है। कालक्रम के अनुसार नाटक

1॰ हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन - डा॰रमासेन गुप्त पृ॰90 - प्रथम संस्करण 1971।

2॰ आधुनिक हिन्दी नाटक - डा॰नगेन्द्र - पृ॰19 नवीन संस्करण 1970

3॰ प्रसादकालीन हिन्दी नाटक - डा॰भगवती प्रसाद शुक्ल, पृ॰12, प्रथम सं॰1975

ये है :-

(1) ~~कामना (1915)~~ राज्यश्री (1915)
(2) विशाख (1921)
(3) अजातशत्रु (1922)
(4) स्कन्दगुप्त (1928)
(5) चन्द्रगुप्त (1931)
(6) ध्रुवस्वामिनी (1933)

इन नाटकों के सृजन में प्रसाद ने निम्नलिखित आदर्श एवं दृष्टिकोण को अपनाया - "इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है। - - - मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत प्रयत्न किया है। "[1] प्रसाद ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए महाभारत युद्ध के बाद से हर्षवर्धन के राज्यकाल तक के भारतीय इतिहास को जो अपनी सर्वतोमुखी संपन्नता के कारण स्वर्णयुग कहलाता था अपनी रचनाओं का आधार बनाया।

राज्यश्री (1915)

इस घटनाप्रधान नाटक में प्रसाद ने मालवा, स्थाण्वेश्वर, कन्नौज और मगध की राजनीतिक परिस्थितियों को प्रस्तुत किया। स्थाण्वेश्वर के राजा प्रभाकरवर्धन की पुत्री राज्यश्री का विवाह कन्याकुब्ज के राजा गृहवर्मा के साथ हुआ था। राज्यश्री के सौंदर्य का लोभी मालव नरेश देवगुप्त, कन्याकुब्ज पर आक्रमण करके गृहवर्मा को मार डालता है, राज्यश्री को बन्दी

---

1. विशाख - भूमिका

बनाता है। राज्यवर्धन के हाथों देवगुप्त की हत्या होती है। शान्तिभिक्षु राज्यश्री को बन्दीगृह से अपहरण करके भाग रहा था, उसके चंगुल से राज्यश्री की रक्षा दिवाकरमित्र नामक एक सन्यासी करता है, इसी बीच गौड राजा नरेन्द्रगुप्त राज्यवर्धन की हत्या करता है। राज्यश्री वेदना और अपमान के भार से विक्षिप्त होकर चिता में कूदने का उपक्रम करती है कि हर्षवर्धन वहाँ पहुँचकर उसे सती होने से बचा लेते हैं। राज्यश्री के अनुरोध से नरेन्द्रगुप्त और शान्तिभिक्षु को क्षमा दी जाती है। राज्यश्री और हर्ष दोनों सर्वस्व दान करके लोकसेवा का व्रत लेते हैं और राज्य को जनसेवा का आधार निरूपित करते हैं।

उपर्युक्त आधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक कथा का भी संगुम्फन हुआ है जिसमें प्रसाद को सफलता नहीं मिली। प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्येता डा॰जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने लिखा है —" राज्यश्री नाटक का वस्तु-विन्यास साधारण, चरित्रांकन एकांगी और अविकसित रह गया है।"[1] नाटक में घटनाओं के बाहुल्य के कारण नाटकीय पात्रों की अन्तर्वृत्तियों की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से न हुई है। डा॰ शान्ति मलिक की राय में घटनाओं के घटाटोप ने इस छोटी सी कृति के कलेवर को आक्रान्त कर लिया है।"[2]

रचनाविधि के अनुसार राज्यश्री की गणना प्रथम अवस्था के ऐतिहासिक नाटकों में होनी चाहिए थी, लेकिन अपने प्रथम रूप में यह उन्हें मान्य नहीं हुआ और उन्होंने इसमें परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की। राज्यश्री के द्वितीय संस्करण की भूमिका में उन्होंने इस तथ्य की पुष्टि की है।

---

1. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन - डा॰जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
पृ॰ 38 - पंचमावृत्ति - संवत् 2017
2. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास -डा॰शान्ति मालिक: पृ॰107
प्रथम संस्करण - 1971

विशाख

'विशाख' बौद्ध इतिहास के पतनकाल से संबंधित है। नायक विशाख तक्षशिला विद्यालय में स्नातक शिक्षा की पूर्ति करके लौटता है। मार्ग में उसकी भेंट सुश्रुवा नाग के दरिद्र परिवार की कन्या चन्द्रलेखा से होती है। दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं। दोनों का विवाह भी होता है। काश्मीर का क्षत्रिय राजा नरदेव चन्द्रलेखा के सौंदर्य से मुग्ध होकर उसके अपहरण के लिए महापिंगल को भेजता है। विशाख उसको मार डालता है। नरदेव का सैनिक विशाख और चन्द्रलेखा को बन्दी बनाता है। दोनों को सूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी जाती है। विक्षुब्ध नागजनता राजमहल में आग लगाकर प्रतिशोध करती है। सन्यासी प्रेमानन्द आग से राजा की रक्षा करता है। अन्त में नरदेव अपने दुष्कृत्यों के लिए क्षमाप्रार्थना करते हुए सन्यास ग्रहण करता है।

एक स्त्री और पुरुष की प्रणयकथा को प्राचीन इतिहास के सौन्दर्य सन्दर्भ में अंकित करके प्रसाद ने युगीन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है। नरदेव के अत्याचारों के रूप में प्रसाद ने ब्रिटिश शासन के अत्याचारों को अंकित किया है। और प्रेमानन्द के रूप में महात्मा गान्धी को प्रस्तुत किया है। ' सत्य को सामने रखो, आत्मबल पर भरोसा रखो, न्याय की माँग करो' — प्रेमानन्द के इन शब्दों में महात्मा गान्धी की वाणी का आभास मिलता है।

भारतीय आध्यात्मवाद के मूर्तिमान स्वरूप साधु प्रेमानन्द स्थान स्थान पर भारतीय आध्यात्म की व्याख्या करते हैं - मैं शाश्वत संघ का अनुयायी हूँ। प्रेम की सत्ता को संसार में जमाना मेरा कर्तव्य है।" 1

1• विशाख - प्रसाद : प्रथम अंक - चतुर्थ दृश्य - पृ•25 - सप्तम संस्करण

सत्कर्म हृदय को विशाल बनाता है और हृदय में उच्च वृत्तियाँ स्थान पाने लगती हैं, इसलिए सत्कर्म कर्मयोग को आदर्श बनाना, आत्मा की उन्नति का मार्ग स्वच्छ और प्रशस्त करता है। " [1]

प्रसाद ने अपने नाटकों में धर्म के नाम पर किए जानेवाले पापाचारों को खुले रूप में व्यक्त किया है। विशाख के मन का संकल्प विकल्प धार्मिक पतन का सफल चित्र उपस्थित करता है। -- " क्यों न हो इसीको तो आजकल धर्म कहते हैं। किसी भी प्रकार से उपार्जित धन को धर्म में व्यय करने का अधिकार ही कहाँ है? ऐसों को धर्मात्मा कहें कि दुरात्मा। क्यों कि वे यह नहीं जानते कि दूसरों का गला काटकर कोई धर्मशाला, मठ या मन्दिर बना देने से उनका पाप नहीं धो सकता जाता। " [2]

अजातशत्रु :

भगवान बुद्ध के जीवनकाल के इतिहास से संबंधित यह नाटक मगध, कोशल और कौसंबी राजपरिवारों के संघर्ष की कथा निरूपित करता है।

सम्राट बिंबसार अपनी छोटी रानी छलना के स्वार्थ से ग्रस्त होकर राज्यभार अपने पुत्र अजातशत्रु को सौंप देने के बाद बड़ी रानी वासवी के साथ आश्रम में रहता है। वासवी अपने पिता कोशल नरेश से दहेज

---

1. विशाख -- प्रथम अंक पृ. 37

2. विशाख -- प्रथम अंक पृ. 15

रूप में प्राप्त काशी की आय अपने पति को दे देती है जिसपर मगध और कोशल में युद्ध छिड़ता है। अजातशत्रु के समान कोशल का राजकुमार विरूद्धक भी पिता के विरूद्ध विद्रोह करता है और कोशल सेनापति बंधुल को छल से मार डालता है। इसी बीच अजातशत्रु गौतम के विरोधी देवगुप्त की प्रेरणा से अपने बाप एवं विमाता को बन्दी बनाता है। अन्त में कोशल के राजा प्रसेनजित और कौशांबी के राजा उदयन दोनों मिलकर मगध पर आक्रमण करके, अजातशत्रु को बन्दी बनाते हैं। बन्दीगृह में कोशल की राजकुमारी वाजीरा का उससे प्रेम होता है। वासवी के प्रयत्न से अजातशत्रु बन्धनमुक्त हो जाता है। उसीके अनुरोध से वाजिरा के साथ अजातशत्रु का विवाह संपन्न हो जाता है। अन्त में एक पुत्र पैदा होने पर अजात को पितृस्नेह का महत्व एवं पिता की मनोदशा ज्ञात होता है, पिता से अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता है। छलना भी पति से क्षमायाचना करती है।

नाटक राजकीय संघर्षों से भरे हुए हैं। इतिहास के सहारे सामयिक परिस्थितियों का यथार्थवादी चित्रण है। 'अजातशत्रु में उन सभी संघर्षों का समन्वय है जो प्रसादजी के समय में विशेषतः सत्याग्रह आन्दोलन के पश्चात् भारतीय जीवन में प्रवेश कर गये थे। इसलिए अजातशत्रु में सर्वत्र क्रान्ति का ही विकट घोष सुनाई पडता है - राजा के प्रति राजा का, देशद्रोहियों के प्रति देशभक्तों का, सामाजिक क्षेत्र में अभिजात्य वर्ग के विरूद्ध निम्नवर्ग का धार्मिक क्षेत्र में रूढिवाद के प्रति सुधारकों का और कौटुंबिक क्षेत्र में पुरुषों के प्रति स्त्रियों का। तात्पर्य यह कि सभी प्रकार के विद्रोह उभड पड़े। " [1]

समाज की कुछ पतित मनोवृत्तियों की ओर भी

---

1. हिन्दी नाटकों में यथार्थवाद - कमलिनी मेहता - पृ.223 प्रथम सं.संवत् 2025

नाटककार ध्यान देते है । श्यामा नामक पात्र के द्वारा वैश्या समस्या की और संकेत किया गया है। श्यामा श्यामा पक्षी की भान्ति स्वच्छन्दता में ही प्रसन्नता का अनुभव करती है, पर परिस्थितियों से विवश हो वह पतित बनती है। "[1]

समाज में व्याप्त अवर्ण सवर्ण जैसी घातक समस्या की ओर संकेत किया गया है। सवर्ण अवर्ण के संघर्ष को रानी शक्तिमती और विरुद्धक में मूर्तमान किया है। रानी दासी पुत्र होने के कारण सदैव अपमानित होती है। अपमानित रानी अपने पुत्र विरुद्ध को भड़काती है - " बालक ! मानव अपनी इच्छाशक्ति और पौरुष से ही कुछ होता है। जन्मसिद्ध तो कोई भी अधिकार दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता है। विश्व भर में छोटे से बड़ा होना यही प्रत्यक्ष नियम है। " [2]

स्कन्दगुप्त (1928)

मगध सम्राट कुमारगुप्त की रानी अनन्तदेवी अपने पुत्र पुरगुप्त को युवराज बनाने की अभिलाषा से, सम्राट, स्कन्दगुप्त और देवकी के विरुद्ध षडयन्त्र करती है। मगध का बलाधिकृत भटार्क और बौद्ध कापालिक प्रपंचबुद्धि भी अनन्तदेवी का साथ देते है । षडयन्त्र से सम्राट कुमारगुप्त का निधन होता है और पुरगुप्त युवराज घोषित किया जाता है। स्कन्द शकों और हूणों की सम्मिलित शक्ति से अवन्ति की रक्षा करता है। वह अपने पराक्रम से मालवनरेश बन्धुवर्मा को भी बचाता है। स्कन्दगुप्त की निरंतर विजयों से ईर्ष्यालु

---

1. प्रसाद के नाटक एवं नाट्यशिल्प - डा.शान्तिस्वरूपगुप्त -पृ.34, प्रथम सं.1969

2. अजातशत्रु - पहला अंक - पृ.54 - उन्नीसवाँ संस्करण

विमाता अनन्तदेवी और भटार्क उसका सर्वनाश करने के लिए शत्रुओं से गुप्त अभिसन्धि करते हैं । भटार्क द्वारा कुभा का बाँध तोड़ देने पर स्कन्द की सेना क्षत विक्षत होती है। फिर भी वीर स्कन्दगुप्त अपना आत्मविश्वास नहीं खो बैठता। पुनः सेना को संगठित करके हूणों को परास्त करता है। स्कन्द अपनी प्रेयसी देवसेना की आत्मसमर्पण-दृढ़ता के सामने झुक जाता है और उसे न पाकर आजीवन कौमार्य व्रत ले लेता है। पुरगुप्त को रक्त का टीका लगाकर युवराज घोषित कर देता है और देवसेना को यह कहकर [illegible] अन्तिम बिदा देता है कि 'देवसेना! देवसेना तुम जाओ। हतभाग्य स्कन्दगुप्त, अकेला स्कन्द ओह!' यहीं नाटक की समाप्ति होती है।

कला और नाट्यविधान की दृष्टि से स्कन्दगुप्त तो प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जा सकता है। इसमें अनन्य देशभक्त के उदाहरण प्रस्तुत होते हैं । देश के हित के लिए प्राणों तक उत्सर्ग कर देने से भी न हिचकनेवाला वीर स्कन्दगुप्त भटार्क से कहता है - "रणभूमि में प्राण देकर जननी जन्मभूमि का उपकार करो। भटार्क यदि कोई साथी न मिला तो साम्राज्य के लिए नहीं , जन्मभूमि के उद्धार के लिए मैं अकेला युद्ध करूँगा।"[1]

स्कन्दगुप्त में राजनीतिक दुरवस्था का व्यापक स्वरूपपरिलक्षित है। हूणों के अत्याचारों से त्रस्त होकर मातृगुप्त बोल उठता है - "नहीं मुदगल निरीह प्रजा का नाश नहीं देखा जाता। क्या उनकी उत्पत्ति का यही उद्देश्य था? क्या इनका जीवन केवल चींटियों के समान [illegible] किसी की प्रतिहिंसा पूर्ण करने के लिए?"[2]

---

1. स्कन्दगुप्त - पंचम अंक पृ. 138 पन्द्रहवाँ संस्करण

2. स्कन्दगुप्त - प्रथम अंक पृ. 38 पन्द्रहवाँ संस्करण

प्रसाद ने धातुसेन के माध्यम से तत्कालीन धार्मिक पतन का वर्णन किया है। धातुसेन ब्राह्मणों को फटकारता हुआ कहता है "लोभ ने तुम्हारे धर्म का व्यवसाय चला दिया। दक्षिणाओं की योग्यता से स्वर्ग पुत्र, धन, यश, विजय और मोक्ष तुम बेचने लगे। कामना से अंधी जनता के विलासी समुदाय के ढोंग के लिए तुम्हारा धर्म आवरण हो गया है। जिस धर्म के आचरण के लिए पुष्कल स्वर्ण चाहिए, वह धर्म जनसाधारण की संपत्ति नहीं।"[1]

प्रसाद के नाटकों में एक आर्यावर्त, एक देश, एक राष्ट्र की धारणा व्यक्त हुई है। मालवराज बन्धुवर्मा के अपनी स्त्री जयमाला से कहे गये वचनों में समस्त आर्यावर्त की मंगलकामना की भावना लक्षित होती है। ' - - 'देवी तुम नहीं देखती हो कि आर्यावर्त पर मेघमाला फिर रही है, आर्य-साम्राज्य के अन्तर्विरोध और दुर्बलता को आक्रमणकारी भली भाँति जान गये है । शीघ्र ही देशव्यापी युद्ध की संभावना है। इसलिए यह मेरी ही सम्मति है कि साम्राज्य की सुव्यवस्था के लिए, आर्य राष्ट्र के त्राण के लिए युवराज उज्जयिनी में रहें, इसीमें सबका कल्याण है। आर्यावर्त का जीवन केवल स्कन्दगुप्त के कल्याण से है।" [2]

नाटक में नारी जागरण का स्वर भी गूंज उठता है।

चन्द्रगुप्त

प्रसाद जी ने मौर्यकालीन भारतीय संस्कृति का चित्रण

---

1. स्कन्दगुप्त - चतुर्थ अंक - पृ. 118
2. स्कन्दगुप्त - द्वितीय अंक - पृ. 65-66

करके चन्द्रगुप्त के उत्कर्ष को प्रदर्शित किया है।

मगध सम्राट नन्द विलासिता में डूबे है। प्रजा पर अत्याचार हो रहे है। अत्याचार की ज्वाला में चाणक्य का परिवार झुलस रहा है। चाणक्य नन्दवंश के नाश की प्रतिज्ञा लेता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाने के लिए प्रोत्साहित करता है। चन्द्रगुप्त अपने शौर्य एवं वीरता से सिकन्दर को हराता है। चाणक्य की कूटनीति से नन्दवंश का विध्वंस करता है। मगध का अधिपति बनकर, सिल्यूकस से मैत्री करके, उसकी पुत्री कार्नेलिया को जीवन संगिनी बनाता है। मालव नरेश सिंहरण चन्द्रगुप्त का आधिपत्य स्वीकार कर लेता है। अलका और सिंहरण का परिणय भी होता है। यवन मालवों की सन्धि होती है। शकटार द्वारा नन्द का वध होता है। चन्द्रगुप्त को अ सम्राट मनोनीत किये जाने के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

चन्द्रगुप्त की मुख्य कथा के साथ सिंहरण-अलका, राक्षस-सुवासिनी, चन्द्रगुप्त-कल्याणी, चन्द्रगुप्त-कार्नेलिया आदि जो अनेक गौण कथाएँ है उनके कारण कथा विस्तृत एवं जटिल हो गयी है। बीस पच्चीस वर्षों का समयवाला कथानक महाकाव्य के बहुत अनुकूल हो सकता है। घटनाओं का बा॰ हुल बाहुल्य इतना अधिक है कि बहुत से पात्रों की सूचना मात्र दी जाती है। अन्तर्द्वन्द्वों का जैसा चित्रण स्कन्दगुप्त नाटक में हो सका, वैसा इस नाटक में नहीं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त मानवीय धरातल तथा परिस्थितियों से ऊपर उठे हुए पात्र दिखाई पड़ते है जिनके कारण संघर्षों का विकास अपेक्षाकृत कम हो है।" [1]

वस्तुसंगठन की त्रुटियाँ एवं कालावधि के दोष होते

---

1. जयशंकर प्रसाद - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ. 164

हुए भी नाटक की कुछ प्रमुख विशेषताएँ होती है । राष्ट्रीयता की भावना सर्वत्र मुखरित हुई है। इसमें एक देश और एक राष्ट्र का सन्देश है। सिंहरण के शब्द देशभक्ति के महत्व को व्यक्त करते है --- "जन्मभूमि के लिए यह जीवन है--।" [1] अलका ने देश के अणु परमाणुओं को राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोगी ठहराया है। वह कहती है -"मेरा देश है, मेरे पहाड़ है , मेरी नदियाँ और मेरे जंगल है । इस भूमि के एक एक परमाणु मेरे है मेरे शरीर के एक एक अंश उन्हीं परमाणुओं के बने है। " [2]

नाटक का निर्माण देश की तत्कालीन घटनाओं एवं विशिष्ट परिस्थितियों में हुआ है। युग की समूची राष्ट्रीयता को ऐतिहासिक संदर्भ में परखा गया है। राष्ट्रीय एकता की ओर संकेत करते हुए सिंहरण कहता है -- " मेरा देश मालव ही नहीं , गान्धार भी है। यही क्यों समग्र आर्यावर्त है। " [3]

प्रसादजी ने भारत की अगाध महिमा एवं गरिमा का महत्वपूर्ण चित्रण भी किया है। उन्होंने दो भिन्न संस्कृतियों - ग्रीक संस्कृति एवं भारत संस्कृति के सम्मिलन एवं चिर मैत्री का दृश्य प्रस्तुत किया है, सिकन्दर और सेल्यूकस पर चन्द्रगुप्त की जो विजय हुई थी वह तो भारतीय संस्कृति की ग्रीक संस्कृति पर विजय थी।

---

1. चन्द्रगुप्त - प्रसाद - प्रथम अंक - पृ.71, चतुर्दश सं. संवत् 2021 वि.
2. चन्द्रगुप्त - प्रसाद - प्रथम अंक - पृ.81
3. चन्द्रगुप्त - प्रसाद - प्रथम अंक - पृ.52

ध्रुवस्वामिनी

प्रसाद ने अपनी इस अन्तिम कृति में गुप्त वंश की उस घटना पर कथावस्तु का चयन किया जिसमें स्त्री का पुनर्विवाह किया गया है। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त अपने ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त को जो विलासी क्लीब एवं कायर था, युवराज पद प्रदान न करके छोटे पुत्र चन्द्रगुप्त को सौंपता है, लेकिन चन्द्र-गुप्त अपने भ्राता के लिए राजमुकुट त्याग देता है। चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता ध्रुव-स्वामिनी को भी रामगुप्त अपनी पत्नी बनाता है। इसी बीच शकराज का राम-गुप्त के शिविर पर आक्रमण होता है जिसमें रामगुप्त की पराजय होती है । शकराज सन्धि के प्रस्ताव में रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी की माँग करता है और इस प्रस्ताव को रामगुप्त स्वीकार करता है। ध्रुवस्वामिनी की प्रार्थना, अनुनय विनय एवं अश्रुओं का रामगुप्त पर कोई प्रभाव न पड़ता। जब वह विवश हो कर आत्महत्या करने के लिए तैयार होती है, इसी समय चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी की सहायता के लिए पहुँचता है। स्त्रीवेश में ध्रुवस्वामिनी के साथ शकराज के पास जाकर उसकी हत्या करके विजयी होकर लौटता है। रामगुप्त का चन्द्रगुप्त को मारने का षडयन्त्र विफल होता है, वह स्वयं एक सामन्त द्वारा मारा जाता है। अन्त में पुरोहित, राजपरिषद् और सामन्तों की अनुमति से विधवा ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त परिणयसूत्र में बंध जाते हैं । चन्द्रगुप्त राज्यसिंहासन भी ग्रहण करते हैं । नाटक का केन्द्रबिन्दु एक समस्या है, वही है नारी समस्या। प्रसाद जी ये बताना चाहते हैं कि नारी को अपने ऐसे पति के बन्धन से मुक्ति पाने का अधिकार है जो उसके आत्मसम्मान का जरा भी ध्यान न करता, उसे केवल उप-भोग की वस्तु समझकर घर में हमेशा बन्दिनी की तरह रखता है, एवं केवल उपहार की वस्तु मानकर किसी दूसरे को अर्पित करने से भी नहीं हिचकता है। ध्रुवस्वामिनी अपने भोगजर्जर एवं क्लीब पति से कहती है - -"पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उनपर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया

है, वह मेरे साथ चल नहीं सकता, यदि तुम मेरी मर्यादा की रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की नारी का गौरव नहीं बचा सकते तो तुम मुझे बेच भी नहीं सकते।" 1

प्रसाद ने उपर्युक्त समस्या के लिए समाधान भी ढूंढ निकाला है। वह समाधान है - विवाह मोक्ष जो विशेष कारणों से विशेष परिस्थिति के अधीन हो सकता है। प्रसादजी अपने विचार पुरोहित के माध्यम से व्यक्त करते हैं :- जिसे अपनी स्त्री को दूसरे की अंकगामिनी बनने के लिए भेजने में संकोच नहीं वह क्लीब नहीं तो और क्या है? मैं स्पष्ट कहता हूं कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है। " 2

ध्रुवस्वामिनी की समस्या नारी की समस्या है, पर लेखक ने इसे व्यक्तिगत समस्या के स्तर पर चित्रित नहीं किया। व्यक्तिगत समस्या के बहाने सामाजिक समस्या की ओर ध्यान दिलाया तथा राष्ट्रीय चेतना के स्वर में बल देना ही नाटक का उद्देश्य रहा। " 3

प्रसाद के सारे ऐतिहासिक नाटकों के विस्तृत विवेचन के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रतीक के सहारे वर्तमान जीवन का आदर्शोन्मुख यथार्थ चित्रण किया है। प्रसाद के नाटकों की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो उन्हें दूसरे नाटककारों की तुलना में विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना देती है, प्रसाद ने इतिहास के जिस युग को

- -

1. ध्रुवस्वामिनी — प्रथम अंक - पृ. 26-27 सत्रहवां संस्करण
2. ध्रुवस्वामिनी — तृतीय अंक - पृ.63-64
3. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास -(एकादश भाग) पृ.67 प्रथम संस्करण

अपने नाटक के कथानक के लिए चुन लिया, उस युग की सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक विचारधारा को मूर्तिमान करने का सफल प्रयास किया है।

प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक से भी अधिक सांस्कृतिक है। अतः नन्ददुलारे वाजपेयी का मत ठीक ही है - "इतिहास से संस्कृति का ऐसा अपूर्व मणिकांचन संयोग हमें अन्यत्र नहीं मिलेगा। प्रत्येक नाटक में प्रसाद का मुख्य पात्र भारतीय संस्कृति की विकासोन्मुख धारा का प्रतीक है। वह उस युग की सांस्कृतिक समस्याओं का प्रतिनिधि है जिसके माध्यम से वे नवनिर्माण की सूचना हमें देते हैं।" [1]

प्रसाद जी के नाटकों में पात्रों का चरित्र चित्रण अत्यन्त कुशलता एवं स्वाभाविकता से अंकित है। आन्तरिक द्वंद्व, दार्शनिकता, कवित्व, वीरता, तीव्र गतिशीलता आदि से संपन्न पात्रों में प्रसाद ने अपने व्यक्तित्व को किसी न किसी रूप में ढाला है। प्रसाद के पात्रों के चरित्र के विकास पर प्रकाश डालते हुए जयनाथ नलिन ने लिखा है - "प्रसाद के सभी पात्र भावसंघर्ष या अन्तद्वंद्व की लहरों में डंवाडोल होते पाये जाते हैं। वे प्राचीन संस्कृत नाटकों के पात्रों के समान देवत्व या दानवत्व के प्रतीक नहीं। वे धरती के यथार्थ मानव हैं। प्रसाद के हर एक पात्र के हृदय में द्वंद्व का तूफान उठता रहता है। वे पाषाण प्रतिमाएँ नहीं। उनमें मानवों की निर्बलताएँ भी हैं। इसलिए प्रसाद के चरित्रचित्रण से व्यक्तिवैचित्र्यवाला समीक्षा सिद्धान्त भी सिद्ध हो जाता है।" [2]

- -

1. जयशंकर प्रसाद - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

2. हिन्दी नाटककार - जयनाथ नलिन पृ. 77 - द्वितीय सं. 1961

डा॰शान्ति मालिक का मत है कि प्रसाद के नाटकों का महत्व कथानकों की अनेकरूपता के कारण नहीं, अपितु नर-नारियों के चरित्रों के चित्रण के कारण है। इनके नाटकों का सर्वाधिक आकर्षक कलापूर्ण प्रभावपूर्ण, मौलिक एवं प्राणवान पक्ष चरित्रनिर्माण का है। " 1

प्रसाद के कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है - प्रसाद के नाटकों का शरीर जहाँ पूर्ण साहित्यक और मनोवैज्ञानिक है वहाँ उसका मन अनिवार्यत: ऐतिहासिक एवं उनकी आत्मा विशुद्ध सांस्कृतिक है। - - -अतीत के विशाल चित्रपटल पर उनका यह अद्वितीय तूलिका श्रम हिन्दी नाट्य इतिहास के पचास वर्ष के लंबे मार्ग पर एक आलोकस्तम्भ की भान्ति एकच्छत्र अधिकार किये बैठा है। " 2

प्रसादयुगीन नाटक :

प्रसादयुगीन प्रमुख ऐतिहासिक नाटक निम्नलिखित है-

1) प्रेमचन्द कृत कर्बला - 1924
2) पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' - महात्मा ईसा (1922)
3) बदरीनाथ भट्ट - दुर्गावती (1926)
4) चतुरसेन शास्त्री - उत्सर्ग (1929)
5) जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रताप प्रतिज्ञा (1929)
6) गोविन्द वल्लभ पन्त - राजमुकुट (1935)
7) उदयशंकर भट्ट - विक्रमादित्य (1933)

---

1. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास : डा॰शान्ति मालिक पृ॰123
2. जयशंकर प्रसाद - नन्ददुलारे वाजपेयी : पृ॰ 277

8) उदयशंकर भट्ट - दाहर अथवा सिन्ध पतन (1934)
9) सेठ गोविन्ददास - हर्ष (1934)
10) कैलासनाथ भटनागर - कुणाल (1934)
11) हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षाबन्धन (1934)
12) हरिकृष्ण प्रेमी - शिवासाधना (1935)

महात्मा ईसा
===========

महात्मा ईसा का सन्यासी के वेश में काशी नगरी में प्रवेश करके गुरु विवेकाचार्य का आश्रम खोजने की घटना के साथ नाटक प्रारंभ होता है। ईसा का भारत में आकर शिक्षा ग्रहण करना यहाँ से प्राप्त सेवा, बलिदान आदि भावनाओं से प्रभावित होकर स्वदेश लौटकर उपदेश देना, अपने साथियों सहित जनता की सेवा प्रारंभ करना, ईसा के सिद्धान्तों की लोकप्रियता की खबर सुनकर ईर्ष्यालु एवं क्रुद्ध हेरोद का उनके विरुद्ध षडयन्त्र करना, एक यहूदी के विश्वासघात के कारण ईसा को गिरफ्तार करके उसको सूली पर चढाया जाना - इन सभी घटनाओं का समावेश नाटक में हुआ है।

'उग्र' जी ने नाटक में राष्ट्रीयता की भावना एवं सांस्कृतिक चेतना उपस्थित की है। ईसा आध्यात्मिक भारत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं - आर्य आप धन्य हैं और धन्य है आपकी सभ्यता, इतनी उदारता, इतनी सहृदयता क्या पृथ्वी के अन्य किसी भी प्रान्त में ऐसे मनुष्य मिल सकते हैं ? कदापि नहीं । यहाँ का एक एक प्राणी देवता है - एक एक स्थान स्वर्ग है। " [1] सत्य की प्राप्ति के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले ईसा का कथन गांधी

---

1. महात्मा ईसा : प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ. 20
चतुर्थ संस्करण 2008 वि. संवत्

के कथन से मिलता जुलता है - "इसका अर्थ है आत्म-स्वातंत्र्य। यदि पिता की आज्ञा पुत्र की आत्मा के विरुद्ध है तो उसे चाहिए कि वह अपने पिता से अनन्य नम्र शब्दों में असहयोग कर दे। यही नियम संपूर्ण संसार के लिए है और मैं इसीका प्रचारक हूं।" [1] ईसा के व्यक्तित्व का चित्रण महात्मा गांधी केव्यक्तित्व के सामंजस्य में हुआ है।

उग्रजी ने धार्मिक स्थलों तथा पंडों पुरोहितों आदि के नैतिक पतन की ओर संकेत किया है। नाटक में महात्मा ईसा की सूक्ष्म दृष्टि एवं सत्याराधना धार्मिक अनाचार को मिटाने के लिए प्रयत्नशील है।

राजनीतिक दुर्दशा का विशद चित्र भी उग्रजी ने खींचा है। सत्ताधारी शासक दलों के अत्याचारों का वर्णन निम्नलिखित वाक्यों में मिलता है - " सो तो ठीक है प्रभु। परन्तु इन सत्ताधारी यहूदियों का हृदय काले बादलों से भी काला, वज्र से भी कठिन तथा मृत्यु से भी भयंकर है। " [2]

स्वार्थ साधन से प्रेरित होकर राष्ट्रहित की उपेक्षा करके, राष्ट्रीय चेतना का विरोध करनेवाले पूंजीपतियों एवं जमीन्दारों का भी उल्लेख मिलता है।

इस नाटक में ईसा के चरित्र को केवल ईसाइयों

- -

~~1. उग्र और उनका साहित्य - रत्नाकर पाण्डेय - पृ. 127, प्रथम ...~~
~~2. उग्र और उनका साहित्य - रत्नाकर पाण्डेय - पृ. 182~~
1. महात्मा ईसा - द्वितीय अंक - दशम दृश्य - पृ.123
2. —— "—— - तृतीय अंक -तृतीय दृश्य - पृ.145

के आदिपुरुष के रूप में नहीं चित्रित किया गया, अपितु भारतीय संस्कृति और गुरुकुल की परंपरा में उन्हें प्रतिष्ठित कर उग्र ने ईसा के धार्मिक सिद्धान्तों को सर्वजनसुलभ और सार्वभौम बनाया।" [1] नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हिन्दी नाट्यविधा के अन्तर्गत ईसा की अवतारणा करने वाली यह कृति हिन्दी की एकमात्र रचना है जिसका महत्व नाट्यसाहित्य के प्रत्येक समीक्षक ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है।" [2]

कर्बला : प्रेमचन्द

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने अपने एकमात्र ऐतिहासिक नाटक 'कर्बला' में हजरत मुहम्मद के दौहित्र और अली के पुत्र हुसेन का खलीफा पद के लिए संघर्ष तथा शत्रुओं के द्वारा हुसेन की हत्या को नाटकीय रूप दिया है। दो पात्रों को छोड़कर बाकी सभी पात्र मुसलमान हैं। 'कर्बला' नाटक के तत्वों की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। लेकिन अपने कथ्य के कारण इसे महत्व मिल जाता है। 'कर्बला' में युद्धक्षेत्र की लड़ाई का चित्रण सजीव है। उस समय यह सुझाना कि आततायियों के विरुद्ध साहस के साथ लड़ने की परंपरा मुसलमानों की भी रही और इस दृष्टि से उनका अतीत भी उज्ज्वल रहा है, राजनीतिक प्रौढ़ता का सूचक है।" [3]

नाटककार ने साम्प्रदायिक एकता पर भी बल दिया है। साहसराय नामक एक हिन्दू अरबवासी युद्ध में हुसेन की जान बचाता है। हुसेन साहसराय तथा उसके मज़हब की प्रशंसा करता है। साहस-

- -

1. उग्र और उनका साहित्य - रत्नाकर पाण्डेय - पृ.177

2. ======= "======= - रत्नाकर पाण्डेय - पृ.182

3. हिन्दी साहित्य का ब्रहत् इतिहास - एकादश भाग - पृ. 78

राय कहता है - - " मेरी भी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि जब कभी इस्लाम को हमारे रक्त की आवश्यकता हो, तो हमारी जाति में अपना वध शील देने वालों की कमी न रहे। " 1

दुर्गावती :

राजस्थानी इतिहास के प्रमुख एवं आकर्षक पात्र गोंडवाने की महारानी दुर्गावती की वीरता तथा शासनकुशलता का मनोहर चित्रण इस नाटक में मिलता है। अन्तिम क्षण तक शत्रुओं से लडते लडते, पूर्ण रूप से पराजित होने पर भी दुर्गावती आपना धैर्य एवं आत्मविश्वास नहीं छोडती, उसकी सेना के मुख्य सैनिक युद्ध में काम आते हैं । उनका लाडला पुत्र भी शत्रुओं का शिकार बन जाता है। ऐसी घोर विपत्ति में उस वीर राजपूत रानी का मन कर्तव्य से न विचलित होता है। अन्त में देशद्रोही एवं विश्वासघाती सरदार राव गिरधारी के कारण दुर्गावती की पराजय होती है, उसकी वीरमृत्यु भी होती है। रानी ऐसे विश्वासघातकों के विषय में कहती है - "जब तक किसी देश में विश्वासघाती नहीं होते, तब तक उस देश की स्वतंत्रता पर कहीं से कोई वार नहीं हो सकता।" 2

दुर्गावती के ये शब्द भट्टजी के सामयिक राजनीतिक परिस्थिति की ओर संकेत करते हैं । अंग्रेजी काल में ऐसे अनेक विश्वासघातक थे जिन्होंने विदेशियों के हाथों अपने देश को बेच डाला। फलस्वरूप भारतवासियों पर पराधीनता का अभिशाप उग्र रूप में फलित हुआ। अकबर की कूटनीति अंग्रजी कूटनीति की याद दिलाती है।

---

1. कर्बला - पाँचवाँ अंक - तीसरा दृश्य - पृ. 184

2. दुर्गावती - बदरीनाथ भट्ट - पहला अंक - तीसरा दृश्य - पृ.33

प्रताप प्रतिज्ञा
=========

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने इस नाटक में महाराणा प्रताप की अदम्य स्वाधीनता आकांक्षा एवं स्वाधीनता रक्षा के प्रयत्नों पर प्रकाश डाला है। प्रताप राजमुकुट ग्रहण करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं – ' भवानी तू साक्षी है, जनता जनार्दन ने आज मुझे अपना सेवक चुना है, मैं आज तुझे छू कर प्रतिज्ञा करता हूं कि जन्मभर मातृभूमि मेवाड के हित में तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण करने से मुंह न मोडूंगा। जब तक चितौड का उद्धार न कर लूंगा सत्य कहता हूं, कुटी में रहूंगा, पत्तल में खाऊंगा और तृणों पर सोऊंगा। '(1) नाना दुसह यातनाओं में पिसे जाने पर भी राणा अपनी प्रतिज्ञापूर्ति से विचलित नहीं होता। बाद में प्रताप द्वारा निर्वासित शक्तिसिंह एवं प्रताप द्वारा अपमानित मानसिंह का अकबर से मिलकर राणा के विरुद्ध हल्दीघाटी मैदान में युद्ध करना, जनप्रतिनिधि चन्द्रावत का राणा की रक्षा में अपना प्राण न्योछावर करना, स्वामिभक्त भामशाह द्वारा अपनी समस्त संपत्ति प्रताप के चरणों में समर्पित करना, शक्तिसिंह का हृदय परिवर्तन होना, महाराणा का एक बार जंगल में भटकते समय अपनी पत्नी और बच्चों की यातनाएं देखकर अकबर को सन्धि पत्र भेजना, किन्तु शीघ्र ही संभल जाना, अन्त में युद्ध करके मेवाड को स्वतन्त्र बनाना - इन घटनाओं का समावेश कथावस्तु में हुआ है। नाटक की अधिकांश घटनाएं जनमानस में राष्ट्रीय चेतना संचार करनेवाले हैं। नाटक में आद्यन्त गुंजित देशप्रेम के स्वर ने इसे अपने समय में ख्याति और महत्व का अधिकारी बनाया। नाटक की पंक्ति पंक्ति जनतान्त्रिक अधिकारों की घोषणा करती है। ये पंक्तियां सामन्ती युग में भी राजा को प्रजा पर शासन करने का जन्मजात अधिकारी नहीं बनाती, बल्कि देशरक्षा में सामर्थ्य, त्याग, बलि-

---

1. प्रताप प्रतिज्ञा - पहला अंक - दूसरा दृश्य - पृ.18 -अठारहवां संस्करण

दान एवं सेवा के साथ वीरता से ओतप्रोत एक विशेष व्यक्ति मानती है जो जनता का प्रतिनिधि बनकर शासन संचालन करे, न कि विलासी एवं मदोष हो निरंकुश नीति द्वारा लोक का उत्पीडन। " [1] विलासी राजा जगमल से जनप्रतिनिधि चन्दावत कहता है कि - ' मैं आज प्रजा के प्रतिनिधि की हैसियत से तुम्हारे सम्मुख आया हूं। मुझे अधिकार दिया गया कि मुवाड के राजमुकुट को अयोग्य के सिर से उतारकर योग्य के सिर पर रख सकूं। " (2) प्रताप के सिर पर मुकुट रखता हुआ वह कहता है - " मैं आज जनता के प्रतिनिधि की हैसियत से वीरवर बाप्पा रावल का उज्वल मुकुट प्रताप को नहीं, स्वदेश के सच्चे सैनिक को सौंपता हूं। " [3]

मिलिन्द ने प्रताप के चरित्र में उच्च नैतिक गुणों का समावेश किया है। प्रतापसिंह एवं शक्तिसिंह में एकता लाने के लिए, उनके पारस्परिक युद्ध का अन्त करने के लिए अपने प्राणों तक की आहुति देनेवाले पुरोहित के अन्तिम शब्द हैं - - 'वत्स, मेरे लिए पश्चात्ताप न करो, मैं आज संसार को दिखा देना चाहता हूं कि भारत के विद्वान केवल दान लेना ही नहीं जानते, समय पडने पर देश के लिए प्राण भी होम देते हैं।' [4]

नाटक की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें स्त्री-पात्र नहीं।

- -

1. हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण मिश्र - बच्चन त्रिपाठी - पृ.76, प्रथम सं.
2. प्रताप प्रतिज्ञा - मिलिन्द - पृ. 10, पहला अंक - अठारहवाँ सुस्करण
3. प्रताप प्रतिज्ञा - पहला अंक - दूसरा दृश्य - पृ.17
4. प्रताप प्रतिज्ञा - पहला अंक - चौथा दृश्य - पृ.27

इसी प्रताप प्रतिज्ञा ने मिलिन्द को हिन्दी के प्रमुख नाटककारों में स्थान दिलाया। नाटक के दसवें संस्करण में मिलिन्द ने लिखा -- "इससे मुझे काफी प्रोत्साहन मिला है और 1929 से 1949 तक के बीस वर्षों में मैं केवल इसी इसी नाटक के कारण, आलोचकों के द्वारा, हिन्दी के नाटककारों द्वारा स्थान पाता रहा हूं।'

विक्रमादित्य : उदय शंकर भट्ट

भट्ट जी ने विक्रमादित्य की महानता पर प्रकाश डालते हुए प्राचीन गौरव के साथ साथ नवीन युग की समस्याओं को भी प्रस्तुत किया है। चालुक्य वंश के महा मल्लदेव के ज्येष्ठ पुत्र, कुटिल सोमदेव अपने भाई विक्रमादित्य के बल पराक्रम से ईर्ष्यालु बनकर उनके विरुद्ध षड्यन्त्र करता है। सोमदेव को भय था कि विक्रमादित्य अपनी योग्यता के कारण राजमुकुट प्राप्त कर लेगा। विक्रमादित्य का विवाह करहटा की राजकुमारी चन्द्रलेखा से होता है। सोमेश्वर, पौडिराजा, वेंगी और विक्रमादित्य के पदच्युत सेनापति को साथ मिलाकर विक्रमादित्य के विरुद्ध कार्य करते है। कल्याण में विक्रमादित्य का नाम लेना भी दण्डनीय घोषित किया जाता है। एक ज्योतिषि से समाचार पाकर विक्रमादित्य चोल राज्य की रक्षा करने के लिए प्रयाण करते है। चन्द्रलेखा और अनन्तमुदी भी छद्मवेश में शत्रुओं के गुप्त रहस्य का पता लगाने में तत्पर होती है। शत्रुओं द्वारा बहकाने पर भी अनेक कष्टताओं में पिसे जाने पर भी अन्त में विक्रमादित्य की विजय होती है। सबसे बडी दुखपूर्ण बात यह है कि युद्ध में विक्रमादित्य के हाथ से अज्ञान में चन्द्रलेखा की हत्या होती है। युद्ध में विक्रमादित्य को छोडकर सभी मारे जाते है। विक्रमादित्य करहाट राज्य, अपने मंत्री साम्ब को देते है और भग्न हृदय लिए कल्याण जाकर शासन करने लगते है।

इस नाटक में भट्ट जी ने राजाओं का व्यक्तिगत स्वार्थलोलुपता, उनके कुचक्रों के कारण सामन्ती जीवन में होनेवाली विषमताओं को ही व्यक्त किया है। प्राचीन इतिहास को आधार बनाकर अर्वाचीन नवीन युग की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न भी नाटक में हुआ है। वर्तमान युग में भी स्वार्थभावना से प्रेरित होकर विभिन्न जातियों के व्यक्ति भी अपने अपने प्रान्त के लिए आपस में झगड़ते है । फलस्वरूप संपूर्ण देश की एकता टूट जाती है। विक्रमादित्य में विदेशी शासन से मुक्ति पाने तथा स्वराज्य प्राप्त करने की अभिलाषा भी प्रकट हुई।

दाहर अथवा सिन्ध पतन

इस श्रेष्ठ नाट्यकृति की रचना मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिन्ध पर किए गए आक्रमण और पराक्रमी हिन्दू राजा दाहर की वीरता की ऐतिहासिक घटना को लेकर की गयी है। एलोर के राजा साहसराय की मृत्यु के पश्चात् उसका मंत्री चच राजा बनता है। चच् का पुत्र दाहर 644 ई॰ में राजगद्दी का अधिकारी बनता है। सन् 712 ई॰ में सिन्ध में मुहम्मद बिन कासिम का जो आक्रमण हुआ, उसमें दाहर मारा जाता है। दाहर की दो पुत्रियाँ परमाल और सूरज को खलीफ के पास कासिम द्वारा भेजी गयी थीं , अपनी चतुराई से खलीफ से कासिम का वध करवाती है । खलीफा कासिम के शव को कच्चे चमड़े में सिलवाकर लाने की आज्ञा देते है , शव आने पर राजकुमारियाँ सत्य बातें कह देती हैं । इन दो वीरांगनाओं की अमर कहानी का नाटकीय रूप है 'दाहर'।

ऐतिहासिक कथानक के संदर्भ में देश की तत्कालीन परिस्थितियों को यथार्थ रूप में अंकित किया गया है। बौद्धों और ब्राह्मणों

में होनेवाला संघर्ष ही विदेशी आक्रमण के लिए कारण बनता है। राजनीतिक दुर्दशा तथा राजनीतिक संघर्ष भी नाटक में दिखाई पडता है। बलीपक ज्ञान-बुद्ध जैसे देशद्रोही और विश्वासघाती व्यक्ति के संबंध कहता है - ऐसे ही बागियों के जरिये हम लोग हिन्दुस्तान फतह करेंगे। जिस देश में बागी है वह कभी आजाद नहीं रह सकता। वह बड़ा ही बदकिस्मत मुल्क है जहाँ ऐसे लोग पैदा होते है ।" [1]

भट्ट जी ने धार्मिक पतन के कारणों का वर्णन किया। नाटक की भूमिका में वे लिखते है - ' भारत के हिन्दुत्व के नाश का कारण इतिहास जो कहे, हमें तो इसका विवेचनशून्य आध्यात्मवाद ही मालूम होता है। इसी स्वार्थपूर्ण परलोकवाद ने हिन्दू और बौद्धों के जातीय अंगों में यक्ष्मा का रूप धारण कर उन्हें किसी काम का न छोडा। हमारी जातीयता में धर्म वाद की निकम्मी थोथी रूढियों ने हमें विवेक से गिरा दिया। मनुष्यत्व को खींचकर दासता, भ्रातृविद्रोह, विवेकशून्यता के गढे में ले जाकर मार डाला, पीस दिया।" [2] राष्ट्र को पतनोन्मुख बनानेवाले वर्णभेद एवं ऊँच नीच की भावना को व्यक्त करते हुए लिखते है - - 'हाय वे लोहान जाट, और गूजर जो हमारे राज्य की शोभा वीरता की मूर्ति थे आज ऊँच नीच के विचारों से पददलित हो रहे है । वीरता, शूरता, दृढता और धीरज का अब उनमें नाम ही रह गया है। आज राजनियमानुसार वे रेशमी वस्त्र नहीं पहन सकते, पैरों में जूते नहीं पहन सकते - - राज्यभार में लकडी ढोना भर उनका कार्य रह गया है।" [3]भट्ट जी के नाटकों के संबंध में जय-

---

1. दाहर अथवा सिन्ध पतन - उदयशंकर भट्ट - दूसरा संस्करण - 1962
2. दाहर अथवा सिन्ध पतन - उदयशंकर भट्ट - अपने पाठक से
3. —— '' —— —''— पहला अंक - दूसरा दृश्य - पृ. 10

नाथ नलिन ने लिखा - " भट्ट जी ने अपने नाटकों द्वारा धार्मिक कट्टरता के प्रति अपने पाठकों में अरुचि उत्पन्न करके समाज और देश का बहुत बड़ा हित किया।" [1]

नाटक के कुछ पात्रों के शब्दों पर गांधीजी के व्यक्तित्व एवं सिद्धान्तों का प्रभाव व्यक्त है। बौद्ध सन्यासी सागर विश्वमैत्री और अहिंसा का अर्थ समझाता है, "विश्व के प्रति मैत्री का अर्थ है दुष्टों के प्रति दया दिखाना और दुष्टों की दुष्टता दूर करना। हमारी अहिंसा का अर्थ इतना ही है। हम मन, वाणी और कर्म से अहिंसा का उपदेश देते हैं उसका अर्थ यही है।" [2]

राजमुकुट : गोविन्दवल्लभ पन्त
=======

नाटक में वीर क्षत्राणी के पुत्रबलिदान एवं अपूर्व त्याग की अमर कहानी अंकित है। मेवाड़ के महाराणा सांगा की छोटी रानी जवाहरबाई से उत्पन्न पुत्र विक्रमसिंह को उसकी विलासिता के कारण जनता सिंहासनच्युत करना चाहती है। इस अवसर का लाभ उठाकर उसका भाई बनवीर और रणजीत नामक क्रूर सरदार, विक्रमसिंह की हत्या कर डालता है। विक्रमसिंह का छोटा भाई उदयसिंह पन्नाबाई के यहाँ पल रहा है। बनवीर और रणजीत उदयसिंह का अन्त करना चाहते हैं। आनेवाली विपत्ति को सूंघकर, पन्नाबाई अपने पुत्र चन्दन को उदयसिंह के स्थान पर सुला देती है, क्रूर बनवीर उसे उदय समझकर नृशंसतापूर्वक मार डालता है। बाद में पन्ना उदयसिंह को बारी

---

1. हिन्दी नाटककार - जयनाथ नलिन - पृ.116 द्वितीय सं.
2. दाहर अथवा सिन्ध पतन - तीसरा अंक - चौथा दृश्य - पृ. 63

के टोकरे में सुरक्षित किले के बाहर भेज देती है तथा कम्भलमेर के नरेश आशाशाह द्वारा उसका संरक्षण भी होता है। स्वामिभक्ति की वेदी पर अपने दुधमुंहे बच्चे का बलिदान देकर मेवाड वंश बल को नष्ट होने से बचाने वाली पन्ना का अनुपम त्याग, अपूर्व देशभक्ति नैतिकतापूर्ण चारित्रिक उत्कर्ष आज भी राजस्थान की महिलाओं के आदर्श का जीवित रूप है। मेवाड की गद्दी से विलासी राजा विक्रमसिंह को उतारने की जनता की इच्छा में वर्तमान युग की समस्या ही निहित है जो कि राजा अत्याचारी हो तो उसे गद्दी से उतार देना चाहिए।

हर्ष : सेठ गोविन्ददास

सातवीं सदी के ऐतिहासिक वातावरण के परिप्रेक्ष्य में प्रणीत इस नाटक में स्थाणीश्वर के राजा सम्राट हर्षवर्धन का जीवन वृत्त अंकित किया गया है।

हर्षवर्धन अपने भाई राज्यवर्धन के निधन के पश्चात् दो शर्तों पर राज्य ग्रहण करते है । दो शर्तें ये है - (1)आजन्म विवाह नहीं करेगा (2) व्यर्थ का युद्ध भी न होगा। अपना बाल्य सखा माधवगुप्त की प्रेरणा से शासन की बागडोर संभाल लेने के बाद हर्ष ने अपने भाई के घातक शशांक नरगुप्त से बदला लिया। ग्रहवर्मा की मृत्यु के बाद राज्यश्री नरेन्द्रगुप्त द्वारा बन्दी बनायी जाती है। वहाँ से मुक्ति पाकर विन्ध्य की ओर चली जाती है। सम्राट हर्ष जो व्यक्तिगत स्वार्थों से कोसों दूर था राज्यश्री को कन्नौज की गद्दी पर बिठाकर स्थाणीश्वर को कन्याकुब्ज का माण्डलिक राज्य बनाकर रहना चाहता है । बाद में हर्ष को पुलिकेशन के आक्रमण का सामना करना पडता है। जिसमें पुलिकेशन की विजय होती है। पुलिकेशन से मित्रता बांधता हुआ वल्लभी का राज्य लौटाते है । हर्ष के सर्वस्व दान का प्रथम समारोह सम्पन्न होने तथा शत्रुओं के हर्ष को मारने के षडयन्त्र की विफलता के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

एक राजा होकर भी प्रजातन्त्र की प्रणाली पर राज्य-शासन चलानेवाले हर्ष के माध्यम से नाटककार ने वर्तमान युग का ही चित्रण किया है। हर्ष कहता है - "मै अपने को राज्य का संरक्षक मात्र मानना चाहता हूँ। और राज्य को अपने पास प्रजा की धरोहर। मै अपने और अपने वंश को राज्य का स्वामी और राज्य को अपनी सम्पत्ति नहीं मानना चाहता।" [1]

उत्सर्ग : (चतुरसेन शास्त्री)

चतुरसेन शास्त्री ने उत्सर्ग में चितौड के तृतीय शाका की घटना को लेकर कथावस्तु का चयन किया है। चितौड के वीर राजपूत अकबर की विशाल सेना से लडते लडते कट कट कर गिर पडते है। राजपूतों की वीर रानियाँ, सुकुमार राजकुमारियाँ सभी अपने सतीत्व एवं गौरव की रक्षा के लिए चिता में कूदकर प्राणों का उत्सर्ग करती है।

प्रसादकालीन नाटकों की सामान्य विशेषताएँ :-

प्रसादयुगीन नाटकों के स्वरूप में भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन नाटकों की अपेक्षा कुछ परिवर्तन दिखाई पडते है। सभी नाटक संस्कृत के प्रभाव से मुक्त हो गये। नाटककारों ने कथानक को राष्ट्रीयता के व्यापक सन्दर्भ में चित्रित किया है। भारतेन्दुकालीन राष्ट्रीयता प्रसाद युग में आकर प्रखर और प्रस्फुट हुई है। इस काल के नाटकों में, देशप्रेम जो राष्ट्रीयता का अनिवार्य तत्व है, व्यंजित हुई है। प्रसाद युग में रचित नाटकों का उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना को अतीत की पृष्ठभूमि में अभिव्यक्ति प्रदान करना है। प्रसाद आदि नाटककारों ने देखा कि हमारा वर्तमान ही नहीं भूत इतिहास भी विदेशी प्रभाव की

---

1. हर्ष - सेठ गोविन्ददास - पृ.49 - दूसरा अंक - दूसरा दृश्य

छाया में मलिन हो गया है। अतः फिर से उसका सच्चा स्वरूप प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने भारतीय ग्रन्थों के ही आधार पर ऐतिहासिक अन्वेषण किये।"[1]

प्रसादयुगीन नाटकों में भारतीय आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष की अभिव्यक्ति है। प्रसादयुग की राष्ट्रीय चेतना भारतीय संस्कृति के उपकरणों से अपना अभिनव श्रृंगार करके सामने आती है। जिसमें रूप सौंदर्य व कर्मसौंदर्य का सुन्दर समन्वय अद्भुत छटा दिखाता हुआ सहृदयों को विमुग्ध कर लेता है।"[2]

इतिहास के परिवेश में नाटककारों ने समाज की कुछ समस्याओं का हल निकालना चाहा था। इतिहास से सामग्री लेते हुए भी उसे वर्तमान के संदर्भ में देखने का प्रयास किया। डा॰ भगवती प्रसाद शुक्ल प्रसाद युग की नाट्यकला की विशेषताओं का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं - " समूचे प्रसाद युग में इतिहास की विराट रंगस्थली में मानवजीवन के क्रियाकलापों को दिखाकर राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और साहित्यक गौरव की प्रतिष्ठापना की गई है।"[3]

नाटककारों ने सामाजिक दुरवस्था की ओर संकेत करके जनता के मन में एक आदर्श समाज के निर्माण की प्रेरणा दी है। जातीय एकता की दिशा में कुछ नाटककारों ने काम किया है। स्त्री स्वातंत्र्य पर अन्य कुछ नाटककारों ने विचार प्रकट किया है।

---

1. आधुनिक हिन्दी नाटक - डा॰ नगेन्द्र - पृ॰ 6 - नवीन सं॰ 1970
2. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - एकादश भाग - पृ॰ 12
3. प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक : डा॰ भवानी प्रसाद शुक्ल- पृ॰ 24। -प्रथम सं॰ 1971।

पूर्ववर्ती नाटकों की अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्य पर भी इनमें अधिक बल दिया गया है। इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन इनमें हुआ है। नाटकों के लिए ग्रहीत कथावस्तु प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित एवं विभिन्न स्रोतों से प्राप्त की गई है। "[1]

तृतीय अवस्था - प्रसादोत्तर युग

भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के आगमन से देश में अभूतपूर्व जागरण आया। देश की अन्तरात्मा की चरमाकांक्षा स्वातन्त्र्य प्राप्ति थी और गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस राजनीतिक [illegible] स्वतन्त्रता के लिए शासकों से लोहा लेने लगी। देश को स्वतन्त्र करने के महात्मा गांधी के सतत प्रयत्न के फलस्वरूप अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ा। जाते समय उन्होंने भारत की अखंडता नष्ट कर दी। द्वितीय महायुद्ध के परिणाम भी सामने आने लगे। युद्ध की विभीषिका ने व्यक्ति को अस्तित्व के प्रति शंकालु बना दिया। जीवनमूल्यों में क्रमशः परिवर्तन आया। नये मूल्यों की स्थापना की बात की गई। पुरानी मान्यताएं निरर्थक साबित होने लगीं। नैतिकता के मापदण्ड भी अब पहले जैसे नहीं रहे। पश्चिम में ऐसी [illegible] वैचारिक क्रान्तियां हुई जिनका प्रभाव भारतीय चिन्तन पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में पड़ा। फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों से धीरे धीरे हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का आग्रह बढ़ा। यथार्थ और भौतिकता की नई व्याख्या हुई। नाटकों की उस समय तक की चली आ रही धाराओं में स्पष्टतः परिवर्तन लक्षित होने लगा। राष्ट्रीयता की परिभाषा भी पहली जैसी नहीं रही। वर्तमान काल की विभिन्न समस्याओं की ओर

---

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा॰ धनंजय - पृ॰ 67

नाटककार का ध्यान गया।

विकास की तृतीय अवस्था में प्राप्त प्रमुख ऐतिहासिक नाट्य-रचनाओं की सूची निम्नलिखित है :-

प्रतिशोध (1937) आहुति (1940) स्वप्नभंग शतरंज के खिलाड़ी विषपान उद्धार शपथ प्रकाशस्तंभ कीर्ति स्तंभ विदा	============	हरिकृष्ण प्रेमी
साँपों की सृष्टि आन का मान प्रतिशोध छेद आब भग्न प्राचीर संरक्षक रक्तदान अमर बलिदान शीशदान अमृत पुत्री नई राह शक्तिसाधना	============	हरिकृष्ण प्रेमी

अशोक	(1937)	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
रेवा	(1938)	
जयपराजय	(1937)	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
अन्तःपुर का छिद्र	(1940)	गोविन्दवल्लभ पन्त
कुलीनता	(1940)	सेठ गोविन्ददास
शशिगुप्त	(1942)	
शेरशाह	(1945)	
रहीम		
भारतेन्दु	(1955)	
मुक्तिपथ	(1944)	उदयशंकर भट्ट
शक विजय	(1949)	
गरुड़ध्वज	(1945)	लक्ष्मीनारायण मिश्र
दशाश्वमेध	(1950)	
वत्सराज	(1950))	
वितस्ता की लहरें	(1955)	
मृत्युंजय		
जगद्गुरु		
फूलों की बोली	(1947)	आचार्य सीताराम चतुर्वेदी
अनारकली		
सिद्धार्थ		
जय सोमनाथ		
आचार्य विष्णुगुप्त		
हंस मयूर	(1948)	वृन्दावनलाल वर्मा
झाँसी की रानी	(1948)	
पूर्व की ओर	(1950)	

वीरबल (1950)	=======	वृन्दावनलाल वर्मा
ललित विक्रम (1958)		
कला और कृपाण		
विजय पर्व		
अग्निशिखा	=======	रामकुमार वर्मा
संत तुलसीदास		
जौहर की ज्योति		
नाना फडनवीस		
कोणार्क	=======	जगदीशचन्द्र माथुर
शारदीया		
आषाढ़ का एक दिन	=======	मोहन राकेश
लहरों का राजहंस		

अन्तपुर का छिद्र :-

यह बौद्धयुगीन नाटक इतिहासप्रसिद्ध भरतवंशी राजकुमार उदयन एवं उसकी दो रानियाँ - पद्मावती और मागन्धी की कथा है। पद्मावती और मागन्धी दोनों भगवान अमिताभ के सात्विक सौंदर्य की ओर आकृष्ट थीं। जब मागन्धी के प्रेम को ठेस पहुँचती है तो वह पद्मावती के विरुद्ध षडयन्त्र का जाल बुनती है, राजा के मन में पद्मावती के विरुद्ध षडयन्त्र के बीज बोती है , पद्मावती के नृत्य के समय वीणा में सर्प रखकर उसकी हत्या करना चाहती है। लेकिन वह स्वयं अपने बनाये गये षडयन्त्र का शिकार बन जाती है, सर्पदंशन से उसकी मृत्यु होती है।

नाटक में एक पुरुष के प्रति दो नारियों के कामाकर्षण की प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म निरूपण हुआ है। भावना की प्रधानता के कारण डा० नगेन्द्र ने इसे भावनाट्य क्रम के अन्तर्गत परिगणित किया है। " (1)

<u>जयपराजय:-</u>

'अश्क' का एकमात्र ऐतिहासिक नाटक है 'जयपराजय'। कथानक मेवाड के इतिहास से संबंधित है। नाटक की भूमिका में 'अश्क' जी ने स्पष्ट किया है कि उन्होंने अपने मन के संघर्ष तथा विक्षोभ को शान्त करने के लिए 'जयपराजय' की सृष्टि की है। वे लिखते हैं :- 'जीवन में जयपराजय का चक्कर तो चलता ही रहता है। विजयी होकर अपने भाग्य को सराहना और पराजित होकर घुटनों में सिर रखकर बैठ जाना दुर्बलता है। निरंतर चलना, निरंतर लडते रहना ही तो जीवन है।' [2]

महोबा की राजकुमारी हंसाबाई ~~xxxx~~ राणा लक्षसिंह के पुत्र की ओर आकृष्ट है, उससे परिणय करना चाहती है। लेकिन विधि के विघटन से हंसा बाई को चंड की विमाता बननी पडती है। जब चंड उसे माता कह कर पुकारता है तो उसे चंड का संबोधन अच्छा नहीं लगता और वह कहती है: 'मां नहीं युवराज, मां न कहो।' [3] लेकिन राजकुमार का मन जरा भी विचलित न होता। चंड द्वारा अपनी प्रेमाभिलाषा तिरस्कृत होते हुए देखकर हंसाबाई में प्रतिशोध की भावना जाग उठती है; वह अपने सौतेले भाई रणमल को अपनी ओर मिलाकर मेवाड में सर्वनाश की आग फैलाती है। चंड को हटाकर रणमल

- -

1. आधुनिक हिन्दी नाटक - डा० नगेन्द्र - पृ० 84 - नवीन संस्करण 1970
2. जयपराजय - अश्क - भूमिका - पहला संस्करण - 1937
3. जयपराजय - तीसरा अंक - चौथा दृश्य - पृ० 95 ग्यारहवां संस्करण 1963

सेनापति बनता है। राणा लक्षसिंह की मृत्यु के बाद हंसाबाई का पुत्र मोकल राज-मुकुट ग्रहण करता है। चंड ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर चित्तौड़ छोड़ महोबा चला जाता है। अन्त में चंड द्वारा ही मेवाड़ की रक्षा होती है। फिर भी वह राज्यभार नहीं लेता। चंड के हाथों रणमल का वध होने पर हंसाबाई सोचती है कि चंड ने उसे हस्तगत करने के लिए ही रणमल की हत्या की होगी, वह कहती है - 'किन्तु तुम चलो, तुम्हारे मार्ग से यहाँ काँटा भी निकल गया।' [1] हंसाबाई की इस मनोवृत्ति से वह प्रपीड़ित होता है। हंसाबाई को राज्य सौंपकर वह अनन्त की ओर सदा के लिए चला जाता है।

नाटक में आद्यन्त संघर्ष चलता रहता है। अश्कजी ने नाटक के शीर्षक को कथानक में पूर्ण रूप से प्रतिफलित किया है। विजय और पराजय की भावना सभी पात्रों में संचरित होती है। अश्क ने सामन्तयुगीन आदर्शवादिता और मर्यादा तथा व्यक्तिगत अहं की भावना पर तीखा व्यंग्य किया है। राजपूत नैतिकता, आदर्श और मर्यादा की थोथी व्यक्तिगत अहंभावना से बुरी तरह जकड़े गये थे। और अपनी व्यक्तिगत अहंवादी आन पर राष्ट्रहित को राष्ट्रगौरव के नाम पर कुर्बान कर देते थे। यह उनके पतन की ट्रेजेडी का सबसे बड़ा व्यंग्य था। इस यथार्थ पर अश्क जी ने मीठा व्यंग्य किया है। ' [2] नाटक में अश्कजी की दृष्टि यथार्थवादी रही थी। उन्होंने राजपूतकाल की, अपने गुण-दोषों से युक्त, यथार्थ तस्वीर का ही अंकन किया है। इसलिए 'जयपराजय' ऐतिहासिक परंपरा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

नाटक की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि जहाँ इतिहास-

---

1. जयपराजय - पंचम अंक - आठवाँ दृश्य - पृ. 182

2. नाटककार अश्क - जगदीशचन्द्र माथुर - पृ. 188-189 - प्रथम संस्करण - 1954

कार चैंड की विजयमात्र देखता है, वहाँ नाटककार की पैनी दृष्टि उस विजय में छिपी हुई आन्तरिक पराजय पर पड़ती है। नाटक के सभी प्रमुख पात्रों - चैंड, लक्षसिंह, राघवदेव, रणमल तथा हंसा - में जीवन की जय पराजय की भावना बड़े सुंदर ढंग से फलीभूत हुई है।

<u>अशोक</u> :- चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

मौर्य सम्राट अशोक के पूर्व जीवन के पूर्व भाग की घटनाओं को आधार लेकर नाटक की रचना हुई है। बिन्दुसार द्वारा अपने ज्येष्ठ पुत्र सुमन को युवराज बनाने का निश्चय, अशोक का उसका विरोध करना, सेनापति चण्डगिरी की सहायता से अशोक का पाटलीपुत्र पर आक्रमण करके सुमन को बन्दी बना लेना, चण्डगिरी का धोखे से सुमन की हत्या करना, सुमन की पत्नी शीला का क्रुद्ध होकर प्रतिशोध लेने के लिए पाटलीपुत्र के नागरिकों को भड़काना, आचार्य उपगुप्त के उपदेश से प्रभावित होकर शीला का सेवा मार्ग ग्रहण करना, अन्त में अशोक का हृदय परिवर्तन होना, तथा बौद्ध धर्म को स्वीकार करने की घटनाएँ नाटक में प्रस्तुत की गई है ।

नाटक में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने जिस दृष्टिकोण को अपनाया है, उसके संबंध में डा० धनंजय ने लिखा -' विद्यालंकार अशोक के माध्यम से व्यक्ति की पराजित चेतना का मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण चाहते हैं ।'[1] अशोक का उद्देश्य है अधिकार प्राप्त राजा का हृदय परिवर्तन अर्थात् स्नेह और सेवा की (अनुरागमूलक आत्मनिषेध) क्रोध और लोभ पर विजय। अशोक की पशुवृत्ति सुमन के पाशविक बल से कुछ देर के लिए शिथिल अवश्य हो जाती है । परन्तु पराजित नहीं होती ; उधर जनता की उत्तेजित पशुवृत्ति उसे मानों फिर

---

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा० धनंजय : पृ०6।

ललकार कर सचेत कर देती है। परन्तु शीला का आत्मिक बलिदान उसमें एक क्षण के लिए उभारने की शक्ति नहीं छोड़ता। दूसरे की आत्मा को जीतने के लिए यह आत्मसमर्पण अमोघ साधन है। '[1]

रेवा :

यशोवर्मा के इतिहास काल से संबंधित इस संस्कृतिप्रधान ऐतिहासिक नाटक में दो भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष का चित्रण है। एक वर्ग, पशुबल से अपनी संस्कृति का प्रचार करने के पक्ष में है। दूसरा वर्ग अपनी संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ मान बैठता है तथा अन्य संस्कृतियों को हीन एवं हेय मानता है। आपस में इन दो संस्कृतियों की टकराहट होती है। नाटक के सांस्कृतिक महत्व पर अपने विचार व्यक्त करते हुए चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखते हैं : 'इस एटम युग में स्वतंत्र भारत विश्वभर को शान्ति मार्ग का संदेश दे रहा है। 'रेवा' नाटक में चोलराजकुमारी इंदिरा के प्रयत्न और ऋषि पुंडरीक के शान्ति संदेश भारत के इसी प्राचीन उद्देश्य की ओर संकेत करते हैं। '[2]

आशाद्वीप की राजकुमारी रेवा ~~xxx~~ अपने गुरुदेव ऋषि पुंडरीक की भविष्यवाणी सुनकर उस विदेशी राजकुमार यशोवर्मन की प्रतीक्षा में दिन रात काटती है जो एक गरिमाशाली देश की संस्कृति का संदेशवाहक है। रेवा अपने देशवासियों की मिथ्याधारणा से सहमत न थी कि अन्य देश के लोग असंस्कृत एवं असभ्य थे। विश्व के अन्य देशों की संस्कृतियाँ जान लेने की तीव्र इच्छा रेवा में थी। ऋषि पुंडरीक यशोवर्मन को उपदेश देते हैं कि वह शस्त्र छोड़कर सांस्कृतिक विजय के द्वारा हृदय सम्राट बने, ऋषि के वचनों को यशो-

---

1. आधुनिक हिन्दी नाटक - डा॰ नगेन्द्र - पृ॰ 14 - नवीन संस्करण - 1970
2. रेवा - भूमिका - द्वितीय संस्करण - 1957 (पाँचवी संस्करण 1951 से उद्धृत)

वर्मन अपनाते है । जब यशोवर्मन अपनी सम्राज्ञी इन्दिरा के साथ आशाद्वीप पर पहुँचता है वहाँ आशाद्वीप का भग्नावशेष ही दिखाई पडता है। उनके पहुँचने के पूर्व ही रेवा सहित सारा आशाद्वीप समुद्र की विनाशकारी लहरों में विलीन हो उठता है। मंदिर के पीछे से रेवा की वेदना सिंचित गीत-ध्वनि गूंजती है :-

'शून्य मंदिर में बनूँगी ,
आज मैं प्रतिमा तुम्हारी ।' [1]

रेवा भारतीय संस्कृति के विदेशों में विस्तार की कहानी है। पर वह विस्तार शस्त्र बल पर नहीं अपितु भारतीय संस्कृति की आन्तरिक विशेषता और श्रेष्ठता के आधार पर होता है। ' [2]

मुक्तिपथ:

कथानक राजकुमार सिद्धार्थ की जीवन-घटना से संबंध रखता है। इससे सिद्धार्थ की चिन्तन-प्रवृत्ति, वैराग्यभावना, आत्मज्ञान के लिए गृहत्याग आत्मबोध तथा जनता को मुक्तिपथ का उपदेश देना आदि मुख्य प्रसंग है। भगवान बुद्ध ने जिन चार आर्य सत्यों की खोज की थी, उनकी पृष्ठभूमि क्या थी, इन सत्यों की सार्थकता क्या थी, उन्हें देखने की कौन-सी दृष्टि उपयोगी है, इन विचारों को बुद्ध के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। दुख के कारणों की खोज में भटकते हुए सिद्धार्थ अनोमा नदी के तट पर तप करनेवाले ऋषियों से पूछते है , " साधुओ ! मैं संसार के दुख का कारण जानना चाहता हूँ, क्या आप लोग बता सकेंगे? [3] ऋषि तो नहीं बता पाते, लेकिन बुद्ध को इस सत्य की

1• रेवा - चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - अंक 5 - दृश्य 5 - पृ• 175 पाँचवाँ संस्करण

2• हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण मिश्र - डा• बच्चन त्रिपाठी-पृ•90-प्रथम संस्करण (1968)

3• मुक्तिदूत - उदयशंकर भट्ट - तीसरा अंक - पहला दृश्य, पृ• 69, द्वितीय सं: (1960)

उपलब्धि होती है। इस सत्य का बीज व्यक्ति के अन्तर में छिपा है।

<u>शकविजय:</u>

जैनधर्मावलंबी कालकाचार्य की रूपवती भगिनी सारस्वती को अवन्ती नरेश गन्धर्वसेन अपहरण करके बन्दी बना लेते हैं। अवन्ती नरेश को इस अपमान का दण्ड देने के लिए कालकाचार्य शकों को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित करता है। युद्ध में गन्धर्वसेन पराजित होकर मारा जाता कुछ समय तक मगध देश पर शक अपनी विजय वैजयन्ती फहराते हैं। भारत के वीरशिरोमणि वाद मालवगणों को एकत्रित कर शक राज्य का सर्वनाश करने में जी तोड़ प्रयत्न करता है। यौधेय गण की सहायता से भारतभूमि को शकों से मुक्त करता है। कालकाचार्य प्राणाहुति करके देशद्रोह के लिए प्रायश्चित्त करता है।

देश की सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक अवस्था पर नाटककार ने प्रकाश डाला है। भट्ट जी देश को धर्म, समाज एवं व्यक्ति से महत्तर बनाकर राष्ट्रीय एकता पर बल देते हैं। देशप्रेम की भावना जागृत करने के विशेष उद्देश्य से शकविजय की रचना हुई है। नाटक के प्रारंभ में वे लिखते हैं - 'लघु स्वार्थ एवं बृहद् स्वार्थ में विवेचन का समय आ गया। अब व्यक्ति और देश के संघर्ष में हमें किसे स्वीकार करना होगा, यही विचारणीय है। आज देश धर्म से भी महान है। व्यक्ति और समाज से भी बृहत्तर है। इस भावना को जागृत करने की आवश्यकता है। देश की स्वतंत्रता उसका प्रथम कर्तव्य है।'[1]।

शकविजय में दो संस्कृतियों की भिन्नता का चित्र खींचा

---

1. शकविजय - प्रारंभिक - पृ. 8 - तृतीय संस्करण - 1955

गया है। और शकसंस्कृति की अपेक्षा भारतीय संस्कृति की महत्ता को व्यक्त किया है। विदेशी उल्लुप भारतीय संस्कृति का यशोगान करते है - 'सारे जीवन में जितनी शान्ति, शुद्धि, स्वच्छता मुझे इस देश के वातावरण में मिलो है, उतनी कभी नहीं मिली। भारत का धर्म सचमुच महान् है। यहाँ जेसा ज्ञानी व्यक्ति संसार में नहीं मिल सकता। इतना महान् देश मै ने कहीं भी नहीं देखा। बन्दीकाल में जो पवित्र पुस्तकें मै ने पढी है, उनका शतांश भी किसी देश के पास नहीं। मै इस देश को बार बार प्रणाम करता हूं।' [1]

नाटक में यह तथ्य भी अभिव्यंजित है कि सभी धर्मों का मूलस्रोत एक ही है। सभी धर्मों को परस्पर आदर करना चाहिए। धर्म की महत्ता इसमें है कि हम उसको हृदय से बस वास्तविक रूप में ग्रहण करें। '[2] जहाँ मत पंथ देश के हित से ऊपर होंगे वहाँ के निवासी अपमान, अपयश, पराजय, पराधीनता का जीवन व्यतीत करेंगे। युग युग तक वह देश पददलित रहेगा। 'शकविजय में धर्म का यही विनाशक रूप भट्ट ने रखा है। संभवतः जेन ब्राह्मण धर्म के संघर्ष का हिन्दी मे' यह प्रथम नाटक है।'[3]

कुलीनता:-

इस राष्ट्रीय नैतिक चेतना प्रधान नाटक में सेठजी ने भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास से कथानक ग्रहण करके सामाजिक समस्या की विवेचना की। तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में मध्यप्रांत के त्रिपुरी राज्य पर कलचुरीय वंश के राजा शासन करते थे। नाटक का नायक वीर, पराक्रमी,

---

1. शकविजय- उदयशंकर भट्ट - चतुर्थ अंक - पंचम दृश्य - पृ. 110-तृतीय सं. 1953
2. शकविजय- प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ. 10
3. हिन्दी नाटककार - जयनाथ नलिन - पृ. 165।

साहसी यदुराय जो अकुलीन है, मैत्री सुरभी पाठक की सहायता से त्रिपुरी राज्य पर अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न करता है। सर्वोपरि वीर प्रमाणित होने पर भी नीच जाति में जन्म लेने के अपराध में कुलीन लोग उसका आदर नहीं करते, उसे रूढ़िवादी समाज का शिकार बनना पड़ता है। इसी क्षोभ से आहत होकर उसका विक्षुब्ध मन यों बोल उठता है - " ये हमें पशु से भी निकृष्ट समझते है । हम में कितने ही उच्च गुण क्यों न हों , हम उनके राज्यों में किसी भी उत्तरदायी पद पर आसीन नहीं हो सकते, हम कितने ही सुंदर क्यों न हों , हम उनकी कन्याओं से विवाह नहीं कर सकते। हम कितने ही स्वच्छ क्यों न हों हमारा छुआ हुआ भोजन उनके खाने योग्य नहीं रह जाता। इतना ही नहीं यदि देश पर विपत्ति आवे तो यद्यपि हम उनकी अपेक्षा इस देश के पुराने निवासी है, हमें अपने देश की रक्षा करने का भी अधिकार नहीं है।"[1]

राजकुमारी रेवा का यदुराय के प्रति जो प्रेम और आकर्षण भाव है भी इस जटिल समस्या के कारण मुरझा जाता है। एक अकुलीन से प्रेम करने के अपराध में उसे देश से निकाल दिया जाता है। यदुराय को विजयसिंह देव के सेनापति चण्डपीड के अनेक षड्यन्त्रों का सामना करना पड़ता है, फिर भी उसकी अकुलीनता की विजयसिंह एवं चण्डपीड की कुलीनता पर विजय होती है। विजयसिंह को अपदस्त कर यदुराय सुरभि पाठक की सहायता से अपने वंश की नींव डालता है। अकुलीन गोंड यदुराय की [redacted] सफलता एवं कुलीन कलचुरियों की असफलता दिखाकर नाटककार यह सिद्ध करते है कि कुलीनता न जन्मजात है बल्कि कर्मजात है। मानव जीवन की इस जटिल समस्या के संबंध में जयनाथ नलिन ने ठीक ही कहा है - 'यह कुलीनता का पाखंड, दुरभिमान और आडंबर ही हमारे देश को तबाह कर रहा है। '[2]

- -

1. कुलीनता - दूसरा अंक - तीसरा दृश्य - पृ. 149 - पांचवां सं. 1955
2. हमारे नाटककार - जयनाथ नलिन - पृ. 188 - द्वितीय संस्करण 1961

शशिगुप्त:

गुप्तकालीन इतिहास से संबंधित नाटक का कथानक अत्यन्त विस्तृत है। शशिगुप्त का अपने गुरु चाणक्य के प्रबोधन से मातृभूमि की रक्षा के लिए यवन सेना से लड़ना तथा पराजित होना, बाद में चाणक्य द्वारा शशिगुप्त से सिकन्दर का शत्रु बन जाने का परामर्श देना, हेलन का शशिगुप्त पर मुग्ध होना, पर्वतेश्वर एवं शशिगुप्त द्वारा सम्मिलित रूप में विदेशियों को देश से बाहर निकालने की प्रतिज्ञा लेना, पंचनद में पोरस के हाथों सिकन्दर का परास्त होना, सैल्यूकस एवं शशिगुप्त के युद्ध करते समय बीच में हेलन का आकर युद्ध रोकने का प्रयत्न करना, चाणक्य द्वारा सिकन्दर से साक्षात्कार के अवसर पर उसको पराजय की प्रस्तावना देना, शकटार के बाण से नन्द की मृत्यु होना, हेलन के साथ शशिगुप्त का विवाह होना, लक्ष्यप्राप्ति के पश्चात् चाणक्य का शशिगुप्त को राज्यभार सौंपकर सन्यास ले लेना, इन सभी घटनाओं को नाटक में सिमटकर रखा गया है। सेठ जी ने अपने नाटक की रचना के लिए डा॰हरिश्चन्द्र सेठ की चन्द्रगुप्त संबंधी नई खोजों का आश्रय लिया है। डा॰ विजय बापट ने लिखा है - 'शशिगुप्त नाटक में इतिहास की नवीनतम खोजों के अनुसार चन्द्रगुप्त संबंधी इतिहास को नवीन रूप देने का प्रयत्न है।" 1

नाटक में स्वाधीनता का आवेग है। आचार्य चाणक्य शशिगुप्त को मातृभूमि को पुनः स्वतंत्र करने के लिए उपदेश देते हैं और उत्तेजित करते हैं - ' अवसर पाकर तुम्हें एक एक यवन का वध करना है। अपनी जन्मभूमि के परतंत्र भागों को फिर स्वतंत्र बनाना है। अपने देश में एक साम्राज्य की स्थापना करनी है। अपनी प्रतिज्ञा, अपने संकल्प पर दृढ़ रहना यह प्रत्येक आर्य का परम कर्तव्य है, प्रधान धर्म है।" 2

1• प्रसादोत्तर नाटक साहित्य - डा॰ विजय बापट - पृ॰ प्रथम संस्करण-1971

2• शशिगुप्त - पहला अंक , पाँचवाँ दृश्य - पृ॰61, दशम संस्करण - 1960

भारतेन्दु :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी पर आधारित जीवनी परक ऐतिहासिक नाटक है। नाटक के प्रारंभ में उपक्रम के अन्तर्गत पाँच वर्ष के बालक हरिश्चन्द्र की एक छोटी सी झाँकी दिखाई गई है जिसमें उनके जीवन के दृष्टिकोण का आभास मिलता है। सेठ जी ने भारतेन्दु के रूपवर्णन, हाव भाव, वेश-भूषा आदि का सूक्ष्म रूप से चित्रण किया है जो जीवनी नाटक के लिए अनिवार्य है। सेठजी ने भारतेन्दु के रूप का ही नहीं, उनके पारिवारिक जीवन के वातावरण का तथा आचार विचारों का भी सूक्ष्म चित्रण किया है। क्यों कि उन्होंने निवेदन में लिखा है - "इसलिए इस नाटक का वायुमंडल मेरा परिचित वायुमंडल है।" [1] नाटक में केवल एक पात्र छिरिया काल्पनिक है। इसलिए लेखक ने नाटक को ऐतिहासिक लिखा है। भारतेन्दु के काव्यों का परिचय भी दिया गया है। भारतेन्दु द्वारा भिन्न भिन्न समयों पर दिये गये दानों का वर्णन भी किया गया है। उपसंहार में सेठजी ने भारतेन्दु की मृत्यु दिखाई है। फिर उन्होंने यह दृश्य प्रस्तुत करने के लिए एक ऐसी नई शैली का प्रयोग किया है कि नाटक दुखान्त बनने से बच निकलता है।

रहीम

सम्राट अकबर के विख्यात सेनापति तथा नवरत्न अब्दुर्रहीम खानखाना के व्यक्तित्व को प्रकाश में लाने के लिए सेठजी ने उनके जीवन की कुछ ऐसी प्रमुख घटनाओं को, जो उनकी वीरता, युद्धकुशलता, साहित्यिक श्रेष्ठता आदि का स्पष्ट परिचायक है, नाटक में प्रस्तुत किया है। उन्होंने रहीम की अथाह वीरता, अपूर्व दानशीलता, अटल स्वामिभक्ति, अडिग सदाचार, धार्मिक

- -

1. भारतेन्दु - सेठ गोविन्ददास - पृ. 4

सहिष्णुता, साहित्य प्रेम, राग के नीचे दबी हुई विराग की भावना और श्रीकृष्ण में अगाध श्रद्धा आदि अनेक गुणों पर बड़े स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक ढंग से प्रकाश डाला है।" 1

नाटककार ने अकबर एवं जहाँगीर के शासनकाल को चित्रित किया है। सेठजी का प्रमुख उद्देश्य रहीम का चरित्र चित्रण ही है। रहीम के जीवन का अधिकांश समय युद्धक्षेत्र में व्यतीत हो गया। युद्धनिपुणता के उपलक्ष्य में उनको पदत्व खानखाना(मुगल साम्राज्य की सबसे श्रेष्ठ पदवी) उनसे छीने जाने की घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

महात्मागांधी :

यह नवीनतम जीवनी नाटक है। इसकी पृष्ठभूमि में गत-वर्ष की भारतीय क्रान्ति का इतिहास भी आ जाता है। नाटक में गांधीजी की जीवनी से संबंधित ऐसी घटनाओं का समावेश हुआ है जिनसे गांधीजी के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं पर प्रकाश पड़ गया है। स्वयं नाटककार ने स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है - ' इस नाटक में मैने अपनी दृष्टि से उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को छाँटकर उन्हें श्रृंखला बद्ध करने का प्रयत्न किया है। घटनाओं के अत्यन्त सन्निकट होने पर भी तथा उनके साथ व्यक्तिगत संपर्क रहने पर भी एक साहित्यिक के नाते मैं ने निरपेक्ष रहने की कोशिश की है।" 2

अशोक :- लक्ष्मीनारायण मिश्र

अशोक के जीवन से संबंधित घटनाओं के माध्यम से विपथ-गामिनी प्रतिभा की असफलता एवं बौद्ध धर्म का उत्कर्ष दिखाया गया है।

---

1. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन -वेदपाल खन्ना विमल - पृ.363 प्रथम संस्करण - 1958

2. महात्मा गांधी - सेठ गोविन्ददास - निवेदन - पृ. ख (1959)

बिंदुसार का अशोक को पंचनद का विद्रोह शान्त करने के लिए भेजना, अशोक की विजय से बिंदुसार के मन में स्पर्धा का भाव जागृत होना, उसे दबाने के लिए भवगुप्त को भजना, भवगुप्त का उस प्रस्ताव को ठुकराना- अशोक के मन में पिता से प्रतिशोध लेने की भावना जाग उठना, अशोक का साम्राज्यपद ग्रहण करना, कलिंग युद्ध के बाद अत्याचारी अशोक का सत्य का पुजारी बनना - इन सभी घटनाओं का विश्लेषण नाटक में हुआ है।

'अशोक में बौद्ध धर्म का संघर्ष अधिक प्रभावशाली रूप में उभरकर सामने आया है।

गरुड़ध्वज :

इस संस्कृतिप्रधान नाटक का कथानक ईसा पूर्व की पहली दूसरी शताब्दी के भारतीय इतिहास से संबंध रखता है। कथानक का आधार ग्वालियर के पास स्थित विदिशा के शुंग सेनापति, पराक्रमी एवं शक्तिशाली विक्रममित्र द्वारा उत्तराखंड के आर्य साम्राज्य को अक्षुण्ण रखने के लिए किए गए प्रयत्न हैं। गुप्तवंशीय राष्ट्रध्वज 'गरुड़ध्वज' की महत्ता दिखाने के लिए नाटक का शीर्षक ऐसा रखा गया है। अपने को राजा न कहलाकर सेनापति बनानेवाले विक्रममित्र अपना सारा जीवन परोपकार में बिताता है, काशीराज की पुत्री वासंती को यवनभार्या बनने से बचाता है। वासंती से कालिदास का विवाह कराता है। प्राचीन कथानक को आधार बनाने पर भी काशिराज की कन्या वासंती के माध्यम से इस युग की धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक स्थापनाओं, जटिल नारी समस्याओं का आभास हो जाता है।" ।

•1 हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण मिश्र - डा• बच्चन त्रिपाठी-पृ•418, पंचम संस्करण

मिश्रजी नाटक की भूमिका में नाटक का उद्देश्य व्यक्त करते हैं -"मेरी कल्पना का यह आग्रह संभव है, किसी दिन इतिहास में विद्वानों को भी स्वीकार है। हमारी संस्कृति से यदि कालिदास और विक्रमादित्य निकाल दिये जाएँ तो निस्संदेह वह श्रीरहित और शक्तिहीन हो जाएगी। इस नाटक की मूल प्रेरणा पर श्री और शक्ति है।"[1] मिश्रजी सदैव भारतीयता और भारतभूमि की प्रशंसा उच्च स्वरों में करते दिखाई पड़ते हैं। विदेशी चरित्रकार हलीदर के शब्द अपने देश और अपनी धरती के साथ पूर्ण तादात्म्य और सहज अनुराग स्थापित करने की प्रेरणा देते हैं - "जिस धरती के अन्न जल से पला व्यक्ति उसी धरती के धर्म में जब तक अपने को ढाल नहीं लेता, तब तक वह अत्याचारी है। उसे अधिकार नहीं है उस धरती पर रहने का।[2]

वत्सराज:

भास कृत स्वप्नवासवदत्ता के आधार पर रचित 'वत्सराज' एक संस्कृति प्रधान नाटक है। मिश्रजी ने इसमें वत्सराज के जीवन की घटनाओं को अंकित करके उसके उदात्त और मानवीय रूप को सामने लाने का प्रयास किया है। उदयन बौद्ध धर्म का विरोधी था, इसलिए बौद्ध ग्रंथों में परवर्ती साहित्य में उसके चरित्र को हीन दिखाया गया है। इस आरोप को दूर करना मिश्र का ध्येय था। उदयन बौद्ध धर्म इसलिए करता था कि बौद्ध धर्म का प्रसार, उसकी दृष्टि में भारतीय समाज तथा संस्कृति की रक्षा के लिए हानिकारक था। उदयन की अपनी रानियाँ पद्मावती और वासन्ती के साथ वैवाहिक समस्या को भी प्रस्तुत किया गया है। अपने एकमात्र कुमार के बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाने पर उदयन का सारा परिवार मर्माहत हो जाता है। पद्मावती दुख से पागल होउठती

---

1. गरुड़ध्वज - मिश्र - दो शब्द - पृ. 8 (पंचम संस्करण 1960 से उद्धृत)
2. गरुड़ ध्वज - दूसरा अंक - पृ. 86 (पंचम संस्करण 1960)

है। अंत में पिता के आगे पुत्र पराजित होता है। वह अपना धर्म का परित्याग कर देता है। उदयन अपनी दो रानियों के साथ सिंहासन त्याग कर वानप्रस्थ ले जाते हैं।

नाटककार ने इसमें धर्म और कर्म का द्वन्द्व दिखाया है। अनासक्त कर्मयोग की आदर्श प्रतिष्ठा, गौतमबुद्ध की निवृत्ति मूलक विचारधारा पर उदयन की प्रवृत्तिमूलक जीवनदृष्टि की विजय द्वारा होती है। कर्म और वैराग्य के बीच द्वंद्व उपस्थित कर दो विरोधी शक्तियों के माध्यम से एक ऐसी जीवन दृष्टि निर्धारित करने का प्रयास लक्ष्मीनारायण मिश्र का है जो जीवन संदर्भों में व्यक्ति को क्रियाशील बनाये रख सकती है। ।"[1]

<u>वितस्ता की लहरें</u> :

इस संस्कृति प्रधान नाटक में सिकन्दर और पुरु के युद्ध का वर्णन है। सिकन्दर की सेना सहित वितस्ता के तट पर आने पर केकय का वीरपुत्र उसका सामना करने की घटना नाटक में प्रस्तुत की गयी है। नाटककार ने सिकन्दर को अलिकसुंदर नाम रखा है। तक्षशिला का आचार्य विष्णुगुप्त पुरु की सहायता से विजयी यवन अलेक्जेंडर को भारत से निष्कासित करने में विजयी होता है। आंभी का देशद्रोह, उसके पुत्र भद्रबाहु का पिता के देशद्रोह के कलंक को धो डालने, भद्रबाहु एवं पारस कन्या-सिकन्दर की प्रेयसी का परस्पर प्रणय, विष्णु गुप्त के उपदेश से तक्षशिला के स्नातक द्वारा ताया को हरण करने की घटनाएँ प्रासंगिक हैं। सिकन्दर का उदाहरण देकर मिश्र बताते हैं कि विध्वंस और संहार का प्रश्रय देने से कोई महान नहीं बन सकता। उन्होंने प्रस्तुत नाटक में अनेक प्रकार से यवन संस्कृति तथा भारतीय संस्कृति के गौरव

---

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व ' डा. धनंजय -पृ.214

का, इसके सृजन, संस्कार और उदात्तता के भावों को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की गई है। " [1]

दशाश्वमेध :-

नागराज कुमार वीरसेन द्वारा काशी के कुषाण क्षत्रप अंगारक का वध करके मथुरा प्रदेश तक भारतभूमि को स्वतंत्र करने की कथा नाटक में निरूपित है। देवपुत्री कौमुदी से वीरसेन का प्रणय, विदेशियों को राज्य से निष्कासित करने के बाद दोनों का विवाह, गंगा तट पर अंगारक का वध करने के बाद वीरसेन का अश्वमेध यज्ञ करना तथा दस अश्वमेध यज्ञों की प्रतिज्ञा लेने की घटनाएँ आगे चलकर नाटक में आती हैं। दशाश्वमेध में धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता का शानदार समन्वय हुआ है।" [2] नाटक की प्रेरणा के संबंध में मिश्रजी लिखते हैं - "काशी का दशाश्वमेध घाट इनके अश्वमेध यज्ञ का आज भी प्रमाण है। काशी के इस घाट पर भाग्य से जब कभी मुझे जाने का अवसर मिला, विजयी वीरसेन का पराक्रम मेरी कल्पना को अनेक रंगों में रंगता रहा है।" (3)

वैशाली में वसंत :

वैशाली की अपूर्व सुंदरी अंबपाली के चरित्र को आधार बना कर नाटक लिखा गया है। सभी अन्य रचनाकारों ने अंबपाली का चरित्र एक गणिका के रूप में चित्रित किया है, लेकिन मिश्रजी ने इसे लोक कल्याणी के रूप में चित्रित किया है।

---

1. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन - वेदपाल खन्ना विमल, पृ. 117
2. हिन्दी नाटककार - जयनाथ नलिन - पृ. 263
3. दशाश्वमेध - भूमिका - पृ. 18-19 पाँचवाँ संस्करण

मिश्रजी के तीन जीवनीपरक ऐतिहासिक नाटक है,(1) कवि भारतेन्दु, (2) जगद्गुरु (3) मृत्युंजय।

कवि भारतेन्दु :-

भारतेन्दु के जीवन की प्रसिद्ध घटनाओं पर प्रकाश डाला गया, साथ ही भारतेन्दु के समकालीन साहित्यकारों के व्यक्तित्व की झाँकी भी है।

जगद्गुरु :-

शंकराचार्य की विद्या की जयगाथा का गान है। शंकराचार्य को इस रूप में चित्रित कर मिश्रजी ने भारतीय आचार्यों की विद्या तथा पौरुष को सामने रखा ही है, समाज कल्याण तथा राष्ट्रहित के लिए विद्या के उपयोग का निदर्शन प्रस्तुत किया है।[1] इसमें देशाभिमान एवं देशप्रेम की का भावना भी विद्यमान है। आचार्य शंकर कुमारिल के शिष्य श्रुतिकेतु से अद्भुत देशानुराग प्रकट करते है, - " यह भारतभूमि जिसमें श्रुति का ■■ मंत्रदर्शन ऋषियों ने किया है, जिसके अर्थ का अनुसरण स्मृति में वे करते आए - - हिमवान से कुमारिका के बीच की यह भूमि - - हम सब की यह मातृभूमि मेरे लिए पार्वती का पार्थिव रूप है। इस भूमि पर जब मैं चलता हूँ, श्वास से अपना भार ऊपर खींचे रहता हूँ कि नहीं मेरे चरण माता की देह पर क्लेश न उत्पन्न करें।'[2]

भारतीय जीवनदर्शन और सांस्कृतिक गरिमा का महत्त्व प्रतिपादन भी नाटक में हुआ है। मण्डनमिश्र अपनी पत्नी भारती से व्यास और

- -

1. हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण मिश्र - डा० कमलिनी त्रिपाठी - पृ.423

2. जगद्गुरु - मिश्र - पृ. 60

वाल्मीकि के संबंध में कहते हैं - " यह सारा जगत व्यास या वाल्मीकि का उच्छिष्ट है। कालिदास ने उन्हीं से लिया। इस देश की मेधा बराबर उन्हीं से लेती रहेगी। जगत का जो स्वाद उन्हें मिला था, सृष्टि दर्शन और जीवधर्म का स्वाद था। उनके दर्शन में जो न आया अब फिर किसी दूसरे के दर्शन में आएगा भी नहीं।" [1]

मृत्युंजय :

महात्मा गांधी के चरित्र को केन्द्रित करके रचित मृत्युंजय में गांधी, पटेल' सरोजनी नायुडु आदि को पात्र के रूप में चित्रित कर गांधीजी के व्यक्तित्व के माध्यम से भारतीय संस्कृति तथा कला साहित्य की मान्यताओं की व्याख्या की गई है।

गांधीजी देश की परिभाषा देते हुए अपने अंतरंग सहयोगी पटेल से कहते हैं - " देश किसे कहते हैं, सरदार। भारतभूमि और उसकी प्रकृति उस भूमि पर उपजी पूर्वजों की परंपरा, उनका भावलोक जिसे धर्म, दर्शन-साहित्य और संस्कृति कहेंगे, सब मिलकर देश बनता है। जिसके कण्ठ से ऐसे रूप की जयध्वनि नहीं निकली, वह देशद्रोही है। " [2]

नाटक में स्थान स्थान पर गांधीजी भारतीय संस्कृति तथा धर्म की महत्ता का निरूपण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। नाटक में यह भी सिद्ध किया गया है कि भारतीय संस्कृति की तुलना में यूरोपीय संस्कृतियाँ हेय और तुच्छ हैं। गांधी पटेल से भारतीय वेदान्त पर चर्चा करते हुए कहते हैं

- -

1. जगद्गुरु - पृ. 18
2. मृत्युंजय - लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. 95

है - "पश्चिम में दर्शन की कोई पद्धति नहीं जो देश को साल कर दे । अपने यहाँ भी केवल वेदान्त इसमें समर्थ है, जहाँ भौतिक और आध्यात्मिक का अभेद है। भाव के हर तल में जहाँ भगवान का अनुभव है। वेदान्त का आनंद साहित्य का रस है। साहित्य पर विचार का अवसर जब भी मुझे मिला, मैं बराबर यही कहता हूँ।" [1]

<u>अनारकली</u> :- <u>सीताराम चतुर्वेदी</u>

इस नाटक में मुगल रनिवास की असाधारण सुंदरी दासी नादिरा(अनारकली) का प्रेम के लिए बलिदान दिखाया गया है। वह शाहजादा सलीम से अत्यधिक स्नेह करती थी । शाहजादा उसे अपना दिल दे बैठा था। अकबर ने ये बातें जान लीं और क्रुद्ध होकर आज्ञा दे दी कि अनारकली को प्राण दण्ड दे दिया जाय। सलीम को जब यह ज्ञात हुआ तो वह अत्यन्त दुखी हुआ, किन्तु तब तक अनारकली की समाधि बन चुकी थी।

<u>सिद्धार्थ</u> :-

भगवान सिद्धार्थ की जीवन-गाथा पर आधारित इस नाटक में यह दिखाया गया है कि संपूर्ण राजसी वैभव के होते हुए भी उन्होंने किस प्रकार लोककल्याण के लिए अपने भोले दुधमुंहे पुत्र राहुल, पतिपरायणा, अनिन्द्य सुंदरी पत्नी यशोधरा और विशाल राज्य सबको लात मारकर प्रव्रज्या ग्रहण की। और मध्यम प्रतिपदा का ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिसने कई शताब्दियों तक भारत में अपने आलोक से जनता में नैतिक जीवन, त्याग, सहिष्णुता तथा विश्व बन्धुत्व की प्रेरणा दी। इतना ही नहीं उनके उपदेशों का और उनके नैतिक तथा आ-

---

1. मृत्युंजय - लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ० 95

धार्मिक संघटन का ऐसा व्यापक प्रभाव हुआ कि भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी इनके दर्शन संस्कार की दुंदुभि बज उठी।

<u>जय सोमनाथ</u> :-

सोमनाथ मन्दिर के अध्यक्ष ज्ञानदेव के यहाँ पाटण के महाराज भीमदेव सोलङ्की अतिथि होकर आते है। जिनकी रानी बकुलादेवी वहाँ देवदासी रह चुकी है। उन दिनों तान्त्रिकों का देश भर में बड़ा आतङ्क था। वीराचारी और वामाचारी तांत्रिक अनेक प्रकार के अनाचारों के साथ नर-बलि भी दिया करते थे। ऐसा ही एक तांत्रिक वीरभद्र सोमनाथ मंदिर की देवदासी अवन्तिका का हरण करने का कुचक्र रचता है। किन्तु उसमें असफल हो जाने पर वह गजनी के महमूद को सोमनाथ पर आक्रमण करने का निमंत्रण देता है और तदनुसार वह मुलतान और राजस्थान की मरुभूमि में से होकर सोमनाथ पर आक्रमण करता है। पाटण के महाराजा भीमदेव उसका सामना करते हैं और इसी बीच मालवा के राजा भोजदेव की सेना आ पहुँचने के कारण महमूद नगर को लूटकर भाग खड़ा होता है।

<u>आचार्य विष्णुगुप्त</u> :-

इसमें चाणक्य और चन्द्रगुप्त की कुशल नीतियों का वर्णन मिलता है।

<u>पूर्व की ओर</u> :- वृन्दावनलाल वर्मा

इसका कथानक ई० सन् 240 का है जिसमें दक्षिण भारत का विशेषकर पल्लव संस्कृति का चित्रण है। पल्लवों के संबंध में प्रचलित भ्रांतियों को दूर करने का प्रयास भी किया गया है। पल्लव वंशीय राजा वीरवर्मा का

अपने भतीजा अश्वतुंग को उसके देशद्रोही व्यापारी के कारण निर्वासित होना, उसके अपने सौ साथियों के साथ समुद्रयात्रा करता हुआ नागद्वीप पहुंचना, वहाँ की रानी धारा का उसपर मुग्ध होना, अश्ववर्मा द्वारा नागद्वीप के निवासियों को भारतीय संस्कृति से परिचित कराके उन्हें सभ्य बनाना तथा नागद्वीप में भारतीय कलाओं का प्रसार करने की घटनाएँ नाटक में अंकित की गई हैं। नाटक में प्राचीन भारत की समुद्रयात्रा के [redacted] ज्ञान को प्रतिपादित करने के साथ साथ संस्कृतिवादी दृष्टिकोण को बड़े स्थूल रंग से रखा गया है।

<u>हंसमयूर :</u>

कथानक का आधार कालकाचार्य कथा है। कालक की बहन का नाम वर्माजी ने सुनैना रखा है। विक्रमादित्य के स्थान पर चन्द्रसेन नामक नायक को शकों का विनाश करते हुए दिखाया गया है। चन्द्रसेन [redacted] शकाधिप भूमक की पुत्री तन्वी से प्रेम करता है, अन्त में उसे विवाह भी करता है। नाटक में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर उत्तरभारत विशेषकर मालवगण राज्य का सांस्कृतिक चित्रण हुआ है। भारतीय संस्कृति में हंस मुक्ति का एवं मयूर पुरुषार्थ का प्रतीक है। चन्द्रसेन रामचन्द्र नाग से हंसमयूरी संस्कृति की व्याख्या करते [redacted] हुए कहते हैं - " [redacted] भक्ति और पुरुषार्थ का, तपस्या और जीवन का, त्याग और भोग का, बुद्धि और बल का, विशालता और स्फूर्ति का, कोमलता और दृढ़ता का, शान्ति और सक्रियता का, समन्वय वैष्णव धर्म है। शकों को पराजित करके, क्या हम उनके बाल बच्चों का वध करेंगे? कभी नहीं राजन्, यदि वे हमारी संस्कृति के होकर हमारे देश में रहेंगे तो उनकी उसी प्रकार रक्षा की जाएगी जैसी आर्य जनों की, की जाती है। " [1]

<u>फूलों की बोली :</u>

अरब यात्री अलबरुनी के ग्रंथ तहकीक-ए-हिन्द की एक कथा

---

1. हंसमयूर - दूसरा अंक - तीसरा दृश्य - पृ.51 - छठाँ संस्करण - 1960

को आधार बनाकर वर्मा ने फूलों की बोली की रचना की। सन् 1030 ईस्वी की घटना ही इसमें अंकित है। माधव स्वर्ण रसायन की विद्या सीखने के लिए उज्जैन जाता है, इस विद्या को सीखने में उसे अपना सारा समय और सारी संपत्ति नष्ट होती है। एक वेश्या कामिनी के संपर्क में उसके मन में फिर आशा का उदय होता है। पुनः स्वर्ण रसायन संबंधी कला सीखने को तत्पर हो जाता है।

डा॰ धनंजय ने नाटक के अध्ययन के बाद ऐसा विचार प्रकट किया है। - ' नाटक पढते समय ऐसा आभास होता है कि बीसवीं शताब्दी की कोई घटना लिखी हो। " 1

वीरबल :

वीरबल का समय सोलहवीं शताब्दी अकबर का राज्य काल है। प्रस्तुत नाटक में अकबर के नवरत्नों में सबसे लोकप्रिय एवं चतुर वीरबल की धर्मविषयक तथा युद्ध विषयक धारणा पर प्रकाश डालनेवाली घटनाएँ निबद्ध है । साथ ही साथ अकबर के जीवन से संबंधित घटनाएँ - उनकी लम्पटता तथा रसिकता को सिद्ध करनेवाली तथा उनकी उदारता और न्यायप्रियता को प्रमाणित करनेवाली घटनाएँ भी समाहित है । वर्मा ने अकबर के समकालीन दरबारी बदायूनी और नवरत्नों में से एक अबुल फजल के शब्दों को अधिक प्रामाणिक मानकर वीरबल के अनेक उत्कृष्ट गुणों का उद्घाटन करते हुए यह सिद्ध किया है कि यद्यपि अकबर में कई महान गुण थे पर वीरबल उन गुणों में अकबर से भी बढ़ चढकर था। " 2

---

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा॰ धनंजय - पृ॰283

2. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- वेदपाल खन्ना विमल-पृ॰ 358

झाँसी की रानी:

सन् 1857 के गदर से यह नाटक संबंधित है। वर्मा ने लक्ष्मीबाई का बचपन, उनकी सैनिक शिक्षा, गंगाधर राव से उसका विवाह, दामोदर का गोद लेना, मार्च 1858 ई॰ में ह्यू रोज का झाँसी पर आक्रमण, रानी का बड़ी वीरता से शत्रु से लड़ना, देशद्रोहियों के कारण उसकी पराजय, अन्त में रानी का बलिदान इत्यादि घटनाएँ प्रस्तुत की है ।

कला और कृपाण:- रामकुमार वर्मा

यह नाटक महाराजा उदयन के बौद्ध धर्म स्वीकार करने के कारणों की विवेचना करता है। उदयन द्वारा गौतम पर चलाया बाण, उसकी प्रेयसी मंजुघोषा को लगता है। इसी घटना से उदयन का हृदय परिवर्तन होता है। करुणा, दया, ममता, अहिंसा आदि मानवीय वृत्तियों की हिंसात्मक वृत्तियों पर होनेवाली विजय को सूचित करना ही नाटककार का लक्ष्य है।

शिवाजी :- रामकुमार वर्मा

नाटक के कथानक में शिवाजी ने अपने चरित्र की दृढता में समस्त प्रलोभनों पर विजय प्राप्त की है। कल्याण लूट में प्राप्त बीजापुर के सूबेदार मुल्ला अहम्मद की सुंदरी पुत्रवधू गौहरबानु को शिवाजी के सामने एक उपहार के रूप में उनके सेनापति आबाजी उपस्थित करता है। गौहरबानु की सुंदरता दक्षिण में गीतालियों की कहानी बन रही थी। लेकिन शिवाजी इस सुंदरता से हार नहीं मान सका, उसकी सुंदरता में शिवा जी को अपनी माँ जीजाबाई का मुख दीख पडता है। अपनी माँ जीजाबाई की मुसकान दीख पडती है। जहाँ अनेक राजाओं ने अपने अन्तःपुर को सुंदरियों की संग्रहशाला बनाने में अपने बल और पराक्रम को आँका, वहाँ महाराज शिवाजी ने शत्रु की अत्यंत

सुंदरी स्त्री में भी अपनी माता जीजा बाई के दर्शन किये। "यह चरित्र दृढ़ता केवल मात्र भारतीय है और इन्हीं नैतिक आदर्शों पर चलकर हमारे विद्यार्थियों को उस राष्ट्र का निर्माण करना है जिसमें जीवन प्रतिफल चरित्र दृढ़ता से संचालित होकर कौशल से कर्म करने में प्रतिफलित होता है।" [1]

<u>नाना फडनवीस</u> :- रामकुमार वर्मा

प्रसिद्ध मराठा राजनीतिज्ञ नाना फडनवीस की वीरता और निर्भीकता का वर्णन है। यह नाटक चरित्र प्रधान है जिसमें नाना के व्यक्तित्व को समालोकित करनेवाली घटनाएँ उठायी गयी हैं। नाना फडनवीस जनतंत्र का समर्थक है, उनका मन्तव्य है, 'यदि मैं पेशवा होना चाहता तो आपसे पहले पेशवा होता, किन्तु पेशवाई उसे मिलनी चाहिए जो जनता की सेवा से पेशवाई का अधिकारी है।" [2]

<u>संत तुलसीदास</u> :- रामकुमार वर्मा

नाटक में तुलसीदास का जीवन समाहित हो गया है। उनके बाल्यकाल से उनके उत्कर्ष काल तक की कथा नाटक में अंकित है। तुलसीदास अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा हुआ था। उसके पिता ने अपने बच्चे को अपनी नजरों से दूर करने की आज्ञा दी। बच्चे का पालन-पोषण एक भिखारी के घर में हुआ। बच्चा उस भिखारिन के साथ भीख माँगता था।

बालक अपने दुर्भाग्य को कोसता है —" मैं ऐसा अभागा हूँ कि जिसके सामने पडता हूँ, वही मुझे काट लेता है। पर आदमी से

- -

1. शिवाजी - भूमिका - पृ. 16 - सप्तम संस्करण - 1965
2. नाना फडनवीस - पृ. 80 - तृतीय अंक

कुत्ता अच्छा है जिसने मुझे नहीं काटा। कुत्ता और हम दोनों एक ही जाति के हैं। दोनों ही टुकड़ों पर पलते हैं। कभी रोटी का टुकड़ा हम पा जाते हैं, कभी कुत्ता पा जाता है। "[1] बालक को भगवान पर कितना भरोसा है, देखिये : --" मैं गाता हूँ अपने रामजी को रिझाने के लिए, रुपये पैसे के लिए कभी न गाया। न गाऊँगा।"[2]

नाटक के दूसरे अंक में वर्माजी तुलसी और उनकी पत्नी रत्नावली के पारिवारिक जीवन में हुए संघर्ष का उद्घाटन करते हैं। एक सावन में रत्नावली तुलसी की आज्ञा के बिना अपने पितृगृह चली जाती है। विरह विदग्ध तुलसी भी पीछे पीछे ससुराल पहुँच जाते हैं। रत्नावली अपने पति को समझा देती है कि उनके सामने व्यावहारिक जगत भी है, लोकधर्म भी है, कुल-धर्म भी है। रत्ना ने अपनी सत्य बातों से तुलसी के संस्कारों को जगा दिया। रत्नावली के प्रति युवक तुलसी का अगाध प्रेम राम की अनन्य भक्ति में परिणत हुआ। रामकुमार वर्मा कहता है - " इस नाटक के लिखने में सबसे अधिक चिन्तन मुझे दूसरे अंक में करना पड़ा, जहाँ तुलसीदास रत्नावली से अलग होते हैं। आसक्ति के चरमबिन्दु से जो अनासक्ति की रेखा तक सीधे पहुँचते हैं उनके मानसिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व की कितनी गहरी संवेदना है, उसे वास्तविकता देने के लिए मुझे तुलसीदास के मानसिक उद्वेलन में डूबने की आवश्यकता थी।"[3]

तुलसीदास जनमानस के कवि थे। अतः उनके जीवन में जितना लोकतत्व रमा सकता था, उसे लाने की चेष्टा भी वर्मा ने की है। तुलसी

---

1. सन्त तुलसीदास - पहला अंक - पृ. 27 - पहला संस्करण - 1973
2. " " पृ. 29 "
3. " " " - रामकुमार वर्मा - अपनी बात - पृ. 14

साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डा॰ बलदेव प्रसाद मिश्र की राय है--' नाटक के सभी गुणों से अलंकृत इस कृति में तुलसीदास के जीवन के [redacted] मर्मस्थलों का अनूठा [redacted] उद्घाटन हुआ है। जो पाठकों अथवा श्रोताओं या नाटक दर्शकों के हृदयों को झंकृत करके उन्हें बरबस दिव्य उदात्त भूमिका पर पहुँचा देता है।'' ।

<u>जौहर की ज्योति</u> :- रामकुमार वर्मा

प्रसिद्ध राजपूत वीर दुर्गादास के शौर्य की झाँकी नाटक में प्रस्तुत की गई है। दुर्गादास ने जिस प्रकार मारवाड़ देश की रक्षा के लिए [redacted] उपाय रचे और अपनी बुद्धि तथा शक्ति का परिचय दिया, वही नाटक का मुख्य विषय है। आत्मविश्वास और साहस की अग्नि की लपटों में अपनी स्वातंत्र्य प्रियता की ध्वजा को ऊँचा करके दुर्गादास ने अपना कर्तव्य निभाया। औरंगजेब के पुत्र अकबर की सहायता से दुर्गादास जसवन्तसिंह के पुत्र अजितसिंह को मारवाड़ की गद्दी पर बैठाता है। अकबर की पुत्री [redacted] सफियतुन्नीसा और अजितसिंह में प्रेम होता है। दुर्गादास दोनों के प्रेम का समर्थन नहीं करता, अजितसिंह दुर्गादास पर रुष्ट होता है। उसे निर्वासन का दण्ड भी दिया जाता है। अन्त में सफियतुन्नीसा आन का मान रखने के लिए अपने प्रेम का त्याग करती है।

---

1. संत तुलसी[redacted]दास - डा॰ वर्मा - पहला संस्करण - 1973

राजस्थान की मर्यादा के लिए, राजवंश की पवित्रता के लिए, अपने चाचा दुर्गादास की आज्ञा का पालन करने के लिए अजित के मार्ग से हट जाने का जो निश्चय सचिरतुन्निसा लेती है, उससे उसके मन का प्राण जोहर हो जाता है।

अग्निशिखा :

नाटककार ने आचार्य चाणक्य, सम्राट चन्द्रगुप्त और अमात्य राक्षस के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर वास्तविक प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। चाणक्य के व्यक्तित्व की विशिष्टता यह है कि उन्होंने इतिहास के अविस्मरणीय परिच्छेदों में राजनीति की नवीन परिभाषा दी है। काले वर्ण और कृश शरीर में बुद्धि का वैभव इतना विराट था कि ज्ञात होता है कि किसी काले मेघ मण्डल में विद्युत की प्रभा सारे आकाश और क्षण मात्र में प्रखर प्रकाश से परिपूर्ण हो रही है। --- शस्त्र और शास्त्र से ही जीवन में विजय प्राप्त की जा सकती है, इसका स्पष्ट प्रमाण सम्राट चन्द्रगुप्त का ऐतिहासिक व्यक्तित्व है जो आचार्य चाणक्य की बुद्धि की विचक्षणता और अन्तर्दृष्टि से ही विकसित हुआ।" [1]

नाटक की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें चाणक्य की समाजनीति के अन्तर्संघर्षों का प्रस्तुतीकरण है। चाणक्य ने अपनी राजनीति में गुप्तचरों की जो प्रबल संस्था संगठित की थी, उससे शत्रु की कोई अभिसन्धि

---

1. अग्निशिखा - रामकुमार वर्मा - वस्तु संकेत - पृ. 5

सफल नहीं हो सकती थी, किन्तु वे गुप्तचर समाज के प्रत्येक स्तर की गतिविधि की सूचना चाणक्य को देते रहते थे। ये सूचनाएँ पाकर वे समाज के प्रत्येक क्षेत्र को व्यवस्थित करते थे और मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश रखते थे। हिमांशु के शब्दों में -- " हमारे आचार्य वास्तव में महामात्य हैं। इनका अधिकार अपनी बाहुओं में समेटकर भी वे सामान्य नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करते हैं और प्रजा के कल्याण की बात सोचते रहते हैं। उन्होंने अर्थ शास्त्र का निर्माण किया जिससे समाज व्यवस्थित हो। समाज तो राजनीति का ही अंग है। " [1]

डा० वर्मा वस्तुतः ऐतिहासिक नाटककार हैं - स्वाधीनता के बाद लिखित इनके ऐतिहासिक नाटक जहाँ किसी प्राचीन भारतीय विचार या चरित्र को लेकर समाधान या आदर्श के रूप में उपस्थित करते हैं वहाँ गहरे अंत-र्द्वन्द्व, अलगाव, और भटकाव में से सत्य को तलाशते हैं। कोई बना-बनाया सा समाधान वे प्रस्तुत नहीं करते, वरन् प्रश्न देते हैं। अपने समय की प्रबल आकांक्षाओं को व्यक्त करने का गहरी शंकाओं या चुनौतियों से जूझने का सर्जनात्मक प्रयास इनमें स्पष्ट परिलक्षित होता है।

कोणार्क : जगदीशचन्द्र माथुर

माथुर की इस उत्कृष्ट नाट्यकृति में, उड़ीसा में तेरहवीं शताब्दी में स्थित कोणार्क के प्रसिद्ध सूर्य मंदिर के निर्माण एवं विध्वंस और प्रमुख शिल्पि विशु के अन्तर्द्वन्द्वों का अंकन हुआ है। उत्कलेश्वर नरसिंह देव का महामात्य, मंदिर के निर्माण की देखरेख करता है। वे शिल्पियों के प्रति बड़े क्रूर हैं। शिल्पियों को धमकी दी जाती है कि यदि वे एक सप्ताह के

---

1 अग्निशिखा- प्रथम अंक - पृ० 23 - पहला संस्करण 1971

भीतर मंदिर के निर्माण की पूर्ति न करेंगे तो उनके हाथ कटे जाएँगे। धर्मपद नामक शिल्पी विशु की सहायता के लिए आता है। धर्मपद की माँ चन्द्रकला को विशु उसकी गर्भावस्था में छोड़कर चला गया था। बीस वर्ष के बाद पिता और पुत्र दोनों का समागम होता है। महामात्य राजराज और नरेश में घोर संघर्ष होता है। धर्मपद और विशु राजा के पक्ष में युद्ध करते हैं। धर्मपद बुरी तरह आहत हो जाता है। धर्मपद के आहत होने पर रहस्य खुल जाता है कि वह विशु का बेटा है। जब राजा सेना लेकर मंदिर में प्रवेश करता है, तब प्रतिशोध की भावना से विशु मंदिर को स्वयं तोड़ गिराकर उसका विध्वंस कर महामात्य से बदला लेता है।

कोणार्क में कलाकार के शाश्वत अन्तर्द्वन्द्व को सामाजिक दायित्व बोध से मुक्त कर प्रस्तुत किया गया है। सौंदर्य सृजन के सम्मोहन में भूले हुए कलाकार का जीवन संघर्ष और सत्ता के अत्याचारों के प्रति सजग करना अपनी कलासृष्टि को पराजय का प्रतीक न बनने देने की उसे प्रेरणा देना और चरम प्रतिकार के लिए सन्नद्ध करना ही नाटककार का उद्देश्य है, जिसकी पूर्ति उसने अल्प मात्रा में ही इतिहास का सहारा लेकर कोणार्क बनने और टूटने के अपने कल्पित क्रम के माध्यम से इस अद्भुत सुघरी सुघर संतुलित कृति द्वारा की है। " 1

प्रौढ़ सहनशील विशु एवं क्रान्तिकारी धर्मपद के माध्यम से माथुर जी प्राचीन एवं नवीन युग को एक साथ साकार किया है। धर्मपद में कला साधना के साथ जनतांत्रिक भावना भी प्रकट हुई है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं -- "नाटक में स्वतंत्र भारत की दो पीढ़ियों की कथा अभिव्यक्त होती है। महाशिल्पी विशु पिछली पीढ़ी का चरित्र है जो शासन में सामान्य

---

1. आलोचना - अप्रैल 1968 - पृ. 63 - विष्णुकान्त शास्त्री का लेख

जन का हस्तक्षेप उचित नहीं मानता । लेकिन धर्मपद युवा पीढ़ी का प्रतीक है। जो राष्ट्र और समाज में जन महत्व का पक्षधर है। " [1]

नाटक की सर्वांगसुंदरता से प्रभावित होकर कविवर सुमित्रानंदन पंत अपनी राय प्रकट करते है -- "विषय निर्वाचन, कथावस्तु, क्रम विकास संवादध्वनि आदि सभी दृष्टियों से 'कोणार्क' अद्भुत सुघरी संतुलित कलाकृति है। छोटे छोटे तीन अंकों के भीतर एक विराट युग के जीवन का स्पन्दन-कम्पन सागर में गागर की तरह झलक उठता है। " [2]

<u>शारदीया:</u>

उन्नीसवीं शताब्दी के मराठी इतिहास के आधार पर नाटक की रचना हुई है। वायजा बाई और नारसिंह की प्रेम कथा ही नाटक का केंद्र-बिन्दु है। वायजाबाई विवाह करने को पैसा कमाने के लक्ष्य में घर से निकल जाता है तथा कपडे बुनने का हुनर सीखता है। ग्वालियर के दौलतराव सिंधिया से वायजाबाई का विवाह होता है। सर्जेराव के षडयन्त्र से दौलतराव सिंधिया द्वारा नारसिंहराव को बन्दी बनाकर आजन्म कारावास की सजा दी जाती है, अंधेरी कोठरी में रहकर नारसिंहराव अपनी प्रेयसी के लिए महीन से महीन पंचतोल साड़ी बुनता है। अन्त में उसकी प्रेयसी उसे कारागार से मुक्त होने का आदेश लेकर आती है, किन्तु नारसिंहराव कारागार में रहना पसन्द करता है। अपनी प्रेयसी के चरणों में वह साड़ी अर्पित करता है।

'शारदीया' नाटक हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या पर

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृ.285, पहला संस्करण - 1973
2. कोणार्क - प्राक्कथन - पंत - पंचम संस्करण - संवत् 2016

प्रकाश डालता है। और राज्यव्यवस्था में असंतुलन तथा षडयन्त्रों का चित्र प्रस्तुत करता है।" [1]

आषाढ़ का एक दिन :

कालिदास के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को लेकर मोहन राकेश ने नाटक की रचना की है।

कालिदास के हृदयमंदिर की प्रेरणादेवी मल्लिका के भावात्मक स्वरूप को वे प्रस्तुत करते हैं। वह अपने को बलि देकर अपने प्रेमी को महान होते देखना चाहती है। कालिदास उज्जैन जाने का मनोवैज्ञानिक कारण देता है - "मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण में आकर मैं कैसा अनुभव करूँगा। मन में कहीं यह आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और वह मेरे जीवन की दिशा बदल देगा। अन्त में मल्लिका के दबाव में कालिदास राजकवि का पद स्वीकार करता है और उज्जैन जाता है। कालिदास के जाने के बाद मल्लिका, उसे अपने मन में प्रतिष्ठित करके, दिन रात काटती है। वह व्यापारियों से कहकर कालिदास के ग्रंथ मँगवाकर अपने पास रखती है। समय बीत जाने पर कालिदास प्रियंगु मंजरी का पति बन जाता है। एक बार कश्मीर जाते समय गाँव से निकलते हुए भी कालिदास (अपने मन की अस्थिरता के कारण सही) मल्लिका से मिलने भी नहीं आ सका। वर्षों बाद आषाढ़ के एक दिन कालिदास और मल्लिका का पुनः मिलन होता है जब कि मल्लिका एक माँ बनी हुई थी। भग्न हृदय के साथ कालिदास लौट जाता है।

नाटककार ने नायक का चरित्र युग के रचनाकार के

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृ॰ 285

प्रतीक रूप में लिया है। लेखक का कथन है - "नाटक में वह प्रतीक उस अन्तर्द्वन्द्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आन्दोलित करता है। -- हर काल में बहुतों को उसमें से गुजरना पड़ता है। हम भी आज उसमें से गुजर रहे हैं।"[1]

इस नाटक का नाटकीय संघर्ष कला और प्रेम सर्जनशील व्यक्ति और परिवेश, भावना और कर्म, कलाकार और राज्य, आदि कई स्तरों में चित्रित किया गया है। नाटककार ने दिखाया है कि प्रेम कलाकार की आन्तरिक क्षमता का विकास करता है। और राजाश्रय से उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। किन्तु अपने आधार से कटकर राज्याधिकार ग्रहण करने पर कलाकार भीतर भीतर टूटता और रीता होता जाता है। मल्लिका और कालिदास दोनों पात्र एक स्तर पर टूटने का एहसास करते हैं।"[2]

नाट्यरूप की दृष्टि से यह नाटक सुगठित है। साथ ही यथार्थवादी भी है। इसमें परिस्थिति को काव्य से अभिव्यक्ति देने का प्रयास है। इस दृष्टि से यह हिन्दी का पहला यथार्थवादी नाटक है जो बाह्य और आन्तरिक यथार्थ को देखता और प्रस्तुत करता है।"[3]

<u>लहरों का राजहंस</u> :

राकेश ने ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक जीवन के कुछ ज्वलन्त प्रश्नों को उठाया है जिसमें पुरुष और नारी परस्पर संबंधों का प्रश्न

- -

1. लहरों का राजहंस - मोहन राकेश - भूमिका से उद्धृत - पृ. 8 : 1963
2. प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य - डॉ. विजय बापट - पृ.85 : प्रथम सं. 1972
3. आलोचना - जुलाई-सितंबर 1967 - पृ.67: नेमिचन्द्र जैन का लेख

अधिक महत्वपूर्ण है।

कवि अश्वघोष का प्रसिद्ध काव्य सौन्दरानंद के आधार पर इस नाटक में कपिलवस्तु के राजकुमार नंद के बौद्ध भिक्षु बनने तथा उसकी रूप गर्विता पत्नी सुंदरी की कथा है। दोनों के मन में संचरित अन्तर्द्वंद्व का चित्रण ही नाटक का मुख्य लक्ष्य है। नंद का मन एक ओर पत्नी के सौन्दर्य के नशे में मस्त है, दूसरी ओर बुद्ध के जीवन दर्शन के प्रति आकृष्ट है। डा॰ विजय बापट के शब्दों में "लहरों के राजहंस' नाटक में प्रवृत्ति और निवृत्ति' या पार्थिव एवं अपार्थिव मूल्यों के प्रति आकृष्ट आधुनिक मनुष्य के अन्तर्द्वंद्व का चित्रण है।" 1

नन्द की पत्नी अत्यन्त रूपगर्विता है, अतः उसका पहला विश्वास था कि उसका पति उसके सौन्दर्य पाश से मुक्त होकर बौद्ध भिक्षु न बन सकता। उसका विश्वास तब टूटता है जब कि उसकी दृष्टि नंद के केश कटे मुख पर पडती है। उसके पति को मुंडित केश में उसके सामने खडा करके राकेश ने रूपगर्विता सुंदरी के अहं को एक ऊंची चोटी से गहरी खाई में धकेल दिया।" 2

डा॰लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते है - "बुद्ध दर्शन की अवहेलना, आध्यात्मिक मूल्यों के उपहास, समाज की उपेक्षा, केवल कामना और स्वार्थपूर्ति के प्रयास में युवा पीढी की मनस्थिति का सफल चित्रण हुआ है।नियति का आतंक, संत्रास तथा धर्महीन चिन्तनशून्यता के द्वारा वर्तमान को सचेत करना। इन नाटकों की दूसरी प्रवृत्ति है जन संघटन में बल देना। "नाटकों के नायकों को सच्चे अर्थ में जनता का सेवक सिद्ध किया गया है। राजकुमार होते हुए भी उन्हें ऐसी परिस्थितियों में ढाला गया है कि वे जनता के सेवक के रूप में

---

1. प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य - डा॰ विजय बापट पृ॰96, प्रथम सं॰1971
2. लहरों का राजहंस - मोहन राकेश

निर्मित हो सकें । 'उद्धार' के हम्मीर, कीर्तिस्तम्भ के सैग्रामसिंह, 'शपथ' और समाधि' के जनेन्द्र ऐसे ही नायक है ।" [1]

प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटककारों ने इतिहास के लिए इतिहास को न चुनकर समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति के लिए अतीत की स्थितियों का चयन किया है। हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि नाटककारों ने इतिहास के माध्यम से समसामयिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। बुद्धिजीवि वर्ग की तटस्थ क्रियाहीन चिन्तन की मनस्थिति को भी लेखक ने अंकित किया है। [2]

<u>प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ :</u>

प्रसादोत्तर [illegible] ऐतिहासिक नाटकों का दो धाराएँ मिलती है । स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व की और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की। स्वतंत्रता पूर्व रचित ऐतिहासिक राष्ट्रीय नाटक देश में राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध करने में बहुत सफल हुए। स्वतन्त्रता के बाद नई समस्याएँ उत्पन्न हुई और इनके प्रकाश में ऐतिहासिक नाटकों ने नया रूप धारण किया। इन नाटकों का प्रमुख लक्ष्य था जनता में स्वराष्ट्रप्रेम की भावना भरना तथा देश को पतन के गर्त में ढकेलनेवाले उपकरणों के प्रति उन्हें सावधान करना। नाटक में इतिहास प्रयोग के संबंध में उदयशंकर भट्ट की स्पष्ट धारणा है कि "किसी इतिहास में कल के साधनों का पूर्व रूपों का वस्तुत विवेचन नहीं होता। नाटककार को वस्तु का आधार लेकर कल्पना की कूँची से नाटक रूपी चित्र में उत्थान और पतन के रंग भरने पडते है । ऐसा ही मैं ने भी किया है। " [3]

---

1. हिन्दी नाटक - बच्चनसिंह - पृ. 117 - द्वितीय संस्करण - 1967
2. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - 286
3. दाहर अथवा सिन्ध पतन - उदयशंकर भट्ट - भूमिका

प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिकता के साथ साथ सांस्कृतिक दृष्टिकोण की भी प्रमुखता रहती है। नाटककारों ने अतीत के उन कालों की सामग्री का उपयोग तत्कालीन भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों में प्रदर्शित करने में किया है। उन सब युगों में मानव सभ्यताएँ एक दूसरे से टकराई थीं और उन संघर्षों के फलस्वरूप कई सभ्यताएँ विनष्ट भी हुईं, किन्तु उनकी मूलवर्तिनी धारा अप्रतिहत गति से प्रवाहमान होती रही। नाटककारों ने इन्हीं चिरन्तन सत्यों को पात्रों के क्रियाकलापों द्वारा प्रतिपादित एवं पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न किया है। इन रचनाओं के सांस्कृतिक चरित्र भारतीय संस्कृति का सच्चा स्वरूप-समन्वित पक्ष उपस्थित करते हैं, जो महान एवं अनुकरणीय है। [1]

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट है कि हिन्दी ऐतिहासिक नाटक साहित्य ने अन्य हिन्दी नाटक प्रकारों की भाँति विकास के अनेक सोपानों को पार करता हुआ अब भी निरन्तर विकास की ओर गतिशील है।" [2] नाटकों के विकास के तृतीय काल - प्रसादोत्तर युग तो एक प्रकार से ऐतिहासिक नाटक साहित्य का चरमोत्कर्ष काल कहा जा सकता है। इस युग के ऐतिहासिक नाटककारों ने न केवल अतीत को यथार्थ रूप में निरूपित करने का प्रयत्न किया, वरन् ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की गतिविधियों के अंकन द्वारा अतीत जीवन की व्याख्या और विश्लेषण भी प्रस्तुत किया और मानवीय शाश्वत सत्यों को कलात्मक ढंग से हमारे सम्मुख उपस्थित किया है।

=x=x=x=x=x=x=x=x=x=

---

1. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - शान्ति मलिक : पृ.203
2. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा. धनंजय, पृ.144

तृ ती य अ ध्या य

हरिकृष्ण प्रेमी - जीवन रेखा, व्यक्तित्व और कृतित्व

तृतीय अध्याय

हरिकृष्ण प्रेमी - जीवन रेखा, व्यक्तित्व और विकास

जीवन परिचय

स्वर्गीय हरिकृष्ण प्रेमी का जन्म सत्ताईस अक्तूबर उन्नीस सौ आठ (सन् 1908, विक्रम संवत् 1995) को ग्वालियर के अन्तर्गत गुना नामक कस्बे में हुआ था। उनके पिता का नाम था बालमुकुन्द विजयवर्गीय। जब प्रेमी दो साल का था तब उनकी माता का देहान्त हो गया। मातृप्रेम क्या है, कैसा है, यह जानने का सौभाग्य विधाता ने उन्हें नहीं दिया। मातृस्नेह से वंचित उस बालक का पालन पोषण दुख और अभावों की गोद में हुआ। जीवन की उषा-वेला में उन्हें कष्ट के अनेक दौरों से गुजरना पड़ा। उन्होंने अपनी पीड़ा मौन रूप से पी ली।

"वास्तव में विषम परिस्थितियाँ ही व्यक्तित्व का विकास करती हैं।"[1] प्रेमी के व्यक्तित्व का विकास भी विपरीतताओं एवं विषमताओं के सम्मिलन से होकर आरंभ हुआ। बचपन के प्रेम के अभाव ने प्रेमी को प्रेमपथ राही बनाया। प्रेमी ने 'अनन्त के पथ' कविता-संग्रह की भूमिका में इस पर प्रकाश डाला है - "उस समय मैं दो साल का था जब मेरी जननी मुझे इस पृथ्वी पर पटककर न जाने किस दुनिया में चली गयी। ज्यों ज्यों मैं बड़ा होता

---

1. It is the hard environment that develops personality", Sir Wilfred Thomason Grenfell (International Dictionary of Thoughts, Compiled by John P. Bradley, Leo F. Daniels, Thomas C. Jones, p.554.

चला, होश सँभालता गया, मेरे हृदय में इस प्रकार की आकांक्षा तीव्र होती गयी कि कोई मुझे खूब प्यार करे। मेरी इस प्यास को कोई शान्त न कर सका। - - अनेक निराश क्षणों में मैं ने अपने आपको किसी अदृश्य शक्ति के चरणों में समर्पित किया है। और उससे मुझे बल प्राप्त हुआ है। वह है या नहीं यह तो मैं नहीं जानता। यदि वह नहीं है तो भी मैं उस'नहीं' को आकार देना चाहता हूँ। मेरी माँ मुझे दो वर्ष का छोड़कर चली गई थी - तब से आज तक शायद 27 से अधिक वर्ष बीत गये - मैं तो आज तक यही अनुभव करता हूँ कि मैं वही दो वर्ष का शिशु हूँ। मुझे इस कल्पना से सुख मिलता है कि कोई 'अदृश्य' मुझे अपनी गोद में लिए बैठा है। उस समय मुझे माँ का दूध चाहिए था - इस समय भगवान का प्रेम। वह मुझमें बैठकर या चारों ओर व्याप्त होकर माँ के दूध की तरह अपना प्रेम पिला रहा है, मेरी यह धारणा चाहे सच हो चाहे गलत, मुझे जीवित रहने का बल देती है। [1]

प्रेमी की स्कूली शिक्षा नगर के शिक्षालयों में संपन्न हुई थी। उनका मन पढाई में न लगता था। अध्यापक कक्षा में सूर, तुलसी, कबीर आदि की कविता पढाते तो प्रेमीजी उनके भावार्थों के स्थान पर कक्षा को अपनी ही कविता सुनाते थे।

बडे होते होते पिता से उनकी पटी नहीं। पिता की सुधारपरस्ती से उनका मेल न मिलता था। प्रेमी के पिता परम राष्ट्र भक्त थे। यह कहना असंगत न होगा कि प्रेमी को देशप्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना विरासत में प्राप्त हुई थी। उनके बडे भाई गोपीकृष्ण विजयवर्गीय की संगति से उनकी राष्ट्रीय भावना और भी तीव्र बन गई। बचपन से ही राष्ट्रीयता के संस्कार होने के कारण प्रेमी ने स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लिया था। कई बार उनको जेल भी जाना

---

1. अनन्त के पथ पर - भूमिका

पड़ा, उनकी प्रथमिक रचना स्वर्गविहान (पद्यनाटिका) सरकार की कोपदृष्टि का भाजन बनी थी, सरकार ने उस पुस्तक का गला घोंट दिया था। प्रेमीजी पहले-पहल सन् 1930 में जेल गये। 1931 में जेल से मुक्ति प्राप्त हुई थी।

पत्रकार के रूप में

प्रेमी ने अजमीर में 'त्यागभूमि' पत्र के संपादकीय विभाग में काम किया था। विदेशी शासन द्वारा वह पत्रिका रोक दी गई थी। सस्ता साहित्य मंडल और उसके प्रेस पर जहाँ से पत्रिका प्रकाशित होती थी, शासन ने ताला डाल दिया था। प्रेमी चिन्तित हुए कि अपने साहित्यिक जीवन को जीवित रखते हुए अपने लिए दाना पानी कैसे जुटाऊँ। उनके साथ उनकी पत्नी थी, एक बच्ची थी। उसी समय उन्हें अचानक पंडित माखलाल चतुर्वेदी का पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि वे खण्डवा पहुँचकर 'कर्मवीर' के सम्पादन में सहयोग दें। चतुर्वेदी जी से प्रेमी की कोई पूर्व परिचय नहीं था। वे समझ नहीं पा रहे थे कि उन्हें बिना प्रार्थना पत्र भेजे यह नौकरी कैसे प्राप्त हो गई।

माखनलाल चतुर्वेदी से भेंट

प्रेमी अपने छोटे से परिवार के साथ खण्डवा जा पहुँचे। चतुर्वेदी से हुई मुलाकात का विवरण प्रेमी यों प्रस्तुत करते हैं -- "छेर चतुर्वेदी ने हाथ पकड़कर पलंग पर अपने पास ही बैठा लिया। चतुर्वेदी जी बोले,- 'तुम आ गए, मेरे मन की साध पूरी हो गई। मैं लंबे अरसे से तुम्हें अपने पास बुलाना चाहता था। ' मैं ने साश्चर्य पूछा — 'क्यों?' उत्तर मिला, " तुम नहीं जानते कि इसका कारण है तुम्हारी पुस्तक 'आँखों में '।" मैं इन्दौर गया था। वहाँ सर सेठ हुकुमचन्द के शीशमहल में ठहरा था। रात को नौ बजे के लगभग जब मैं बिस्तर पर आराम कर रहा था और सो ही जाना चाहता था कि दो लड़के लाड़ली प्रसाद सेठी और ईश्वरचन्द्र जैन जो नये कवि बन रहे थे

आ धमके और बोले — दादा आज आपको एक नये कवि की कविता पुस्तक में से कुछ सुनाएँगे। मैं ने कहा, " अभी तो मैं आराम करना चाहता हूँ।" वे बोले 'आप सुनें, चाहे न सुनें हम तो पढ़ेंगे।' और लाडली प्रसाद ने तुम्हारी 'आँखों में' पुस्तक में से चार छः पंक्तियाँ पढ़ीं और वह चुप हो गया। मैं बिस्तर से उठा और बोला, चुप क्यों हो गये? पढ़ो पढ़ो। - - एक बैठक में तुम्हारी पूरी पुस्तक सुन डाली। मैं ने उन लड़कों से कहा - "मैं इस लड़के को अपने पास बुलाऊँगा सो देख लो मैं ने तुम्हें बुला लिया। मैं ने तुम्हारी अन्य रचनाएँ नहीं पढ़ीं । सिर्फ यही पढ़ी है। तुम्हारी अनुभूति गहन है और अभिव्यक्ति सरल और स्वाभाविक है। तुम्हारी बात दिल से निकलती है अ और दिल में प्रवेश करती है। हम लोग कविता के प्रत्येक चरण को चमत्कारपूर्ण बनाने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन तुम्हारा चमत्कार यह है कि तुम कोई चमत्कार पैदा करने का यत्न नहीं करते। कविता तुम्हारे अन्तः करण से झरने के समान प्रस्फुटित होती है। तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारी पुस्तक का सबसे बड़ा ग्राहक हूँ। अब तक मैं 'आँखों में' की लगभग सौ प्रतियाँ खरीद चुका हूँ। जो भी नया कवि मेरे पास प्रोत्साहन पाने या मार्गदर्शन के लिए आता है, उसे मैं तुम्हारी पुस्तक भेंट करता हूँ। "।

कर्मवीर का संपादक

प्रेमी निर्द्वन्द्व होकर लिखते थे। 'कर्मवीर' के सम्पादन का कार्य करते एक बार उन्होंने 'सम्राट के मित्र' नामक शीर्षक का एक अग्रलेख लिखा जिसमें व्यंग्यात्मक शैली में भारत के नरेशों से यही आह्वान किया था कि अंग्रेजों को भारत से बाहर करने में नरेशों को कदम उठाना चाहिए ।

1· माखनलाल चतुर्वेदी - यात्रापुरुष - पृ॰140-141 • सं॰श्रीकान्त जोशी : प्रथम सं॰1969
(लेख - वह मेरी माँ है - हरिकृष्ण प्रेमी)

प्रेमी ने यह अग्रलेख विशेषकर इसलिए लिखा कि उस समय इंदौर में महाराजा तुकोजीराव को अंग्रेजों ने गद्दी से उतारा था। लेख देखकर चतुर्वेदी ने कहा -- "लेख किसी क्रान्तिकारी के हस्ताक्षरों से प्रकाशित करके बंटवाने योग्य है।"[1]

प्रेमी के जीवन में ऐसे अनेक क्षण आये है जब साथियों ने उसे भरपूर बदनाम करने का यत्न किया था। लेकिन प्रेमी ने चतुर्वेदी से जो मंत्र पाया उसीका पालन करके उन साथियों को बातों का वे उत्तर देना न चाहते थे।

प्रेमी की भाषण कला :-

बचपन से ही प्रेमी के मन में भाषणकला के प्रति अभिरुचि थी। राजनैतिक मंचों पर जाकर जोरदार भाषण देना उन्हें बहुत प्रिय था। प्रेमी ने एक बार अपने ओजस्वी भाषण से चतुर्वेदी की लाज रखी। चतुर्वेदीजी के विरोधी दल ने षडयन्त्र किया कि उन्हें गांधीजी के स्वागत कार्यक्रम में भाग लेने का अवसर ही न हो। विरोधी दलों के अध्यक्ष के समक्ष चतुर्वेदी के प्रशंसकों ने प्रस्ताव रखा कि नई स्वागत समिति बनानी है। कुशल प्रेमी ने सभापति से प्रस्ताव पर एक बहुत संक्षिप्त संशोधन पेश करने की अनुमति ले ली। उन्होंने मंच पर जाकर कहा-" मेरा बहुत संक्षिप्त संशोधन है। प्रस्ताव में केवल एक अक्षर बढाने का। मूल प्रस्ताव है कि जो स्वागत समिति बनाई गई है उसे खण्डवा की जनता स्वीकार करती है। मेरा संशोधन है कि स्वीकार शब्द के पहले 'अ' अक्षर बढा दिया जाए।"[2] अन्त में बहुत वाद विवाद के बाद सभापति को राजी होना पडा। प्रेमी का भाषण इतना प्रभावशाली था कि विरोधियों के भाषण उसके आगे फीके पड गये।

---

1. माखनलाल चतुर्वेदी - यात्रा पुरुष - पृ. 142
2. माखनलाल चतुर्वेदी - यात्रापुरुष - पृ. 144 से उद्धृत

चतुर्वेदी से विदा :

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के आदेश के अनुसार प्रेमी को खण्डवा छोडकर लाहौर में 'भारती' मासिक पत्रिका का कार्य संभलने के लिए जाना पडा। क्यों कि मिलिन्द के बीमार पडने पर सारे काम में विघ्न आया था। बडी वेदना के साथ प्रेमी को चतुर्वेदी से बिदा लेना पडा। प्रेमी के लिए चतुर्वेदी माँ था।"[1] उनके व्यक्तित्व को स्थापित करने में चतुर्वेदी जी का विशेष हाथ रहा था। प्रेमी ने स्पष्ट किया है - "ये मेरे इतने निकट रहे है या मैं इनके इतने निकट रहा हूँ कि एक दूसरे को परखने और आँकने के लिए जो दूरी चाहिए वह दूर हो गई। इनके वटवृक्ष के समान व्यक्तित्व की शीतल छाया में रहकर चहचहाने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ।"[2]

भारती पत्रिका के संपादक के रूप में

भारती पत्रिका के संपादक के रूप में प्रेमी ने प्रशंसनीय कार्य किया। इस पत्र ने काफी ख्याति पायी थी। भारत के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य और काका कालेलकर प्रभृति विद्वान इसके स्थायी लेखक थे। सभी प्रान्तीय भाषाओं के लेखकों की रचनाएँ इसमें स्थान पाती थीं। प्रेमी ने लाहौर में सामयिक साहित्य सदन नाम से एक प्रकाशन संस्था चलायी। चोटी के लेखक श्री इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्रकुमार जैन, आदि की पुस्तकें यहाँ से छपीं। बंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री ताराशंकर बंद्योपाध्याय की रचनाओं का पहले पहल हिन्दी में प्रेमी ने ही प्रकाशन किया।

फिल्म एवं आकाशवाणी में

भारती पत्रिका का प्रकाशन करने के पश्चात् उन्होंने आकाश-

---

1. माखनलाल चतुर्वेदी - यात्रा पुरुष - पृ. 147

2. आपके लोकप्रिय हिन्दी कवि: माखनलाल चतुर्वेदी- परिचय-हरिकृष्ण प्रेमी-पृ.5 प्रथम सं: 1960

वाणी में दिग्दर्शक के पद पर कार्य किया। आकाशवाणी जालन्धर में हिन्दी निदर्शक के रूप में तीन साल रहे।

उसके पश्चात् प्रेमी ने फिल्म क्षेत्र में पदार्पण किया। फिल्मों के लिए कथानक, संवाद और गीत लेखक के रूप में आपने कार्य किया। लाहौर में पंचोली आर्ट पिक्चर्स के साहित्य विभाग के मुख्य अधिकारी के रूप में आपने कार्य किया था, बंबई में प्रथम आदर्श पिक्चर्स के लिए 'बिखरे मोती' नामक फिल्म का निर्माण किया। 'कलाकार चित्र' के नाम स्वयं अपनी फिल्म कंपनी स्थापित करके 'प्रीत का गीत' नामक फिल्म का निर्माण किया। प्रसिद्ध निर्देशक मोहन सिन्हा ने उनके नाटक 'रक्षाबंधन' के आधार पर उनकी ही देखरेख में 'चित्तौडविजय' फिल्म बनायी थी। सन् 1950 तक वे फिल्म व्यवसाय में लगे रहे।

प्रेमी के नाटकों की प्रेरणाभूमि

प्रेमी का रचनाकाल हमारे राष्ट्रीय जीवन का महत्वपूर्ण युग था जिसमें सदियों की दासता एवं परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा भारत अहिंसापूर्ण मार्ग से स्वतंत्रता प्राप्त करने के प्रयत्न कर रहा था। विदेशी सरकार की क्रूरता का शिकार बनी हुई जनता गांधीजी के नेतृत्व में अपने अधिकारों के लिए लड रही थी। भारतीय जनता की राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना बडी व्यापक और शक्तिशाली हो उठी थी। जातिभेद, धर्मभेद, छुआछूत, हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य, शोषित वर्ग की दुरवस्था जैसी अनेक ज्वलन्त समस्याएँ मुँह बाये जनता को निगलने के लिए आगे बढ रही थी। प्रेमी की सच्ची देशभक्ति जाग उठी। पराधीनता के जाल में फँसी हुई मातृभूमि की रक्षा करना प्रेमी ने अपना जनता में राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए यह अनिवार्य था कि उन्हें अपने देश के गौरवमय अतीत का स्मरण दिलायें तथा वर्तमान पतनोन्मुखी अवस्था से उसकी

तुलना करें । ऐतिहासिक कथानाकों के द्वारा ही यह कार्य संपन्न हो सकता था। प्रेमी ने अपने दायित्व की पूर्ति के लिए ऐसी रचनाओं की सृष्टि की जो प्राचीन उन्नति के दर्पण में वर्तमान अवनति का प्रतिबिंब अवलोकित कराकर भविष्य के लिए प्रोत्साहन प्रदान कर सके। उनकी राय में प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। 'कीर्ति स्तम्भ' की भूमिका में प्रेमी ने स्पष्ट किया है -- "मैं ने बार बार यह दर्पण देशवासियों के सम्मुख रखा है ताकि हम अपने देश के अतीत को देखकर व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन से उन दुर्बलताओं को दूर करें जिन्होंने हमें पराधीनता के पाश में बांधा, उन गुणों को ग्रहण करें, जिन्होंने हमें अभी तक जीवित रखा और स्वतंत्र किया और उन गुणों का विकास करें जिनकी राष्ट्र के नवनिर्माण में अपेक्षा है।" [1]

प्रेमी ने अपने नाटकों के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम एकता का सन्देश देने का भरसक प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने नाटकों के लिए इतिहास के उसी काल को चुना जिसमें उनकी कल्पनाएँ एवं भावनाएँ रम सकें, तथा उनके सिद्धान्त-स्थापना के लिए सूत्रों की बहुलता है। 'शिवासाधना' की भूमिका में स्पष्ट किया गया है- "पंजाब में ज्ञानज्योति और कर्म का शंख फूंकनेवाली बहन कुमारी लज्जावती ने एक बार मुझसे कहा था कि हमारे भारतीय साहित्य में हिन्दुओं और मुसलमानों को एक करनेवाली पुस्तकें तो बहुत कम रही है। उन्हें मिलाने का प्रयत्न तो बहुत थोड़े साहित्यकार कर रहे हैं । तुम्हें इस दिशा में प्रयत्न करना चाहिए। इसी लक्ष्य को सामने रखकर उन्होंने मुझे ऐतिहासिक नाटक लिखने का आदेश दिया।" [2]

गांधी विचारधारा का प्रभाव

प्रेमी के व्यक्तित्व एवं जीवनदर्शन का विकास जिस युग में

1· कीर्तिस्तम्भ - दर्पण - पृ· 7

2· शिवा साधना - अपनी बात - पृ· (क)

हुआ उसे राष्ट्रीय दृष्टि से हम 'गाँधी युग' भी कह सकते है । वे गाँधीजी के व्यक्तित्व एवं दर्शन से बहुत प्रभावित थे। गाँधीयुग की लगभग सभी समस्याओं का आलेखन प्रेमी-साहित्य में उपलब्ध है। प्रेमी जी ने गाँधीजी के आदर्श समाज निर्माण पर जोर दिया है तथा शोषण एवं अत्याचार के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई है। महात्मा गाँधी सामाजिक उन्नयन पर ज़ोर देते थे। प्रेमी के नाटकों में इसी एकता का संदेश गूँज रहा है। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील गाँधीजी के प्रयासों को प्रेमीजी ने मुस्लिम काल से ली गई ऐतिहासिक कथावस्तुओं में मूर्त किया है जिसका विस्तृत विवरण अगले अध्याय में प्रस्तुत किया जाएगा ।

प्रेमी अपनी नैतिक विचारधारा में भी गाँधीजी से अत्यधिक प्रभावित है। उनकी पत्येक रचना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी नैतिक आदर्श या राष्ट्रीय नवनिर्माण के लिए किसी नियम की प्रतिष्ठा करती है।

प्रेमी के नाटकों में गाँधीवादी सत्य एवं अहिंसा से सम्बंधित विचारधारा भी ध्वनित हो रही है। 'स्वप्न भंग' में उन्होंने प्रेम की शक्ति को तोप और तलवार की शक्ति से भी अधिक शक्तिशाली बताया है।" [1]

प्रेमी पर गाँधीवादी विचारधारा के सशक्त प्रभाव देखकर जयनाथ नलिन ने लिखा है - "ऐतिहासिक कथाओं में प्रेमी ने गाँधीवादी राष्ट्रीय आदर्श की प्राण-प्रतिष्ठा की है। गाँधीवाद का प्रभाव प्रायः उनके सभी नाटकों में स्पष्ट है। यही गाँधीवादी राष्ट्रीयता का आदर्श प्रेमी के नाटकों की प्रेरणा है। उसके युग और जीवन की अतुल सजगता उसकी प्रेरणा की पृष्ठभूमि है।" [2]

---

1. स्वप्नभंग - पृ.45
2. हिन्दी नाटककार - जयनाथ नलिन - पृ.115, द्वितीय सं.1961

साहित्य में आत्मा की खोज :-

इस बात का उल्लेख हो चुका है कि प्रेमी का वैयक्तिक जीवन अनेक विषम परिस्थितियों एवं संघर्षों से भरापूरा था। उन्हें जीवन में यातना, निराशा एवं आर्थिक संकट के आघात झेलने पड़े। माता की मृत्यु से बचपन से ही उनके हृदय में जो घाव था वह वर्षों के बीतते बीतते और गहरा हो गया, जब कि उनकी पुत्री भी यौवन के आरम्भ में उन्हें छोड़कर दुनिया से चली गई। अपने मित्रों-परिचितों की कूटनीति एवं छलना से उनका मन और भी व्यथित होता गया।

अपने निजी जीवन को गला जलाकर और तपा ढलाकर ही प्रेमी जी ने साहित्य की सृष्टि की। 'शिवासाधना' की भूमिका में आपने लिखा, -- "जो आज सुख शान्ति और वैभव का उपयोग कर रहे हैं वे स्वर्ग में रहते हैं और जो दुख, दरिद्रत्व और चिन्ताज्वाला में जल रहे हैं, नरक में निवास कर रहे हैं। स्वर्ग की बात मैं नहीं कह सकता। किन्तु जब अपनी वर्तमान परिस्थितियों को देखता हूँ तो ज्ञात होता है कि नरक यही है। वर्तमान परिस्थितियों भी मैं माँ हिन्दी के मंदिर में यह नवीन नाटक लेकर उपस्थित हो रहा हूँ - यह आश्चर्य की बात है। जिस स्थिति में दिमाग के पुर्जों को भी ठीक रखना भी असंभव है - मैं कैसे यह पुस्तक लिख सका, यह मेरे लिए आश्चर्य की बात है।" 1

जीवन की कठिनाइयों ने प्रेमी को आत्महत्या तक के संबंध में सोचने तक बाध्य किया था। जीवन का पल उन्हें भारी हो गया। एक बार उन्हें कहना पड़ा - "मेरे इस छोटे से जीवनकाल में कई बार ऐसे क्षण

---

1. शिवा साधना - भूमिका - आठवाँ संस्करण

आये हैं जब मुझे अपना अस्तित्व असह्य ज्ञात हुआ। जब मैं उसे [illegible] भूल जाता हूँ तो मुझे अपना भार सँभालना असंभव हो जाता है और अपने ही हाथ से अपना गला घोंट देने की इच्छा होती है। "[1]

प्रेमी ने जीवन की जलती चट्टान पर बैठकर समाज की उपेक्षा की लपटों में खेलते हुए अभावों का विष भी पिया है - बेबसी की वेदना का गरल भी वह पचा गया है और प्यार की मदिरा भी उसने पी है - ममता के पालने में भी वह झूलता रहा है। इन्हीं विपरीतताओं और विषमताओं के सम्मिलन से ही 'प्रेमी' के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। गरल पीकर भी वह और भी अमर हुआ। अभावों ने उसे और शक्तिशाली बनाया। "[2]

प्रेमी ने बड़ी कठिनाइयों से गुजरते हुए भी अपनी लेखनी चलाना बंद नहीं किया। उनकी वीणा विपत्तिकाल में भी मौन न थी। प्रेमी के शब्दों में कितनी दृढ़ता है — "फँस जाती है मेरी नैया भँवर में, बहुत कठिन होता जीवन की नैया को भँवर से बाहर निकालना - तब तक रुक जाती है कलम की गति। लेकिन हार मान बैठना मेरे स्वभाव में नहीं है। "[3]

[illegible] वेदनाभार से युक्त विषमताओं से समन्वित उनके [illegible] व्यक्तित्व का प्रभाव, उनके नाटकों में स्पष्ट रूप में व्यंजित है। सामाजिक नाटक 'छाया' में चित्रित कवि प्रकाश का वेदनापूर्ण जीवन प्रेमी जी के निजी जीवन का रूपान्तर है।

- -

1. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व और कृतित्व-शिवप्रकाश दीक्षित 'बटुक' पृ.214, प्रथम सं. 1960

2. हिन्दी नाटककार : जयनाथ नलिन, पृ.113

3. आन का मान - प्रवेश

कवि प्रकाश के पास विश्व को देने के लिए साहित्य अमूल्य संपत्ति है। विश्वसाहित्य को अमूल्य संपत्ति देनेवाला कवि अपनी पत्नी की इज्जत ढकने के लिए एक धोती भी खरीदने में समर्थ नहीं ; अपनी बच्ची को दूध पिलाने के का दाम भी नहीं पाता। "[1] नाटक की भूमिका में उन्होंने व्यक्त किया है - - " यह नाटक मेरे प्राणों को चीरकर अपने आप प्रकट हो गया। - - छाया में मेरे हृदय का ही एक अंश ही आ पाया। "[2] प्रेमी की व्यक्तिगत के कारण ही ' छाया' पर्याप्त मात्रा में तीव्रता आ गई है।

अपनी रचनाओं को अपने प्राणों का टुकड़ा माननेवाले प्रेमी के साहित्य को उनकी आत्मा की झंकार कहें तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी । 'बंधन' की भूमिका भी इसका प्रमाण है - - " मैं तो अपने प्राणों में से साहित्य की किरणें निकालता हूँ। मैं स्वयं अपने साहित्य का विषय हूँ। और संसार क्या है? यह भी मैं ही हूँ। संसार की अनुभूतियाँ मेरी ही हैं । मेरी अनुभूतियाँ संसार की। इसलिए अपनी तस्वीर खींचकर भी मैं संसार की और संसार की खींचकर अपनी खींचता हूँ। "[3] 'प्रकाशस्तम्भ ' की भूमिका में भी उन्होंने यही भावना व्यक्त की है - - "मेरे जीवन प्रकाश के अंधकार का कोट चीरकर 'प्रकाशस्तम्भ ' प्रकाशित हो उठा, इसे मैं अपने जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना मानता हूँ। ''[4]

प्रेमी के कृतित्व पर उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है ।

---

1. छाया - पहला अंक, चौथा दृश्य - पृ.13 : चतुर्थ सं. 1958
2. छाया - (प्रथम संस्करण की भूमिका) - चतुर्थ संस्करण से उद्धृत
3. बंधन - भूमिका - पृ.4 - पाँचवाँ सं. 1956
4. प्रकाशस्तम्भ - भूमिका

अनेक कलाकार एवं साहित्यकार अपनी रचनाओं में जिन सिद्धान्तों, आस्थाओं, मूल्यों और आदर्शों की प्रतिष्ठा करते है उन्हें स्वयं व्यावहारिक जीवन में पूर्णता के साथ संगत नहीं कर सकते। लेकिन प्रेमी इसका अपवाद है। इनके व्यक्तित्व और कृतित्व में ऐक्य और तादात्म्य अवश्य है। 'आन का मान' नाटक की भूमिका में प्रेमी ने संकेत किया है - - 'साहित्य सृजन भारत के साहित्यकारों के लिए कितनी कठिन साधना है, इसे केवल भुक्तभोगी ही जानते है। विशेष रूप से वे साहित्यकार जो केवल अपने साहित्य में ही विशेष प्रकार के आदर्शों का प्रतिपादन कर अपने कृतित्व की इतिश्री नहीं मान लेते, बल्कि उन्हें अपने जीवन में उतारने का यत्न करते है। उन्हें बडी कठिनाइयों से गुजरना पडता है। मेरा दुर्भाग्य रहा है कि जो आदर्श अथवा जो सपने अपने साहित्य में देता रहा हूं अपने जीवन को उनके अनुरूप बनाने का प्रयास भी करता हूं, फलतः मुझे संसार से लडना पडता है। "[1]

प्रेमी ने अपने नाटकों में, समाज के अछूत तथा शूद्र कहे जानेवाले अंग का उद्धार करके उन्हें मानवकोटि में बिठा देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। उनके वचन एवं कर्म में एकरूपता थी। उनका संस्मरण इसके लिए साक्षी है। "वह जाग जाएगी" नामक संस्मरण में उन्होंने लिखा है -'-मैं और मेरी पत्नी उस समय अपने परिवार एवं समाज से सर्वथा कट गए थे। मेरे भाई साहब श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय और मैं ने जातिवालों को चुनौती देकर भंगी के हाथ का भोजन खाया था। - कथनी और करनी की एकता प्रदर्शित करने के लिए - इस भयंकर अपराध के लिए हम जातिच्युत कर दिये गये। न हमारे पिताजी हमें अपने घर पर आने देने का साहस करते थे, न हमारी पत्नियों के माता-पिता। हमें बुलाने पर या आने देने पर उन्हें भी जाति से

- -

1. आन का मान - प्रवेश

बहिष्कृत होना पडता तब उनके बाल-बच्चों के विवाह कहाँ होते?" [1]

प्रेमी को अन्धविश्वास और रूढ़ियों की जड़ें उखाड़ फेंकने के लिए प्रवासों तक से संघर्ष करना पडा। वे जर्जर तथा अस्वस्थ परंपराओं के विरोधी थे। अतः पर्दा प्रथा का अन्त करना चाहते थे। पत्नी की पर्दा प्रथा छुडाने के लिए भी काफी समय तक संघर्ष चलता रहा। एक बार माता पिता का विरोध भी इसलिए मोल लेना पडा कि उन्होंने सास-ससुर द्वारा प्रताडित एवं तिरस्कृत एक बालिका को आश्रय दिया। इस अनुभव के आधार पर उन्होंने 'बहन का विवाह' कविता लिखी।

वे एक मानवतावादी साहित्यकार थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठा करने का सफल प्रयत्न किया है। प्रेमी ने अपने पात्रों के द्वारा इस मानवतावादी आदर्श की स्थापना की है। वे मनुष्यता को सब धर्मों धर्मों से ऊँचा धर्म मानते थे। इसलिए उनका ही एक पात्र कहता है - ' मानव का मानव के साथ जो नाता है वह स्वार्थ का नाता नहीं - - वह पवित्र है, वह सब नातों से बड़ा है। " [2]

प्रेमी तकल्लुफ की ओर ज़रा भी ध्यान न देते थे। उन्होंने खुले शब्दों में बता दिया - - "मैं कुसंस्कारी आदमी हूँ। कभी बड़ों के पाँव नहीं छुए। गाँधीजी से प्रत्यक्ष होने पर उनके भी नहीं। इसका मनोवैज्ञानिक कारण है।" [3]

---

1. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी- व्यक्तित्व और कृतित्व - विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक' पृ. 218 से उद्धृत

2. आन का मान - पृ. 4

3. माखनलाल चतुर्वेदी - यात्रापुरुष - संपादक श्रीकान्त जोशी - लेख - वह मेरी माँ है। प्रेमी - पृ. 140, प्रथम संस्करण : 1969

प्रेमी धन-दौलत का गुलाम बनना न चाहते थे। उनकी राय में दौलत से जिन्दगी नहीं खरीदी जा सकती थी। माखनलाल चतुर्वेदी ने एक बार अपनी अभिलाषा प्रकट की कि प्रेमी उसका उत्तराधिकारी है, 'कर्मवीर' को सँभालते रहें, उनकी परंपरा का पालन करें। लेकिन प्रेमी ऐसा नहीं कर पाया । माखनलाल से उन्हें माँ का प्रेम चाहिए था। एक बार मुंशी प्रेमचन्द ने भी, जब उनके बच्चे छोटे थे - यत्न किया था कि उनका प्रेस और प्रकाशन आदि कार्य प्रेमी सँभाल लें, तब भी प्रेमी ऐसा नहीं कर पाया।

विचारक के रूप में

अपने नाटकों की भूमिकाओं में प्रेमी एक विचारक के रूप में सामने आते हैं । श्री राजेन्द्र भनोत से हुए एक साक्षात्कार में प्रेमी ने नाटक के स्वरूप पर अपना मत प्रकट किया है। -- " [redacted] नाटक ऐसा साहित्य है जिसमें अनेक कलाओं का सम्मिश्रण है। संगीत, नृत्यकला एवं काव्य तथा कथा साहित्य सभी कुछ उसमें होते हैं ।"[1] नाटक के अन्य तत्वों की अपेक्षा प्रेमी ने रंगमंच एवं अभिनेयता पर ध्यान दिया है। 'स्वप्न भंग' की भूमिका में उन्होंने लिखा है - "मैं ने इन नाटकों में भाव दिये हैं । कला दी या नहीं यह कलाविद् देखें, मुझे देखने की फुरसत नहीं । हाँ, इतना प्रयत्न तो मैं करता हूँ कि नाटक रंगमंच के उपयुक्त रहे, जनसाधारण की पहुँच के बाहर न हो और उनमें सहानुभूति का अभाव न हो।"[2] 'साहित्य' के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने निम्नलिखित विचार प्रकट किया है :-

"प्रचार और कला की सीमा को मैं [redacted] पहचानता हूँ।

---

1. विश्वज्योति - फरवरी - 1958
2. स्वप्नभंग - कुछ बातें

यदि साहित्यक श्रेष्ठ विचार नहीं [redacted] देता - केवल मनोरंजन की भूख मिटाता है,तो उसकी सेवाओं का अधिक मूल्य नहीं । साहित्यक की लेखनी की रेखाओं से युग का निर्माण होता है। साहित्य द्वारा समाज के संस्कार बनते है । ललित साहित्य का संस्कृति के निर्माण में बड़ा हाथ है। समाज की विषमताएँ ही तो उसके लिए साहित्य का मसाला देती है । ललित साहित्य के द्वारा समाज की जटिल समस्याओं पर प्रकाश पड़ना चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि नाटक, कहानियाँ और उपन्यास,नीरस उपदेश बनकर रह जाएँ।" [1] साहित्यक के जीवन में आनेवाली समस्याओं पर भी प्रेमी ने स्पष्ट शब्दों में अपनी राय व्यक्त की है। - "साहित्यक का जीवन कितनी बड़ी कष्टसाध्य साधना है। यह वही जानता है जिसने यह जीवन बिताया है। देश को सद्‌विचार चाहिए । - आत्मीय भोजन चाहिए - किन्तु जिस व्यक्ति से यह सेवा लेनी है, उसकी कुछ आवश्यकता भी है, इस ओर कौन सोचता है? यदि कोई वास्तविक साहित्य देना चाहता है तो उसे आठों पहर अध्ययन, निरीक्षण और लेखन में डूबा रहना आवश्यक है। जीविका के लिए कुछ और धंधा करें । थके हुए शरीर और मस्तिष्क से अधूरे अध्ययन व निरीक्षण के आधार पर साहित्य दे तो उसमें पाठकों का क्या मिलेगा? जो अपना खून पीकर साहित्य की सेवा कर रहे है उनमें से कुछ को यश भी मिल जाता - किन्तु से भौतिक शरीर अपनी शक्ति स्थिर नहीं रख सकता, जिस कार्य के लिए वह संसार में आया है, उसे पूरे मन से वह नहीं कर पाता।" [2]

समाज की भाँति साहित्य के क्षेत्र में भी जातियाँ बनाकर उसकी एकरसता नष्ट कर देना प्रेमी को उचित नहीं लगता। वे लिखते है, 'साहित्यकार एकांगी हो जाए ऐसा तो मैं नहीं मानता। उसे प्रत्येक दिशा में अपनी प्रतिभा की प्रयोग करना चाहिए। -- बहुत सा साहित्य कवि अपने ही लिए लिखता है, किन्तु वह स्वान्तः सुखाय' कब संसार के सुख के लिए बन जाता है

1• विषपान - पुकार - पृ•9 पंचम संस्करण 1958
2• विषपान - पुकार - पृ•13

हमें साहित्य स्रष्टा स्वयं नहीं जान पाता। केवल कारीगरी प्रदर्शित करके प्रशंसकों से प्रशंसकों से प्रशंसा पाकर निहाल होने के लिए साहित्य सृजन का युग आज नहीं। साहित्य को इतना संकुचित और सीमित बनाना उसके पंखों को काट डालना है। किसी एक दिशा में बहुत ऊँचा उड़कर गया है, हमें उसकी भी प्रशंसा करनी चाहिए। किन्तु जो उस दिशा में जाते हैं, जिस दिशा में जाने को युग की माँग है वे भी प्रशंसनीय है। हमें उनका भी अभिनंदन करना चाहिए।" [1]

प्रेमी का किसी वाद से विरोध नहीं। लेकिन किसी एक ही वाद की नाली में से साहित्य के [illegible] प्रवाह को गुजारने का यत्न प्रेमी को दुराग्रह जान पड़ता है। प्रेमी लिखते समय वादों की छाया भी अपने हृदय और मस्तिष्क पर नहीं पड़ने देना चाहते। उनकी ये पंक्तियाँ देखिए -- ' 'यथार्थवाद के नाम पर समाज के गंदे अंगों का चित्र खींच देना मेरे साहित्य का उद्देश्य नहीं। यूरोपीय साहित्य और सभ्यता से प्रभावित हिन्दी के कुछ नवीन समालोचक मेरे नाटकों में नैतिकता का दोष निकालते है। मैं यह चाहता हूँ कि मेरे देशवासी स्वाभिमानी, स्वाधीनचेता, वीर पराक्रमी, संयमी, सहृदय और ईमानदार हों। मैं समझता हूँ ऐसी इच्छा करना पाप नहीं है। फिर भी समाज में जिन्हें नीच और घृणित समझा जाता है, उनके प्रति मेरा दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है। वे अपने कुकर्मों के लिए उतने उत्तरदायी नहीं है जितने कि वे लोग जिन्होंने इस वातावरण और परिस्थिति में डाला है जिससे वे पाप करने को बाध्य होते है। -- प्रगतिवाद के नाम पर प्रत्येक प्राचीन संस्कार के विरुद्ध युद्ध का डंका आज के अनेक साहित्यसेवियों ने बजाया है।

---

1. शतरंज के खिलाड़ी - भूमिका - पृ. 4

मैं प्राचीन कूड़े कर्कट का पोषक नहीं हूँ। फिर प्राचीन होने के कारण कोई चीज़ बुरा नहीं यह मैं मानने को प्रस्तुत नहीं हूँ। हमें अपने समाज के सब नियम और संस्कार आज की आवश्यकता की कसौटी पर कसने हैं। जो हमारे राष्ट्रनिर्माण में सहायक हो उन्हें स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक देश की अपनी आवश्यकताएँ होती है जो वस्तु या विचार यूरोपवासियों के लिए उपयोगी और लाभप्रद है वह भारत के लिए भी वैसा ही होगा, यह विचार भ्रम से खाली नहीं। असंगत और उच्छृंखल भौतिकवाद यूरोप को भीषण स्वार्थपरता और भयंकर हिंसावृत्ति की ओर ले गया है। संपूर्ण संसारिक वैभव के बाद भी वहाँ सुखशान्ति नहीं है। फिर क्यों हम उनका अनुकरण करके अपनी मानसिक कंगाली का परिचय दें। मेरे विचार सर्वथा मेरे देश की आवश्यकताओं के अनुकूल हैं।" [1]

प्रेमी एक ही समय साहित्य की विभिन्न विधाओं की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना न चाहते थे। अतः उन्होंने लिखा -- " हमारा हिन्दी साहित्य उन्नति कर रहा है। इसमें शक तो नहीं, लेकिन अभी बहुत कुछ करना बाकी है। एक एक विषय के अध्ययन और लेखन में संपूर्ण जीवन लगा देने की आवश्यकता है। लेखक सभी ओर हाथ पैर दौड़ाये, इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि एक विषय के विशेषज्ञ बनें।" [2]

निष्कर्ष यह है कि प्रेमी केवल सजग साहित्य स्रष्टा ही नहीं बल्कि एक जागरूक, सचेष्ट स्पष्टवादी और स्वतन्त्रचेता विचारक भी है।

प्रेमी के व्यक्तित्व के संबंध में श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

1• विषपान - पुकार - पृ• 6-7

2• नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी - व्यक्तित्व और कृतित्व -विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' पृ•208

का विचार महत्वपूर्ण है: - -"प्रेमी के व्यक्तित्व में तीन बातें विशेष है, वे अत्यन्त उदार है, जाति-पाँति के बन्धनों से बहुत ऊपर, मानवतावादी, वे अत्यन्त स्वतंत्र वृत्ति के है, न पाबन्दी लादते हैं, न ही पाबन्दी मानते है। वे बहुत ईमानदार हैं। देश जाति के प्रति ईमानदार, मित्रों के प्रति ईमानदार, साहित्य के प्रति ईमानदार, और परिवार के प्रति ईमानदार। उनका यह व्यक्तित्व सर्वत्र प्रतिफलित हुआ। " [1]

प्रेमी का कृतित्व :-

प्रेमी के साहित्य की उपलब्धियों के सम्यक अध्ययन के लिए कृतित्व का सामान्य परिचय देना अनिवार्य है।

कालक्रम के अनुसार उनकी साहित्यिक कृतियों की सूची नीचे दी जाती है:-

क्रमसंख्या	कृति का नाम	साहित्य विधा	रचनाकाल
1	आँखों आँखों में	कविता	1928
2	स्वर्णविहान	गीत नाट्य	1930
3	जादूगरनी	कविता	1932
4	अनन्त के पथ पर	कविता	1932
5	रक्षाबन्धन	ऐतिहासिक नाटक	1934
6	पाताल विजय	पौराणिक नाटक	1936
7	शिवसाधना	ऐतिहासिक नाटक	1937
8	प्रतिशोध	—''—	1937
9	आहुति	—''—	1940

1. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी - व्यक्तित्व और कृतित्व-विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' पृ. 208

क्रमसंख्या	कृति का नाम	साहित्य विधा	रचनाकाल
10	स्वप्नभंग	ऐतिहासिक नाटक	1940
11	अग्निगान	कविता	1940
12	छाया	सामाजिक नाटक	1941
13	बंधन	–''–	1941
14	ममता	–''–	
15	मंदिर	एकांकी संग्रह	1942
16	विषपान	ऐतिहासिक नाटक	1945
17	उद्धार	–''–	1949
18	शपथ	–''–	1951
19	बादलों के पार	एकांकी संग्रह	1952
20	प्रकाश स्तंभ	ऐतिहासिक नाटक	1954
21	कीर्तिस्तंभ	–''–	1955
22	शतरंज के खिलाडी	–''–	1955
23	विदा	–''–	1958
24	संवत् प्रवर्तन	–''–	1959
25	साँपों की सृष्टि	–''–	1959
26	दुल्लाभट्टी	गीतिनाट्य	1960
27	सस्सी पुन्नु	–''–	1960
28	सोहनी महीवाल	–''–	1960
29	हीरा रांझा	–''–	1960
30	मिर्जा साहब	–''–	1960

क्रमसंख्या	कृति का नाम	साहित्य विधा	रचनाकाल
31	मीराबाई	संगीतिका	1960
32	देवदासी	संगीतिका	1960
33	हम आजाद हुए	पद्य नाटिका	1960
34	आन का मान	ऐतिहासिक नाटक	1962
35	रक्तदान	–''–	1962
36	अमर आन	–''–	1964
37	शीशदान	–''–	
38	नई राह	सामाजिक नाटक	1968
39	संरक्षक	ऐतिहासिक नाटक	1970
40	अमृतपुत्री	–''–	1970
41	अमर बलिदान	–''–	1971
42	भग्न प्राचीर	–''–	
43	शक्तिसाधना	–''–	
44	हेट अरब	–''–	
45	अग्निपरीक्षा	–''–	1971
46	भाई भाई	–''–	
47	[illegible] वन्दना के बोल	कविता संग्रह	
48	प्रतिभा	–''–	
49	रूप दर्शन	–''–	
50	रूपरेखा	–''–	

प्रेमी की कृतियों के लिए पुरस्कार एवं सम्मान :-
==============================

विपरीत परिस्थितियों के थपेड़े खाते हुए भी प्रेमी की लेखनी से जो रचनाएं निसृत हुईं, उनको साधारण पाठकों और कलापारखी समालोचकों ने सराहना की है। स्व: रामचन्द्र शुक्ल, धीरेन्द्र वर्मा, मुंशी प्रेमचन्द, पुरुषोत्तमदास टंडन, माखनलाल चतुर्वेदी और हरिभाऊ उपाध्याय आदि हिन्दी के महारथियों ने इन रचनाओं का मोल बहुत ऊंचा आंका है। उनके नाटक उर्दू, गुजराती, पंजाबी, कन्नड, मलयालम आदि इतर भारतीय भाषाओं में अनूदित होकर भी प्रसारित हुए हैं। विभिन्न मंडलियों एवं संस्थाओं से पुरस्कृत भी हो चुके हैं। उनका पहला ऐतिहासिक नाटक 'रक्षाबन्धन' अधिक लोकप्रिय हुआ; उसके लगभग 36 संस्करण निकल चुके। और इस अकेली पुस्तक से प्रेमी एक लाख रुपये से ऊपर रायल्टी प्राप्त कर चुके। 'रक्षाबन्धन' ने हिन्दी साहित्य मंडल का मानसिंह पुरस्कार प्राप्त किया। विश्वविद्यालयों ने इसे पाठ्य पुस्तक स्वीकार किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'स्वप्नभंग' पर भी रत्नकुमारी पुरस्कार प्रदान किया। 'विषपान' नाटक को प्रकाशित होने के पहले बंगला हिन्दी मंडल ने पुरस्कृत किया। 'सांपों की सृष्टि' नाटक को केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार की ओर से भेंट प्राप्त हुई थी। उनके रूपदर्शन एवं 'रूपरेखा' कविता संग्रह भी पुरस्कृत हैं। रक्षा बन्धन, स्वप्न-भंग, शिवसाधना, प्रतिशोध आदि नाटक न केवल विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रम में निर्धारित हुए हैं वरन् वे सफलतापूर्वक रंगमंच पर उतारे गये हैं। जन-संस्थाओं, स्कूल कॉलेजों, आदि द्वारा जितने प्रेमीजी के नाटक रंगमंच पर लाए गए उतने कदाचित् किसी के नहीं। उनके नाटक देश के कोने कोने में खेल चुके हैं। एक कॉलेज के प्रिन्सिपल महाशय के शब्दों को उद्धृत करना उचित होगा:- "हम हर साल चाहते हैं कि आपका नाटक न खेलें, लेकिन हमें हर साल आपका ही नाटक खेलना पड़ता है-" उन्होंने प्रेमी से कहा।

अब हम प्रेमी के साहित्यिक व्यक्तित्व के प्रत्येक पक्ष पर संक्षेप में विचार करेंगे।

प्रेमी की कविता :

एक कवि के रूप में प्रेमी ने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। काव्य की ओर उनका आकर्षण बचपन से ही रहा था।

आँखों में

प्रेमी ने अपनी पहली पुस्तक 'आँखों में' में विरह के गीत गाए। कवि की प्रेममिश्रित वेदना शतशत अभिव्यक्तियों में फूट पड़ी है। उसमें कामना की व्यंजना है।

'आँखों में है मौन निमंत्रण,
आँखों में नीरव मनुहार।
आँखों में प्रियतम का आना,
और पहनना आँसू हार।' 1

इसमें प्रेमी की अभिव्यक्ति के साथ साथ अश्रुसिक्त करुणा एवं वेदना से समझौता भी है।

वन्दना के बोल

गाँधीजी के वन्दनीय व्यक्तित्व से प्रभावित होकर प्रेमी ने

---

1. आँखों में

इसकी रचना की। कवि की बाँसुरी ने 'वन्दना के बोल' क्यों गाए - इसका उत्तर प्रेमी के स्वरों में सुनिए - "गांधी गया, किन्तु उनकी आवश्यकताएँ नहीं गईं। इसलिए कवि के उच्छ्वासों के बादलों ने उसकी तस्वीरें खींची है। एक दृश्य भी इन तस्वीरों में गांधीजी का इशारा पाकर प्रीत के पथ पर चलने का बल पा जाएगा तो कवि की साँसें धन्य हो जाएँगी।" [1]

प्रेमी ने गांधीजी को युगावतार, युगचेतना, आध्यात्मिक आदर्शों के महान् स्रष्टा, जगद्गुरु नवयुग की मुस्कान आदि अनेक उपाधियों से मंडित कर श्रद्धा के फूल अर्पित किये है। गांधीजी के अन्तःकरण में व्याप्त विश्वकल्याण की भावना की श्लाघा प्रेमी निम्नलिखित शब्दों में करते है :-

''विश्व में आनन्द बरसे
थी यही शुचि चाह तेरी
दीन दुखियों के हृदय की
वेदना का धन समेटे
थी गगन में उठ रही
बनकर गहन घन आह तेरी
विश्व में आनन्द बरसे
थी यही शुचि चाह तेरी।" [2]

गांधीजी के चरखे और तकली के स्वरों ने उन्हें आकृष्ट किया। खादी के क्रान्तिकारी प्रभाव की चर्चा करते हुए वे लिखते है :-

'व्रत स्वदेशी का लियाआजाद दिल से हो गस्तब|लग गई ऐसी लगन
जो है दमन से मर न सकती।| काम खादी ने किया जो काम आँधी
कर न सकती थी।" [3]

1. वन्दना के बोल
2. —''—
3. —''—

प्रेमी ने इस तथ्य पर भी ज़ोर दिया है कि अनेक बलिदानों के पश्चात् प्राप्त स्वतंत्रता को दृढ़ बनाए रखने के लिए गाँधीजी के सिद्धान्तों का पालन करना अनिवार्य है। "स्वप्नदर्शी अन्तिमदृश्य' आदि कविताओं में प्रेमी ने यह व्यक्त किया है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त हम महात्मा गाँधी के सिद्धान्तों तथा त्यागमय निर्देशों के विपरीत चल रहे हैं।" [1]

उर्दू की गज़ल एवं हिन्दी के गीतों का सम्मिश्रण इसमें प्रेमी ने किया है। 'वन्दना के बोल' से लेकर प्रेमी का झुकाव गज़ल लिखने की ओर गया।

<u>अग्निगान</u>

इसमें प्रेमी की राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। उनका क्रान्तिकारी स्वर भी इसमें गूँजता है। आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के प्रति जो क्षोभ और असंतोष प्रेमी के हृदय में था उससे यह उद्भूत है। प्रेमी के मन में समाज के उपेक्षित वर्गों के प्रति दया है, सहानुभूति है। शोषितों के प्रति करुणा उमड़ती है तो शोषकों के प्रति अपार घृणा। उनके विक्षुब्ध क्षुब्ध-हृदय का आक्रोश 'अग्निगान' में पुकार बनकर शब्दों द्वारा प्रस्फुटित होने लगता है :- '

> "कहीं विभव के शैल पड़े हैं - कहीं गरीबी की खाई,
> हम दोनों को करें बराबर, क्यों दे यह वैषम्य दिखाई
> कहीं मधुर रस निर्झर झरने, कहीं तीव्र जलती ज्वाला
> कहीं सुधा वह सरिता बहती, और कहीं पर विष का नाला।" [2]

---

1. वन्दना के बोल

2. अग्निगान - पृ. 38

'अग्निगान' की अधिकांश कविताओं में प्रेमी ने व्यक्त किया है कि आज विश्व में सर्वत्र हिंसात्मक प्रवृत्तियों की भरमार है।" [1] समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता से व्याकुल होकर कवि शोषित वर्ग को जागरण का सन्देश देते है।" [2] प्रेमी की क्रान्तिकारी नारी भावना भी इसमें मुखरित हुई है। उन्होंने नारी को क्रान्ति की दूतिका के रूप में देखा। उसको अग्निपरी एवं काली बनने का आदेश भी दिया है :-

'बनो कुमारी अग्निपरी, मैं
मूर्तिमान बन जाऊं ज्वाला
पुरुष रुद्र बनकर आ जावें, नारी कालिका बनकर आवें।
युग युग से जो रिक्त पड़ा है, वसुधा का खप्पर भर जावे।' [3]

जादूगरनी

प्रेमी ने नारी को गौरवमय रूप में देखा है। भूमिका में लिखा है - "प्रत्येक भवन में नारी बनकर अपनी अविराम छवि से आलोकित करने वाली इस महामाया की रचना विधाता ने अपने ही स्वरूप का विस्तार करने के लिए की थी और साथ ही रचनाकार ने उसे उपहार स्वरूप प्रदान कर दी थी -

'जादूगरनी छविमान
किया विधाता ने तुमको रच
अपना ही स्वरूप विस्तार
अपना चमत्कार मायाविनी

---

1. अग्निगान - पृ. 5।
2. अग्निगान - पृ. 45
3. अग्निगान - पृ. 18 नवनिर्माण

दिया तुझे उसने उपहार।" [1]

नारी सौंदर्य क्षण क्षण बदलता रहता है। इस अक्षय सौंदर्य को अंकित करने में प्रेमी अपने को असमर्थ पाते हैं। " [2]

कवि की दृष्टि में भोली नारी के हृदय का प्यार संसार के प्यार का केन्द्र है। वह दुखी जगत को अपनी करुणा से पुनः नवजीवन प्रदान करती है।" [3]

प्रेमी ने नारी को एक ऐसी देवी के रूप में चित्रित किया है जिसका वरदान पीड़ा को, दुख, भय तथा मृत्यु को अमरता में परिवर्तित करनेवाला होता है। " [4]

नारी तो एक व्यापक शक्ति है जो सुवास की भांति प्रत्येक स्थान पर बसी हुई है।

'कण कण में तेरी सत्ता है, बसी बन सुमन सुवास
'कण कण में तेरी सत्ता है, उर उर में है तेरा वास,
भुवन भुवन के उपवन में तू, बसी बन सुमन सुवास।" - [5]

इस प्रकार जादूगरनी में प्रेमी ने नारी को सर्वगुण-सम्पन्न

---

1. जादूगरनी - प्रेमी - पृ. 3 - 1
2. —''— पृ.20 - 1
3. —''— पृ. 68 - 3
4. —''— पृ.75 - 4
5. —''— पृ. 92 - 4

महान् शक्ति के रूप में देखा है।

अनन्त के पथ पर :

जादूगरनी के दर्शन ने प्रेमी को अनन्त के पथ पर अग्रसर किया। यह कविता इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि प्रेमी रहस्यवादी काव्यधारा का आस्थापूर्ण अनुसरण करनेवाले कवि है। इसमें अव्यक्त अज्ञात प्रियतम के लिए जिज्ञासा और व्यथापूर्ण प्रेम का प्रकाशन प्रेमी ने किया है। कोई अज्ञात अपने मौन संकेतों द्वारा मन में ~~[illegible]~~ वेदना उत्पन्न करता ही रहता है -

'' यह हृदय न जाने किसकी सुधि में बेसुध हो जाता ?
छिपछिप कर कौन हृदय की वीणा से तार बजाता?
क्या जाने नीरव नभ से किसका आमंत्रण आता ?
उर लक्ष्यहीन पक्षी सा किस ओर उड़ा है जाता ?
इस महाशून्य में किसका अनुभव कर मैं मुसकाती?
मैं अपने ही कलरव को क्यों नहीं समझने पाती?'' 1

उसकी अमर आकांक्षा यही है कि प्रिय में अपने को खो देना, प्रेम के मार्ग में जीवन देना है। यही उसका अन्तिम लक्ष्य भी है। '' 2

स्वप्नदर्शन :-

इसमें प्रेमी पुनः प्रेम पथ की ओर प्रत्यावृत्त हुए हैं। ये कविताएँ किसी एक काल से बंधी नहीं हैं। इनमें राजनीति की तीखी समस्याएँ

---

1. अनन्त के पथ पर - पृ. 65
2. अनन्त के पथ पर - पृ. 8।

नहीं है, समाज की विषमताओं की बेचैनी नहीं। 'रूपदर्शन' के गीत रूप (सौंदर्य) प्रीत और यौवन की वे अनुभूतियाँ हैं जो मानव हृदय में सृष्टि के आदिकाल से अंकुरित हो रही हैं और अनन्तकाल तक होती रहेंगी, जो एक सम्राट के हृदय में नृत्य करती हैं तो एक भिक्षुक के हृदय में भी। "[1]

कतिपय गीतों में ऐसा उपदेश सुनाया जाता है कि निराशा छोड़कर सदा आगे बढ़ते रहें।

'चल खिलाड़ी, बढ़ खिलाड़ी, दूर होगा यह अन्धेरा।"[2]

<u>रूपरेखा</u>

इसमें जीवन की जिज्ञासाएँ एवं जीवन संघर्षजन्य अनुभूतियाँ ही हैं। परिस्थितियों की विषमता से चोट खाए हुए हृदय का क्रन्दन है।

प्रेमी ने मुक्तछन्द में भी अनेक रचनाएँ की हैं जिनमें प्रमुख हैं 'करना है संग्राम', 'बेटी की बिदा', 'बहन का विवाह' आदि। प्रेमी के क्रान्तिकारी विचारों की अभिव्यक्ति हो हैं ये रचनाएँ। 'बहन का विवाह' कविता वास्तव में हमारे संपूर्ण समाज की व्यथापूर्ण गाथा है। कवि के जीवन का विद्रोह, पूरी झुंझलाहट इसमें साकार हुई है। एक ओज, एक आक्रोश, एक ललकार, एक इरादा, एक आँसुओं का समुद्र आपको कविता में मिलेगा।"[3]

---

1. रूपदर्शन - पृ. 7 1951

2. -''-

3. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी - व्यक्तित्व और कृतित्व - विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' पृ. 203

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने कवि प्रेमी की प्रशंसा करते हुए लिखा है - "वे केवल कविता लिखते समय ही नहीं, आठों पहर कवि रहते हैं और सच्चे कवि रहते हैं। कविता को अपने जीवन का सर्वव्यापक और स्थायी अंग बनानेवाले कवियों में प्रेमी का अलग स्थान है।" 1।

निष्कर्ष है कि प्रेमी की कविताओं में प्रेम की अभिव्यक्ति है, विरह व्यथा की मार्मिक व्यंजना है, उनके व्याकुल हृदय की अनबुझी प्यास है, आकुलता व्याकुलता का चित्रण है, शोषण के प्रति विद्रोह है और विश्वरहस्य के अद्भुत संकेत भी हैं।

प्रेमी के नाटकों में गीत :-

प्रेमी का कवि हृदय उनके नाटकों में उमड़ पड़ता है। उन्होंने प्रायः सभी नाटकों में गीतों का प्रचुर प्रयोग किया है। भारतीय परंपरा तथा रस सृष्टि की दृष्टि से गीत को नाटक का अपरित्याज्य अंग मानते हुए प्रेमी ने लिखा - "इस युग के कलाकार चाहते हैं कि नाटकों में गीत न दिये जाएँ। यदि रंगमंच या सवाक् चित्रपट का ध्यान न हो तो नाटकों से गीतों को निर्वासित किया जा सकता है। रस सृष्टि में संगीत बहुत सहायक होता है। आलोचक कहते हैं कि वास्तविक जीवन में गानेवाले पात्र नहीं मिलते, पात्रों से गीत गवाना अस्वाभाविक बात है। यह ठीक है कि नाटक का प्रत्येक पात्र गायक नहीं हो सकता, न प्रत्येक स्थान गीतों के लिए उपयुक्त हो सकता है। फिर भी नाटक में दो एक ऐसे स्थल रखे जा सकते हैं जिनका गाना कहानी की स्वाभाविकता को नष्ट न करता है।

- -

1. आँखों में - परिचय - जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द

-- गीत कथानक के अनुकूल हो और जो रस - जो वातावरण, जो प्रभाव लेखक उत्पन्न कर करता है उसको गहरा करनेवाले हो। मेरे नाटकों के गीत कथानक के अंग है। "[1]

प्रेमी के नाटक जो पूर्ण रूप से नाटकोचित है नाटक के कथानक एवं पात्रों के चरित्रचित्रविश्लेषण में सहायक है। कथानक में गति देने में तथा सरसता लाने में उनके गीत बहुत सहायक सिद्ध हुए है। 'रक्षा बन्धन' में कर्मवती एवं अन्य राजपुतानियाँ राखी की महत्ता को स्पष्ट करते हुए जो गीत गाती है वह गीत कथानक की गति के लिए आवश्यक है। "[2] कुछ गीत कथानक की किसी आगामी घटना की सूचना देने में सहायक है। "[3] पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति करनेवाले एवं पात्रों की भावनाओं को व्यक्त करनेवाले गीत भी प्रेमी के नाटकों में उपलब्ध है। आहुति में चपला के गीत[4] उसके मन की सारी भावनाओं - देशप्रेम, स्वाभिमान- दृढता का स्पष्ट परिचायक है। 'शतरंज के खिलाडी' के तौडवी के गीत[5] में उसके चरित्र की विशेषता प्रत्यक्ष हो जाती है। 'शपथ' की प्रधान गायिका उज्जयनी की नर्तकी कुंचनी के गीतों में, उसके अन्तर का योवन उन्माद, उद्दाम प्रेम रसभरी गहराई का छल छल पडता है। उसका 'रुनझुनन' पडा मैं पायल बोलरेवाला' गीत में तपस्वियों के भी संयम को विचलित करने की अपार क्षमता है।

- -

1. विषपान - पुकार, पृ. 12-13 प्रथम सं. 1958
2. रक्षा बन्धन - प्रथम अंक - छठा दृश्य - पृ. 33-34
3. आहुति - प्रथम अंक - द्वितीय दृश्य - पृ. 25
4. आहुति - द्वितीय अंक - तृतीय दृश्य - पृ. 60-61
5. शतरंज के खिलाडी - पहला अंक, नवां दृश्य, पृ. 47

उद्देश्य की दृष्टि से गीतों का सफल रूप हमें प्रेमी के रक्षाबन्धन, शिवसाधना, प्रतिशोध, स्वप्नभंग, आहुति आदि नाटकों में मिलते हैं। इन नाटकों का मुख्य उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना है और इस एकता का प्रतिपादन करनेवाले गीत नाटकों के कथानक में गूंजते हैं। जैसे 'रक्षाबन्धन' में शाहशेख औलिया अपने गीत से इसी एकता का सन्देश सुनाता है।

" आज खुदा खुद है हैरान।
पिला रहा है तुम्हें तअस्सुब की शराब शैतान।
कहाँ लिखा है, हमें बता दे बेले वेद कुरान। " 1

'प्रतिशोध' में ज़ेबुन्निसा का भी यही लक्ष्य है :-

" मन्दिर मस्जिद या गिरजाघर,
सबमें रहता है वह दिलवर
चल इनसान बुराई से बचकर
पीले जाम मुहब्बतवाला। " 2

प्रेमी ने अपने कतिपय नाटकों में गीतों को अधिक संख्या में प्रयुक्त किया है। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार किया है। श्री राजेन्द्र भानोत से एक भेंट में अपने गीतों के संबंध में स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा- "मैं यह मानता हूं कि दो एक नाटकों में गीतों की संख्या बहुत हो गयी है जिसे मैं अपनी भूल कह सकता हूं। --- अब नाटकों का रूप बदलता जा रहा है।

---

1. रक्षाबन्धन - दूसरा अंक - तीसरा दृश्य - पृ. 78
2. प्रतिशोध - तीसरा अंक - पांचवां दृश्य - पृ. 121

दर्शकों की रुचि बदल रही है। इन सब बातों को देखते हुए अब नाटकों के गीतों की भरमार उचित नहीं जान पड़ती, और बाद के मेरे नाटकों में गीतों की संख्या बहुत कम हो गई है। " [1]

गीतों के संबंध में अन्य दोष यह है कि कतिपय गीत आकार में कुछ बड़े हैं। छन्दवैविध्य का अभाव भी है। प्रेमी के गीतों की उत्कृष्टता के आगे ये दोष तुच्छ भी है।

प्रेमी के गीतों पर प्रकाश डालते हुए कई आलोचकों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। श्री सुरेशचन्द्र गुप्त ने लिखा - उनके गीत भावना और विचार दोनों की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध बन पड़े हैं और उनमें श्रोता को प्रेरणा प्रदान करने की शक्ति पूर्ण रूप से वर्तमान है। - - सहजता, संक्षिप्तता एवं प्रवाहमानता के गुणों से युक्त होने के कारण उनके गीतों का पाठक अथवा श्रोता के चित्त पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। " [2]

डा॰शान्ति मालिक ने प्रेमी के गीतों की प्रशंसा करते हुए लिखा है - "कई गीतों में नाटककार की कला का चरमोत्कर्ष रूप दीख पड़ता है। उनमें ऐसी मृदुता एवं हृदयस्पर्शिता अथवा ओजस्विता एवं गूंज है कि उन्हें सुनने मात्र से हृदय रूपी वीणा के तार झनझना उठते हैं। और उसके पश्चात् भी वे पंक्तियाँ मस्तिष्क में गूंजती रहती हैं।" [3] प्रो॰ रामचरण महेन्द्र के शब्दों में कवि प्रेमी की भावुकता, सरसता और तन्मयता उनके राशि राशि

- -

1• विश्वज्योति - फरवरी - 1958 पृ॰ 26

2• भारतीय नाट्य साहित्य - संपादक - डा॰नगेन्द्र -
लेख - नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी - सुरेशचन्द्र गुप्त - पृ॰ 263

3• हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास-डा॰शान्ति मालिक-पृ॰277, प्रथम सं॰1971

गीतों में मुखरित हो उठी है।" [1]

<u>प्रेमी के गीतिनाट्य</u>

प्रेमी के गीतिनाट्यों में हमें दो प्रकार के संगीत रूपक मिलते हैं। प्रथम, अंकों में विभाजित है, दूसरा अंकरहित है दृश्य परिवर्तन-मय है। 'स्वर्णविहान' की गणना प्रथम श्रेणी में की जा सकती है। द्वितीय श्रेणी में हीर रांझा, दुल्ला भट्टी, मिर्जा साहब, सोहनी महीवाल, सस्सी पुन्नू, आदि हैं। रेडियो की दृष्टि से रचित इन संगीत रूपकों का आधार पंजाब की प्रसिद्ध लोकगाथाएँ हैं।

<u>स्वर्णविहान</u>

इस नाटिका की मूल प्रेरणा प्रेम ही है। नाटिका के प्रारंभ में प्रेमी ने लिखा - 'जब मैं केवल दो वर्ष का शिशु था तभी मेरी स्नेह-मयी माँ मुझे कवि बनने, अकेला छोड़कर चली गई थी, तब माँ के आंचल की जगह ऊपर विराट आकाश था और गोद की जगह विस्तृत वसुन्धरा, मेरा वह करुण विहान ही इस स्वर्णविहान का प्रेरक है। जिस मातृभूमि ने अपना प्रेम और ममता से नवजीवन दान दिया उसे प्रेमांजलि अर्पण करने ही इस नाटिका की रचना हुई।" [2]

इस गीतिनाट्य की कथा कल्पित है जिसमें युवक समुदाय के माध्यम से भारतीय चेतना एवं उत्कट राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति है। अहिंसा के

- -

1. हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार - प्रो. रामचरण महेन्द्र, पृ. 240
2. स्वर्णविहान - भूमिका

तत्वों का प्रतिपादन कर अन्त में हिंसा पर होनेवाली विजय का भी वर्णन है । जब मोहन और विजय अत्याचारी नृपति की हत्या करने का विचार करते है तो सन्यासी उन्हें शांत करते हुए अहिंसा के सिद्धान्त सुनाते है । - -

' नहीं नहीं ए पगले यौवन जीत प्रेम से पापाचार ,
औ पाप से पाप मिटाना, महा भूल है व्यर्थ विचार। '

x x x x

' कहीं आग से आग बुझाना
है सम्भव ए युवक विचार
सत्य धर्म जिस ओर रहेंगे
उसी ओर होंगे करतार । " [1]

उपर्युक्त पंक्तियों में गांधीवादी जीवन दर्शन के मूल आदर्शों की गूंज है।

प्रेम को व्यक्तिगत चाह की संकुचित सीमा से बाहर उठा कर उसे दुखियों के दुख दूर करने के लिए एवं पीडित जनता के उद्धार के लिए व्यापक बना दिया। डा॰दशरथ ओझा की राय में इस कृति का उद्देश्य प्रेम को व्यक्ति और देश दोनों के मध्य त्रिकोण बनाकर चित्रित करनेवाली विधा को अपनाकर गांधीवादी भावना को परिपुष्ट करना है। " [2]

इसमें नाटकीय तत्व विशेष सबल नहीं । सघन परिस्थितियों का अभाव है। नायक के जीवन में संघर्ष का क्षण आता है। वह अनुभव करता है कि केवल आदर्श, देशसेवा, कर्मठता, प्राणों की भूख नहीं मिटा सकता-

- -

1. स्वर्णविहान - पृ.23

2. नाटक कोश- दशरथ ओझा - पृ.633 - प्रथम संस्करण - 1975

उसे कुछ और चाहिए। और जब 'कुछ और' उसे लालसा के द्वारा मिल जाता है तो कुछ देर के लिए उसके मन का संयम बह जाता है। यह स्थल अत्यन्त सघन हो सकता था। परन्तु भावों के उद्घाटन में इतनी मुखरता है कि वे सस्ती और अस्वाभाविक होकर जाती है। वास्तव में यह एक पद्यबद्ध कहानी है। जो कथोपकथन के सहारे चलती है। और इस कथा की रूपरेखा स्पष्ट है, उसकी गति में वेग है। " [1]

हीरा रांझा, ससी पुन्नू, दुल्ला भट्टी, सोहनी महीवाल, मिर्जासाहबान सभी गीतिनाट्यों में विरहभरी एवं रोमांचकारी प्रेम कहानी चित्रित है। प्रेमी और प्रेमिका प्रेम मार्ग में अपने प्राण न्योछावर करते हैं, उनके अमर प्रेम का स्वर हर कहीं गूंजता है। हर एक गीतिनाट्य में बाह्य एवं आन्तरिक संघर्ष का वातावरण है, विशेषकर प्रेमजन्य आन्तरिक संघर्ष एवं तीव्र अनुभूतियों की अभि-व्यंजना आद्यन्त व्यंजित है। प्रेम की जो धारा बह रही है इसमें उदात्तता है। लोककथाओं के आधार पर रचित होने के कारण उनमें सहजता, लोकप्रियता तथा माधुर्य के गुण भी आ गये हैं। प्रेमी ने लोककथाओं की आत्मा का संरक्षण करने में जो कुशलता पाई वह सफलता भी कम ही लोगों को मिलती है।" [2]

प्रेमी की एकांकी कला

एकांकी के क्षेत्र में मन्दिर और बादलों के पार नामक दो एकांकी संग्रह प्राप्त है। 1952 में प्रकाशित 'बादलों के पार' मन्दिर का नवीन रूप है जिसमें मन्दिर के साथ एकांकी का नाम बदलकर रख दिए है। एवं चार नई एकांकियों को भी जोड़ दिया गया है। ये एकांकियाँ निम्न-

---

1. हिन्दी नाटक और रंगमंच - पहचान और परख - संपादक - डा॰इन्द्रनाथ मदान लेख - गीतिनाट्य - डा॰नगेन्द्र - पृ॰

2. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व और कृतित्व : विश्वप्रकाश दीक्षित'बटुक' पृ॰98

लिखित है -

1) बादलों के पार (सेवामन्दिर)
2) यह भी एक खेल है।
3) घर या होटल ।
4) प्रेम अन्धा है।
5) वाणी मन्दिर ।
6) ग्राम शिक्षा
7) नया समाज (मातृमन्दिर)
8) मातृभूमि का मान
9) यह मेरी जन्मभूमि है (राष्ट्र मन्दिर)
10) निष्ठुर न्याय (न्याय मन्दिर)
11) पश्चात्ताप

विषयवस्तु की दृष्टि से उपर्युक्त एकांकियों को सामाजिक एवं ऐतिहासिक इन दो वर्गों में विभक्त कर सकते है । ग्राम शिक्षा, नया समाज, मातृभूमि का मान, निष्ठुर न्याय आदि ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित है , अन्य एकांकियों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण है।

<u>बादलों के पार :-</u>

भारतीय नारी के वैधव्य की समस्या को केन्द्र बनाकर यह एकांकी लिखी गई है। विधवा राधा के मन में यौवन की वासना एवं कामना प्रज्वलित हो उठती है। वह अपने प्रेमी माधव से अपने हृदय की भूख मिटाने का प्रस्ताव करती है, उसे सिर्फ माधव के प्रेम की आवश्यकता है। अपने देवर कमल के प्रणय प्रस्ताव को वह ठुकराती है, उसे फटकारती है। जब सास उसे घर से निकालती है तो आत्महत्या करने के लिए जाती है, ठीक उसी समय माधव उसे बचा लेता है। आदर्श युवक माधव उसे सैसारिक वासनाओं से ऊँचे

उठने का उपदेश देकर सेवा पथ की ओर मोड़ देता है। नाटक में राधा के आन्तरिक संघर्ष का सुन्दर [redacted] विश्लेषण है। इस एकांकी में प्रेमी ने विवाह उलझन, समाज की कमजोरियाँ, जीर्ण शीर्ण परंपराओं, रूढ़ियों एवं असंगतियों की अभिव्यक्ति की है।

यह भी एक खेल :-

इसमें प्रेमी ने जाति-पांत के बन्धनों को तोड़ने का आदेश देते हुए उच्च कुल की कन्या विजया को अपनी मानवजाति की परंपरा के प्रतिकूल एक भील युवक कुमार को वरमाला पहनाती हुई दिखाया है।

घर या होटल

प्रेमी ने इस एकांकी में समाज के ऊपरी सतह में दिखाई पड़नेवाली मान्यता के आवरण के नीचे छिपी हुई दुर्बलताओं की ओर संकेत किया है। कुमुद माँ बन गई जब कि वह माँ बनने की अधिकारिणी नहीं थी। वास्तविक अपराधी सुरेन्द्र बच जाता है। सुरेन्द्र, एक उच्च कुल की शिक्षित लड़की - कला का पति बन जाता है। कला विवाह को केवल एक व्यापार समझती थी। उस व्यापार में सुरेन्द्र को कोई रस नहीं आया। उसकी निराशा उसे बाजार के मद्यालय में ले चली। एक दिन मोटर दुर्घटना से बुरी तरह घायल होकर सुरेन्द्र अस्पताल आ जाता है जहाँ उसका पुनर्मिलन कुमुद (जो नर्स बन चुकी थी) से होता है। कुमुद से वह क्षमा माँगता है। कला भी वहाँ पहुँचती है। सुरेन्द्र कुमुद के पुत्र से कला का परिचय कराता है। दोनों में समझौता होता है । कला कुमुद के पुत्र को अपना पुत्र मानती है। सुरेन्द्र को कुमुद के हाथों में सौंप देतो है। एकांकी यहीं समाप्त होती है।

प्रेमी ने दिखाया है कि समाज की कट्टरता मानव को गति

को रोकती है। समाज व्यक्ति पर विजय पाता है। सुरेन्द्र के उदाहरण से यह स्पष्ट है। प्रेमी ने यह भी व्यक्त किया है कि आधुनिक शिक्षा ने लडकियों को विक्षुब्ध किया। उन्होंने गृह को मन्दिर का रूप देते हुए ऐसा उपदेश दिया है कि भारतीय गृहस्थी होटल की तरह रूप न धारण करें, परिवार का प्रत्येक प्राणी स्नेह और ममता के सूत्र में बंध रहे, । पति और पत्नी का स्वतंत्र व्यक्तित्व होना अनिवार्य है। लेकिन दोनों में स्नेह देने एवं स्नेह पाने की लालसा अदम्य होनी चाहिए।

प्रेम अन्धा है।

एक हिन्दू दासी रोशन जिसका सतीत्व मुराद ने नष्ट किया था, प्रतिशोध की भावना से प्रज्वलित होकर औरंगजेब के आदेश के अनुसार धोखे से मुराद को गिरफ्तार करवा देती है। मुराद के प्रति वासन्ती का प्रेम अन्धा है। मुराद ने वासन्ती से जन्मभूमि छुडाई, उसके माँ-बाप छुडाए, उसका सतीत्व नष्ट कर दिया। मुराद रोशन के प्रलोभन से वासन्ती को ठुकराकर, बादशाहत के लोभ में कैद से भाग जाने लगता है कि वासन्ती शोर मचाती है और पहरेदार उसे बन्दी बनाता है। जिसके लिए वासन्ती ने सब कुछ छोडा वह उसे छोड जाए वासन्ती यह बरदाश्त नहीं कर सकती। उसने हाथ को, हीरे की, अँगूठी खा कर अपने प्रेमी के चरणों में प्राण विसर्जित किया। इस असफल एकांकी में प्रेमी ने कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं किया।

वाणी मन्दिर :-

समाज से उपेक्षित निर्धन कवि कुमार और उसकी पत्नी माला की करुण गाथा है। गरीबी के अभिशाप से उनका परिवार तडप रहा था। लेकिन मालाने तो भूखे पेट सो जाने पर भी कभी अपने भाग्य को नहीं कोसा। माला की

मूकसेवा, नीरव प्यार, और उसके कठिन तपस्या ही कवि कुमार की वीणा के तार थे। कुमार उस वाणी के मन्दिर का पुजारी था। उसे गरीब की पत्नी जानकर जब कायम की जैसो लोलुप आँखें उसको ओर घूरने लगीं तो उसने दुनिया से बिदा लेने का निश्चय किया और जहर खा या, लेकिन चन्द्रिका, जो शहर के एक रईस की पुत्री थी, ठीक समय डाक्टर को बुला लाती है, और साला बच जाती है। इस नाटक एक दूसरे पति-पत्नी का चित्र भी है। 'आनन्द' मासिक पत्रिका का सम्पादक चन्द्रप्रकाश वर्मा और उसको पत्नी मालती। वर्मा अपनी पत्नी की इच्छा के विरुद्ध उसके सौंदर्य की ओट में अपना घर भर लेता है।

प्रेमी ने यहाँ हमारे देश के साहित्य साधकों के अन्तः-पुर की भी तस्वीर खींची है। इस तथ्य की ओर संकेत भी किया गया है कि गरीबी मनुष्य की कीमत कम कर देती है। रुपया मनुष्य को राक्षस बना देता है।

रूप शिखा

राजपूत रमणी रूपवती नाचने गाने की कला में प्रवीण थी। भगवान ने उसे रूप का भण्डार दिया। मालव के सुलतान बाज बहादुर और रूपवती का, प्रथम मिलन में प्रेम हो गया। बाज बहादुर अपना नवाबपन, धन-दौलत, वैभवविलास लेकर रूपवती की झोंपड़ी में पहुँचा और उसे खरीद लाया। बहादुर रात दिन शराब, संगीत और अपनी प्रेयसी के सौंदर्य के नशे में मस्त रहकर अपने फर्ज की तरफ से मुँह मोड चुका। अकबर का सेनापति आदमखान मालवा पर चढ़ाई करता है। बाजबहादुर की वीरता को रूपमती की रूप सुषमा ने छीन लिया था, यह समझकर बाज बहादुर ने रूपमती का वध करने का प्रयत्न किया, लेकिन वीरसिंह ने उसको रक्षा की। वीरसिंह और अकबर का सेनापति आदमखान रूपमती की ओर आकृष्ट होते हैं और उसे अपनी प्रेयसी

बनाना चाहते है । किन्तु वह जहर पी लेती है। उसी समय बाजबहादुर वहीं आ जाता है। वह अपने सीने पर स्वयं गोली मार लेता है।

इस एकांकी में प्रेमी ने सांप्रदायिक एकता की स्थापना पर बल दिया। इसलिए कहा गया है - "प्रीत के संसार में जाति और धर्म के दायरे नहीं, वहां मनुष्य जाति एक है। हम दोनों इनसान थे, हमने अपने प्राण एक कर लिए। न वह मुसलमान रहा, न मैं हिन्दू।" [1]

नया समाज :-

भीषण हिन्दू-मुस्लिम दंगे में नवविवाहिता युवती मालती विधवा हो गई। उसकी मां को छोड़कर घर के सभी लोगों को मौत के मुंह में झोंक दिया गया। मिर्जा अजीज बेग का पुत्र मुहम्मद, मालती को यह कहकर अपना घर ले आया कि वह उसे मुसलमान बनाएगा। मुहम्मद की पत्नी और पुत्री रोशन भी हिन्दू-मुस्लिम दंगे के शिकार बन गये थे। दोनों बेघरबार होती है। रास्ते में वे मालती की मां से मिलती है। रोशन को उसके सुपुर्द कर देती है। मालती और मुहम्मद साथ साथ रहकर हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार करते है। अन्त में मालती को अपनी मां और मुहम्मद को अपनी बेटी एक साथ मिल जाती है।

प्रेमी की गांधीवादी विचारधारा की झलक नाटक में स्पष्ट रूप से दीख पड़ती है। हिन्दू मुस्लिम एकता का सन्देश भी सुनाया गया है। मालती के शब्दों में कितनी सचाई है - " उधर देखो, मां, उस माता के

---

1. रूपशिखा - (बादलों के पार से) पृ.93 - दूसरा संस्करण - 1961

चित्र की तरफ। उस जन्मभूमि के चरणों में बैठकर हम जीवनभर साधना करेंगे। जन्मभूमि कहती है, मुहम्मद मेरा बेटा है; मालती मेरी बेटी है। मेरा एक स्तन मुहम्मद के लिए है, दूसरा मालती के लिए। - - भारत माता कहती है - मेरे घर में धर्म की दीवारें नहीं - छूतछात की बाधाएँ नहीं।" 1

एकांकी में यह भी बताया गया है कि हिन्दू मुस्लिम दंगों के पागलपन से भरे हुए अंधकारपूर्ण युग में महात्मा गांधी ही एकमात्र आशा का किरण था।।

<u>मातृभूमि का मान :-</u>

मेवाड के राणा लाखा को बूंदी के नरेश राव हेमू के प्रति कोप इसलिए हुआ कि मेवाड के अधीन होकर उसकी सेवा करना वे पसन्द नहीं करते। लाखा को हेमु से पराजित होकर भागना पडा। महाराणा ने प्रतिज्ञा की कि जब तक बूंदी के गढ को जीत न लेंगे वह अन्न जल ग्रहण न करेगा। चारणों के कहे अनुसार एक नकली दुर्ग बनाकर उसका विध्वंस करके राणा अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने जाता है। मेवाड की सेना में बूंदी के जो सैनिक थे, वे खेल रूप में भी मातृभूमि का अपमान न चाहते थे। हाडा वीरसिंह युद्ध में वीरमृत्यु प्राप्त करता है। अन्त में महाराणा अपनी विवेकहीन प्रतिज्ञा स्वयं समझ लेता है, अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता है, दोनों राज्यों में फिर एकता स्थापित होती है।

इस एकांकी में राजपूतों की वीरता का चित्रण करने के

---

1. नया समाज - बादलों के पार पृ. 122

के साथ , उन लोगों की कमज़ोरियों एवं दुर्बलताओं की ओर भी संकेत किया गया है जिनके कारण वे परस्पर लडकर अपनी शक्ति का क्षय करते है ।

यह मेरी जन्मभूमि है :-

एकांकी का प्रमुख पात्र मिस होम्स, फौजी अफसर कर्नल होम्स की पुत्री है। वह अंग्रेज लडकी है थी, अंग्रेज के घर पैदा हुई, फिर भी वह अपने को भारत की पुत्री समझती है। मिस होम्स, वली मोहम्मद और मनोहर लाल तीनों मिलकर देश की आजादी के लिए प्रयत्न करने को कटिबद्ध होते है । मनोहरलाल का पिता रायबहादुर सीताराम, वलीमुहम्मद का पिता गुलाम मुहम्मद एवं कर्नल होम्स मिलकर, कांग्रेस द्वारा गांधीजी की गिरफ्तारी के विरुद्ध निकाले गये जुलूस को विफल बनाने का प्रयत्न करते है । लेकिन मिस होम्स, वली मुहम्मद और मनोहर साजिश को नाकामयाब बनाते है । अपनी पुत्री को सत्याग्रह आन्दोलन में सक्रिय भाग लेती हुई देखकर कर्नल होम्स मशीनगन चलाने का आदेश देता है। लेकिन कलक्टर उन्हें रोकता है। जुलूस निकल जाता है।

एकांकी में राष्ट्रीय चेतना के युग के मानसिक हलचल का चित्र सुंदर ढंग से खींचा गया। इनसानियत का सबसे ऊंचा ख्याल, सबसे पहली ख्वाहिश, सबसे प्यारी चीज आज़ादी को चन्द सिक्कों के खातिर बेच देनेवालों पर प्रहार भी किया गया है।

निष्ठुर न्याय :

मेवाड का युवराज अभयसिंह रण यात्रा पर जाने के लिए हाजिर होने में कुछ देर हुई। क्यों कि उसने भील कन्या श्यामा के साथ रात व्यतीत की। युवराज के विरुद्ध यह अभियोग लगाया कि प्रेम को उसने कर्तव्य से ऊंचा स्थान दिया। महाराणा रत्नसिंह के न्यायदण्ड ने अपने इकलौते बेटे के ऊपर

भी निर्ममता से प्रहार करने का निश्चय किया। लेकिन चारणी के अनुरोध से महाराणा ने अपने पुत्र और श्यामा का विवाह करा दिया। सुहाग का प्रकाश फैलने के पूर्व ही बुझा दिया गया। राणा का न्याय श्यामा को निर्दोष और अजय को देशद्रोही घोषित करता है। उसे प्राण दण्ड दिया जाता है। श्यामा मूर्छित होकर गिरती है।

इस एकांकी में प्रेमी ने देश को सैकडों टुकडों में बांटनेवाले ऊँचनीच की भावनाओं पर तीखा व्यंग्य किया है।

<u>पश्चात्ताप :-</u>

ब्राह्मण पुंचकौडीदास गाँव का वैद्य है। वह अछूतों से घृणा करता है। एक भंगक की लडकी रधिया बीमार पड जाती है। उसकी माँ वैद्यजी से रधा को दवाई देने की प्रार्थना करती है। लेकिन वैद्य इनकार करते है। वैद्यजी के लडके के बीमार पडने पर शहर से एक ईसाई डाक्टर बुलाया जाता है जो क किसी समय भंगी था। रधिया की माँ के प्रति वैद्य का व्यवहार देखकर डाक्टर को घृणा आती है, वह रधिया के इलाज के लिए वहाँ से चला जाता है। डाक्टर के चले जाने के बाद वैद्यजी के लडके की हालत फिर बिगड जाती है। रधिया के घर जाकर डाक्टर से अपने घर आने की प्रार्थना करता है। वैद्यजी क्षमा माँगते है और पश्चात्ताप करते है तो डाक्टर साथ चलने के लिए तैयार होता है।

इसमें छुआछूत की समस्या को प्रस्तुत किया है। अछूत कहे जानेवाले समाज का एक अंग समस्त सामाजिक अधिकारों से वंचित होकर अति दीन हीन कष्ट कर जीवन बिताने को बाध्य हुआ है। रधिया को मन्दिर के भीतर जाकर भगवान के दर्शन करने की औकात [illegible] नहीं। इसलिए कि वह नीच जाति की है। समाज के उच्चजातिवालों ने डाक्टर को तंग कर दिया। डाक्टर

को ईसाई धर्म ग्रहण करना पड़ा। तब लोग उसका आदर करने लगे। अछूतोद्धार मे लगा हुआ कुलीन युवक कन्हैया यह नहीं मानता कि अछूत से ईसाई हो जाना इस बीमारी का इलाज है। वह डाक्टर से कहता है - ' हमें तो ऊँची जातिवालों के हृदय बदलने की ओर अछूत कही जानेवाली जातियों का रहन-सहन बदलने की जरूरत है। "[1]

यह एकांकी शोषित वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति का परिचायक है। साथ ही समाज के उच्च वर्ग की मिथ्यावादिता एवं अन्याय के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई।

प्रेमी की एकांकियों में दो भावनाएँ सर्वत्र विद्यमान है, राष्ट्रीयता और नैतिक आदर्शवाद। प्रेमीजी की एकांकी कला पर प्रकाश डालते हुए लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है - "नैतिक मानदण्डों, आदर्शवाद, परंपरागत मानवमूल्य, उच्चस्तरीय सांस्कृतिक मर्यादा उनके एकांकी नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ है।" [2]

प्रेमी की एकांकी के संबंध में श्री सुरेशचन्द्र गुप्त का कथन महत्वपूर्ण है - प्रेमीजी ने अपने एकांकी नाटकों में जीवन के सत्य का उपयुक्त प्रतिपादन किया है। यही कारण है कि उन्होंने जीवन की यथार्थता और विषमताओं का चित्रण करने पर भी अन्ततः किसी उपयुक्त समाधान की खोज करने की चेष्टा की है। इस दृष्टि से ~~अतः~~ उनकी रचनाओं में आदर्श जीवन सत्यों के कल्याणकारी स्वरूप की स्थापना का स्पष्ट आग्रह वर्तमान रहा है। " [3]

---

1. पश्चात्ताप (बादलों के पार से) पृ. 187
2. बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य - नए संदर्भ - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृ. 229 प्रथम सं. 1966
3. भारतीय नाट्य साहित्य - संपादक डा. नगेन्द्र
   लेख - नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. 366

एकांकी शिल्प की जटिलता में उलझने की इच्छा प्रेमी की न थी। 'बादलों के पार' की भूमिका में उन्होंने उस रचना को एकांकी नाटकों का संकलन न कहकर लघु नाटकों का संग्रह बताया है।

प्रेमी के सामाजिक नाटक :-

बन्धन

नायक मोहन मध्य वर्ग का शिक्षक युवक है। वह मिल मालिक रायबहादुर खजांचीराम के अत्याचारों के विरुद्ध अहिंसात्मक क्रान्ति करता है। प्रेम के बल पर पूंजीपतियों का हृदय परिवर्तन वह करना चाहता है। उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडता है। अन्त में मोहन अपने आत्मत्याग से खजांचीराम का हृदय जीत लेता है। मोहन के साथ खजांचीराम अपनी लडकी मालती का विवाह कर देता है।

छाया:

इसमें प्रेमी ने भारतीय साहित्कार के जीवन की कठिनाइयों एवं प्रकाशकों की शोषक वृत्ति पर तीखा व्यंग्य किया है।

संसार को अपने गीतों द्वारा प्रकाश देनेवाला कवि प्रकाश के जीवन में निराशा का घना अंधकार फैलता रहता है। उस घोर अंधकार में उसे रास्ता दिखाने के लिए एक मात्र सहारा था उसकी पत्नी छाया। पति को अपमानित होने एवं जेल जाने से वह बचाती है। असत्य पर सत्य की विजय होने के साथ नाटक समाप्त होता है।

ममता

रजनीकान्त अपनी प्रेमिका कला से विवाह नहीं कर पाता।

उसके पिता के मित्र रमाकान्त की पुत्री लता उसकी पत्नी बन जाती है। क्यों कि एक रात को लता अपने मैनेजर विनोद के षड्यन्त्र से बचकर घर से भाग जाती है और रजनीकान्त का शरण ग्रहण करती है। कला के अनुरोध से रजनीकान्त लता से विवाह कर लेता है। विनोद प्रतिशोध लेने के मौके की ताक में है। रजनीकान्त एवं कला के संबंध को वह अपने कुचक्र का प्रधान आधार बनाता है। लता के मन में वह संदेह के बीज बोता है। लता को अपने जाल में फंसाकर उसे घर से भगा ले जाता है। लता दिल्ली में जीविका गुजारने के लिए अध्यापिका बनती है। वर्षों की प्रतीक्षा के बाद निराश होकर रजनीकान्त कला से विवाह कर लेता है। लता का मातृहृदय अन्त में उसे अपने बच्चे के पास ले जाता है। अपने बच्चे को बचाने के श्रम में वह आग से पूरी तरह झुलस जाती है उसी समय लता और रजनीकान्त भी वहाँ आ पहुँचते हैं।

<u>निष्कर्ष</u> :- हरिकृष्ण प्रेमी की कृतियों का अनुशीलन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वे पत्रकार, कवि, नाटककार और एकांकीकार के रूप में हमारे समाने आए। फिर भी उनकी प्रतिभा ऐतिहासिक नाटककार के रूप में अधिक विकसित हुई और चमकी थी। अत: जयनाथ नलिन ने लिखा- -"पत्रकार के रूप में प्रेमी ने साहित्य जगत में आँखे खोलीं, कवि के रूप में वह निखार हुआ और नाटककार के रूप में उनमें जवानी आयी।" [1] उनकी रचनाएँ क्रमश: प्रौढ होती गई, जो उनके व्यक्तित्व के विकास का परिचायक है। यदि वे समय के पूर्व ही हमसे विच्छिन्न न कर लिए जाते तो हिन्दी नाट्यसाहित्य विशेषकर ऐतिहासिक नाट्य क्षेत्र उनकी उत्तमोत्तम कृतियों से भी विभूषित होता "

- -

1. हिन्दी नाटककार - जयनाथ नलिन- पृ. 113

चौथा अध्याय

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीयता

चतुर्थ अध्याय

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीयता :

किसी विशेष भूखण्ड पर निवास करनेवाला जनसमाज जिसकी अपनी सभ्यता, तथा संस्कृति हो, अपनी भाषा, इतिहास और धर्म हो, अपने सामान्य रीतिरिवाज़ एवं आचार - व्यवहार हो और जिनमें एकानुभूति की भावना हो वह राष्ट्र के नाम से अभिहित किया जा सकता है । व्यक्ति में राष्ट्र के प्रति अगाध श्रद्धा, अनन्य भक्ति, अटूट ममत्व और अपनत्व की भावना के उन्मुख होने पर राष्ट्रीयता का जन्म होता है । अत: राष्ट्रीयता को केन्द्रबिन्दु राष्ट्र ही है । राष्ट्रीयता की भावना के आवेग से उत्तेजित व्यक्ति राष्ट्र के हित के आगे अपने परिवार जाति, बिरादरी धार्मिक सम्प्रदाय आदि के हित को गौण मानता है, आवश्यकता पड़ने पर इन सब को राष्ट्र की वेदी पर उत्सर्ग करने केलिए तैयार होता है, यहाँ तक कि प्राणों का उपहार लेकर जननी के दर्शनार्थ मातृमन्दिर में उपस्थित होता है और राष्ट्र के कल्याण को बनाये रखता है । वे अपने देश केलिए मर मिटने में ही अपने को धन्य समझते हैं ।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने राष्ट्रीयता की परिभाषा एवं व्याख्या की है । उनमें से कुछ परिभाषाएं उद्धृत करना उपयुक्त जान पड़ता है ।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार ' राष्ट्रीयता वह मनस्थिति है जिसमें व्यक्ति की सर्वोच्च निष्ठा राष्ट्र अथवा राज्य के प्रति उन्मुख होती है । संपूर्ण इतिहास में मातृभूमि, पैतृक परंपरा तथा स्थिर दोत्रीय सत्ता के प्रति भक्ति, विभिन्न मात्रा में शक्ति प्रदान करने वाली प्रमुख भावनाओं के रूप में विद्यमान रहती है ।' [१]

इनसाइक्लोपीडिया आफ रेलीजन एण्ड एथिक्स के अनुसार ' राष्ट्रीयता व्यक्तियों के समुदाय का एक गुण अथवा विभिन्न मात्राओं में परिलक्षित होता है । [२] डा० अम्बेडकर का विचार है - ' राष्ट्रीयता श्रेणीगत चेतना की एक अनुभूति है जो एक ओर तो उन व्यक्तियों को जिनमें यह उतनी प्रगाढ़ होती है कि आर्थिक संघर्ष का समाजगत उच्चता नीचता के कारण उत्पन्न होनेवाले भेदभावों को दबाकर एक सूत्र में बांधे रखती है और दूसरी ओर उनको ऐसे लोगों से पृथक करती है जो उस श्रेणी के नहीं है । [३]

- -

१- इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, खण्ड-१६, पृष्ठ-१४६

2.Encyclopedia of Religion and Ethics.Vol.9,P.191

3.Nationality is a feeling of consciousness of kind which on the one hand binds together those, who have it so strongly that it over rides all differences arising out of economic conflicts or social gradations and on the other serves them from those who are not of their kind. - " Thoughts on Pakistan " - by Ambedker.B.R. p.25

गिल्क्राइस्ट के अनुसार ' राष्ट्रीयता एक ऐसी आंतरिक भावना है जो उन लोगों में उत्पन्न होती है जो एक ही जाति या स्थान से संबंध रखते हो - जिनकी भाषा, धर्म, इतिहास तथा आचार विचार सामान्य हो तथा एक ही राजनैतिक आदर्श से संगठित हो।' [१]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि राष्ट्रीयता एक व्यक्तिगत नहीं समष्टिगत सामाजिक चेतना है।

राष्ट्रीयता के प्रमुख तत्व :-

राष्ट्रीय एकता के निर्माण केलिए कुछ तत्वों का होना आवश्यक है। ये तत्व हैं -

(१) भौगोलिक एकता
(२) जातीय एकता
(३) संस्कृति तथा इतिहास परंपरा की एकता
(४) भाषा की एकता
(५) धर्म की एकता तथा राजनैतिक एवं ऐतिहासिक एकता।

---

1. Nationality is a spiritual sentiment or principle arising among a number of people usually of same race, residen on the same territory, sharing a common language, the same religion, similiar history and tradition, common interest with common political associations and common ideals of political unity "-Gilchrist R.N.- Principles of Political Science-6th edition p.26-27.

भौगोलिक एकता :

राष्ट्रीयता के निर्माण केलिए भौगोलिक एकता का होना अनिवार्य है। राष्ट्रीयता की भावना को देश की कठोर भूमि साकार रूप प्रदान करती है। एक ही भूमि के निवासी परस्पर सहयोग तथा सौहार्द की विशेष भावना रखते है जिससे प्रभावित होकर वे एक दूसरे को भलीभांति समझ पाते हैं।

मैजिनी के शब्दों में अपना देश ही अपना घर है जिसमें रहनेवाले सदस्य परस्पर प्रेम तथा सहानुभूति के कारण दूसरों की अपेक्षा शीघ्रता से एक दूसरे को समझने बूझने मे सफल होते हैं।' [१]

जन्मभूमि और देशवासियों का रिश्ता माता और पुत्र का सा है। अथर्व वेद मे ठीक ही लिखा गया :- माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या।' [२] देश प्रेम के उन्मुक्त हो जाने पर वह देश के कण कण से अपने को संबंधित पाता है, अत: देश की पृथ्वी, वन, पर्वत, नदी आदि के प्रति ममत्व की

---

1. Our country is our home, the house that God has given us placing therin a numerous family that love us and whom we love; a family, with whom we sympathise more readily and whom we understand more quickly than we do others:- " Mazzini.

(हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना- विद्यानाथ गुप्त से उद्धृत, पृष्ठ-११)

२- अथर्व वेद - भूमि सूक्त।

भावना रखता है । इस प्रकार अपने देश के भली भांति परिचित होने की आकांक्षा राष्ट्रीयता को जन्म देती है । डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी पुस्तक ' फन्डमेन्टल यूनिटी आफ इण्डिया ' में भारतवर्ष की एकता के संबंध में लिखते हुए राष्ट्रीयता के उदय केलिए भौगोलिक एकता को प्रधानता दी । उनका कथन है कि जिस प्रकार शरीर के अभाव में कपड़ों का कोई अस्तित्व ही नहीं हो सकता उसी प्रकार स्थायी भूमि के अभाव में राष्ट्रीयता की भावना निरर्थक है ।' [१]

जातीय एकता :-

जाति परंपरागत समाज ही है जिसकी एकता के बिना राष्ट्रीयता की धारणा दृढ़ नहीं होती । एक देश मे भिन्न भिन्न जातिया विद्यमान है । परन्तु उन सबमें यह भावना पाई जाती है कि वे राष्ट्रीयता के नाते से एक ही है । जब किसी विदेशी आक्रमण से राष्ट्रीयता को खंडित होने की संभावना रहती है तब देश की सभी जातियों में पूर्ण एकत्व की भावना आ जाती है । जब पाकिस्तान ने भारत पर चढ़ाई की तो यहां की जनता में उत्पन्न अभूतपूर्व एकता इसका ज्वलंत उदाहरण है । राष्ट्र के कल्याण केलिए निजी सुखों का बलिदान करके अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार होनेवाली जातिया ही राष्ट्रीय जाति है और ऐसी राष्ट्रीय जाति की एकसूत्रता राष्ट्रीयता की जननी है ।

- -

१- भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास : हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति- डा० सुषमा नारायण, पृष्ठ-३ प्रथम संस्करण-१९६६ से उद्धृत

भाषीय एकता :-

भाषा जिसे राष्ट्र की आत्मा की वाणी कहा जा सकता है राष्ट्रीयता के विकास केलिए एक महत्वपूर्ण साधन है । प्रत्येक देश में एक से अधिक भाषाएं बोली जाती हैं फिर भी उनकी एक सर्वमान्य भाषा होती है । जो राष्ट्रीय जीवन एक ही भाषा के क्रोड में विकास पाता है वह भिन्न भिन्न भाषाओं के प्रयोग करने पर समव नहीं होता । भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत करने से लाभ यह हुआ कि प्रांतीयता की संकुचित भावना का ह्रास हो गया तथा एक राष्ट्रभाषा का गौरव रखते हुए भारतीय अपने देश में सर्वमान्य एवं सर्वप्रिय साहित्य तथा संस्कृति को समृद्ध बनाने में प्रयत्नशील रहीं ।

धर्म की एकता :-

इतिहास तो बताता है कि किसी भी देश की राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने केलिए धर्म की एकता अनिवार्य है । धार्मिक एकता के टूट जाने पर राष्ट्रीयता भी खण्डित हो जाती है । इसी धर्मभेद के कारण भारत का विभाजन हुआ । युग युगान्तर से जाति अथवा समाज का जीवन धर्म से प्रभावित है । धर्म मनुष्य की उदात्त भावनाओं को विकसित कर उसका नैतिक तथा सामाजिक स्तर ऊंचा करता है ।

धार्मिक एकता के अभाव में समाज में अत्याचार जन्म लेते हैं । यद्यपि धर्मान्धता ने रक्त की नदियां बहाई है फिर भी धर्म से मनुष्य जाति का जो कल्याण होता है उसे भुलाया नहीं जा सकता । संसार के सभी धर्मों का मूल आधार मानवतावादी प्रवृत्ति है ।

इस वैज्ञानिक युग में बाहर से देखने पर धर्म की शक्ति क्षीण होती हुई दिखाई पड़ती है लेकिन यदि हम ध्यान से देखें तो व्यक्ति आज भी अपने अन्तर्मन में उतना ही धर्मप्राण है जितना वह आज से कुछ सौ या हजार वर्ष पूर्व था । यह कहना बिलकुल गलत है कि आज के जीवन में धर्म का नाम लुप्त हो गया । प्रत्येक देश में हम बहुत से धर्मों को प्रतिष्ठित होते हुए देखते हैं । ऐसी धार्मिक विभिन्नता के होते हुए भी प्रत्येक देश में राष्ट्रीय एकता विद्यमान है । कोई भी सभ्य देश धर्म की अनेकता के कारण अपनी राष्ट्रीयता पर आंच नहीं आने देता । अत: आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्र में प्रचलित सभी धर्म परस्पर उदार भावना रखें तथा सभी को अपने स्थान पर विकसित होने की स्वतंत्रता हो, जो निश्चय ही राष्ट्रीय एकता में सहायक सिद्ध होगी ।

राजनैतिक तथा ऐतिहासिक एकता :-

देश तथा जाति को सुरक्षित रखने केलिए प्रत्येक राष्ट्र को समय समय पर राजनैतिक एकता का सहारा लेना पड़ता है । इसका वास्तविक स्वरूप तब स्पष्ट होता है जब देश पर विदेशियों के हस्तक्षेप से कोई संकट आ पड़ता है और देश निवासी इस आपत्ति से बचने केलिए एक होकर लड़ने मरने केलिए तैयार हो जाते हैं । कई विद्वान राजनैतिक एकता को राष्ट्र का नाम देता है । [1]

राष्ट्रीय जीवन के विकास में इतिहास की जानकारी बहुत सहायक होती है । कोई भी जाति अथवा देश अतीत की घटनाओं तथा

---

1. Nation is a people who have become politically organized- J.Holl and Rose- Nationality in History (1916)- p.VI.

अन्य राजनैतिक उलटफेरों का ज्ञान प्राप्त कर अपने वर्तमान के विषय मे मार्ग निर्धारित कर सकता है । वर्तमान को कई राष्ट्रसंबंधी समस्याओं का ठीक ठीक हल खोजने केलिए हमें प्राचीन इतिहास की गुफा में प्रवेश करना होगा, क्योंकि किसी भी देश के इतिहास की कोई घटना महत्वहीन नहीं हुआ करती । अतएव किसी राष्ट्र के राजनैतिक उत्थान पतन का वास्तविक स्वरूप जानने केलिए उसका अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

राष्ट्रीयता के उपर्युक्त तत्वों के आधार पर हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों मे राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का अध्ययन एवं विश्लेषण अब किया जाएगा ।

देश की प्राकृतिक सुषमा एवं संस्कृति का गौरवगान -

प्रकृति का लीलानिकेत, विन्ध्य और हिमगिरी के समान पर्वतों से सुशोभित गंगा यमुना जैसे महानदियों द्वारा सिंचित , चरण प्रक्षालन करनेवाले समुद्रों से मंडित भारतदेश सचमुच वन्दनीय है । ' प्रेमी ' के हृदय में भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा की झांकी अंकित जान पडती है । ' रक्षा बन्धन ' का चांदखां भारत की प्राकृतिक सुषमा से विमुग्ध होकर कहता है - ' कितना खुशनुमा है आपका देश महाराजा । आसमान से बातें करने वाले हरे भरे पहाड, कल कल छल छल करते हुए नाचते कूदते जानेवाले झरने, समुन्दर से होड करनेवाले तालाब, बहिश्ते के बगीचों को मात करनेवाले बाग, घने जंगल, कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत यहीं बिखेर दी है । यहां के सुबह जिन्दगी के गीत गाते हुए आते हैं, यहां की शाम हमदर्दी की तान छोडती हुई जाती है, यहां की रात राहत की सेज बिछाती हुई आती है । तभी तो दुनिया इसे लालच की निगाह से देखती है, तभी तो आये दिन इसे

दूर दूर के शाही लुटेरों का मुकाबला करना पड़ता है । [१]

प्रेमी के हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट श्रद्धा है , साथ ही सांस्कृतिक विशेषताओं पर गर्व है । ' शतरंज के खिलाडी ' में अलाउद्दीन से उसका सेनापति महबूब भारत के पूर्व गौरव की कथा कहता है - ' एक दिन वह था जब इस देश की विजय पताका दुनिया के हर एक देश में फहराई थी - लेकिन यहां की तलवार से पहले - यहां का ज्ञान, यहां का प्रेम वहां पहुंच चुकाथा । तलवार के आगे सिर झुकाने से पहले दुनिया ने यहां के विश्वप्रेम और ब्रह्मज्ञान के आगे सिर झुकाया था । ' [२] महबूब अलाउद्दीन को समझाता है कि जब तक हम इस देश में विदेशी बनकर रहेंगे सदैव हमारे पतन का भय बना रहेगा । क्योंकि हिन्दुओं की संस्कृति महान् है - उनका इतिहास हमसे अधिक पुराना, जो अत्यन्त उज्वल प्रेरणास्पद है । वह किसी भी अधीनता में चिरकाल तक नहीं रह सकते । वे बुद्धि, ज्ञान और बल में हमसे बड़े हैं । वे यह नहीं भूल सकते कि एक दिन वे संसार के राजा और धर्म गुरू थे । ' [३]

' आन का मान ' का दुर्गादास एवं ' अमृतपुत्री ' की गणिका भारतीय संस्कृति का यशोगान करते है । दुर्गादास कहता है : भारत ने कभी अपनी सीमा के बाहर जाकर साम्राज्य विस्तार केलिए तलवार नहीं उठाई । अगर वह बाहर गया है तो ज्ञान कादीपक लेकर ही गया है । उसने किसी को दास बनाना नहीं चाहा । ' [४]

- -

१-रक्षाबन्धन-पहला अंक,तीसरा दृश्य,पृष्ठ-१८,३०वां सं० १९६२
२-शतरंज के खिलाडी-पहला अंक चौथा दृश्य,पृ०२४(१९५५)
३- - वही - पृष्ठ-८८
४- अमृत आन का मान - पहला अंक, पृष्ठ-५,द्वितीय सं०,२०१२वि०

कणिका के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति ऊंचे और आदरपूर्ण भाव है - ' किन्तु भारत भारत है । प्रतिशोध की ज्वाला में झुलसता हुआ भी वह अपनी महान संस्कृति की अवहेलना नहीं कर सकता । उसके लिए पर नारी मां, बहन है, बेटी है । वह चाहे शत्रु की हो, चाहे अपनी हो - - - - - [१]

भारत की सांस्कृतिक महत्ता को याद करती हुई रानी लक्ष्मीबाई कहती है - मेरा यह भारत जो ज्ञान दीपक लेकर संपूर्ण संसार को मार्ग प्रदर्शित करता है जिसकी धरती अन्नपूर्णा है जिसकी सरिताएं पातकों को धोनेवाली है । जिसके सागर रत्नाकर है, जिसका समीर जीवन प्रदायक है, जिसके निवासी तप, त्याग, बलिदान, कला कौशल और विज्ञान में संसार का नेतृत्व करते रहे हैं उसे लूट लिया विदेशियों ने । जिस भारतभूमि में जन्म लेने केलिए देवता तरसते हैं वह किसी का दास बनकर रहे यह भारतवासी कब तक सहेंगे ।' [२] भारतीय संस्कृति की महत्ता के संबंध में ' शपथ ' का विष्णुवर्धन कहता है- उदारताही तो भारतीय संस्कृति का बल है - जिसने यवन, शक कुषाण सबको अपने अंचल के नीचे ले लिया । ' [३]

रक्षाबन्धन में कर्मवती भारतीयता का निरूपण करती है - भारत ने कभी किसी विदेशी को अपनी गोद में उठाकर नहीं फेंका बल्कि सभी को अपने स्नेहांचल से ढक लिया । वे उसके बच्चों के साथ समान रूप से लाड, प्यार, पालन पोषण पा सके और फिर सर्वथा भारतीय बन गए । [४]

- -

१-अमृत पुत्री, द्वितीय अंक, द्वितीय दृश्य, पृष्ठ-७२ पहला सं० १९६२

२- अमर बलिदान- प्रथम अंक, चतुर्थ दृश्य, पृष्ठ ३७

३-शपथ-द्वितीय अंक, चौथा दृश्य, पृष्ठ१०४ द्वितीय संस्करण-१९५४

४- रक्षाबन्धन

भारत की आचार व्यवस्था भारतीय संस्कृति का परिचालक है। अमर बलिदान ' में तात्याटोपे इसकी ओर संकेत करता है - भारतीय संस्कृति का यही नियम है कि भाई बहन के चरण छुए और बहन उसकी बलैयां ले उसे आशीर्वाद दे। अपने स्नेह के कवच से उसकी सारी विपत्तियों से रक्षा करें। बहन तो महाशक्ति का अवतार होती है तभी तो उसके हाथ से राखी बंधवाकर भारतीय योद्धा समरभूमि में रुद्र का रूप धारण करते रहे' - - -' [1]

शरणागत की रक्षा करना भारतीय संस्कृति की परंपरा ही नहीं प्रत्युत मानव धर्म है। ' रक्षाबन्धन ' का विक्रमादित्य चांदखां को शरण देता है और ' आहुति ' का हम्मीरसिंह मीर महिमा को। हम्मीरसिंह ने अपने शरणागत के लिए सारे परिवार को मौत के मुंह में झोंक दिया अपनी सारी रियासत बरबाद करा दी। फिर भी हम्मीर सिंह मीरमहिमा को जाने देना अपना पराजय मानते हैं। क्योंकि सम्राट पृथ्वीराज के वंशज अपने सिर पर कायरता का कलंक नहीं लगने दे सकते। राजपूत शरणागत के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देता है। रणथांभौर में जब तक एक भी राजपूत जीवित है वह आपका अंगरक्षक बनकर रहेगा।' [2] हम्मीरसिंह की पत्नी भी शरणागत की रक्षा के लिए मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु की भी चिन्ता नहीं करती। वह अपने दोनों बेटों को- अपने जिगर के टुकड़ों को मौत के मुंह में डालते हुए जरा भी हिचकिचाती नहीं। जब दूसरे सरदारों ने कहा कि एक आदमी की खातिर सारा मुल्क बरबाद करना एवं अपने खानदान को मिटाना मूर्खता है तो उनसे महारानी कड़क कर कहती है - ' पृथ्वीराज के वंशज राजपूती आन नहीं छोड़ सकते। जब भी

- -

१-अमर बलिदान-पहला अंक-चतुर्थ दृश्य,पृष्ठ-३८,पहला सं०वि०सं०२०२५
२-आहुति- पहला अंक,चौथा दृश्य,पृष्ठ-२४

एक भी चौहान बच्चा जिन्दा है हमारे मेहमान का बाल भी बांका नहीं हो सकता ।' [१]

अंग्रेजी कमीश्नर स्कोन और डिप्टी कमीश्नर गार्डन, विपत्ति के समय महारानी लक्ष्मीबाई का सहारा लेने जाते हैं । क्योंकि गार्डन का विश्वास है - ' अवश्य वह भारतीय नारी है । शरणागत की सहायता करने में उन्हें संकोच नहीं होगा । ' [२]

अत: स्पष्ट है कि प्रेमी ने अपने नाटकों में भारतीय संस्कृति की उदारता का जयघोष गुंजा दिया है ।

देश प्रेम

प्रेमी के सभी नाटकों में देशप्रेम की भावना विद्यमान है । अपनी जन्मभूमि से प्यार न रखनेवाले लोगों को प्रेमी धिक्कारते हैं, उन्हें कायर तथा देश का कलंक कहते हैं । ऐसे लोगों के प्रति ' शतरंज के खिलाड़ी ' की प्रभा के मन में घृणा है, इसलिए कहती है - अपने घर, देश और जन्मभूमि के प्रति प्रेम की भावना रखना प्राणिमात्र का स्वभाव है, जिसने प्राणों के मोह में पड़कर अपनी जन्मभूमि को भुला दिया वह बुद्धिमानी नहीं, कायर पुरुष है । [३]

- -

१- आहुति- तीसरा अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-७१

२- अमर बलिदान- द्वितीय अंक, प्रथम दृश्य, पृष्ठ-४८

३- शतरंज के खिलाड़ी - तीसरा अंक, दूसरा दृश्य पृष्ठ-९३

मातृभूमि के प्रति अपना कर्तव्य न निभानेवाले व्यक्तियों को संकेत करके चपला कहती है - ' जो मृत्यु से डरकर जन्मभूमि को शत्रु के पैरों के तले रौंदो जाने को छोड देते हैं क्या वे जोवित है ? वे तो चलती फिरती लाशें हैं ' । १

प्रेमी अपने देश को सर्वोपरि मानते हैं । मां बाप, भाई बहन, पति-पत्नी, परिवार-जाति आदि सभी के हितों के सामने राष्ट्र के हित को प्राथमिकता देने का आदेश देते हैं ।

जब शिवाजी अपनी मां के सुहाग की चिन्ता करके पिता को आदिलशाह के कैद से मुक्त कराने की इच्छा प्रकट करता है तो जीजाबाई पुत्र को देशानुराग तथा स्वकर्तव्य पालन का उपदेश देती है - बेटा यह ठीक है कि हिन्दु स्त्री केलिए पति ही लोक है और परलोक , किन्तु मनुष्य का सबसे उच्च कर्तव्य स्वदेश धर्म का पालन है । मैं अपनी हानि सह सकती हूं, स्वदेश की नहीं । तुम स्वेश की संपत्ति हो, जनता के धन हो, तुम्हारा जीवन व्यक्ति के सुख केलिए अर्पित नहीं हो सकता । '

' शपथ ' की सुहासिनी अपने देशद्रोही अग्रज पर शस्त्र संचालित करती हुई उसके प्राण लेने से नहीं हिचकती । वह कहती है :-

' रणक्षेत्र मैंन कोई बन्धु है, न कोई बहन वहां शत्रु के सामने शत्रु खडा होता है । मैं ने अपने अग्रज का वध नहीं किया । उसने तो उस दिन स्वयं आत्महत्या कर ली जिस दिन मालव नरेश बनने के मोह में उसने हूणों

- -

१- आहुति- दूसरा अंक,पांचवा दृश्य,पृष्ठ-६०
२- शिवसाधना- पहला अंक,चौथा दृश्य,पृष्ठ-३३

का अधिपत्य स्वीकार किया । मैं ने एक देशद्रोही नरेश की हत्या की है - मुझे अपने इस पुण्य कार्य के लिए गर्व है ।' १

' संरक्षक ' में पृथ्वीसिंह के शब्द सुनिए - ' जो अपनी मातृभूमि के प्रति विश्वासघात करता है, जो मनुष्यता के विरुद्ध आचरण करता है वह चाहे हमारा पिता ही हो हम उससे विद्रोह करना अपना कर्तव्य समझते हैं । ' २

संग्रामसिंह निर्वासन के समय अपनी व्याकुल एवं विवश माता से सान्त्वना के दो शब्द कहने केलिए पुन: चित्तौड़ वापस जाना नहीं चाहता इसलिए कि मां से बड़ी एक मां है - हमारा देश है, उसके हित केलिए अपनी जननी की दुर्दशा के प्रति मुझे उदासीन बनना ही पड़ेगा । सचमुच मैं मां के कष्ट कम करने में असमर्थ हूं । - - परशुराम को अपनी मां की हत्या करनी पड़ी, किन्तु धर्म ने उन्हें हत्यारा नहीं कहा । जननी और जन्मभूमि दोनों के हितों में जहां संघर्ष हो, मनुष्य को जन्मभूमि केलिए अपनी जननी के प्रति कठोर होकर भी कर्तव्य का पालन करना चाहिए । क्योंकि जननी का संबंध केवल उस अकेले के साथ है और जन्मभूमि का संबंध विपुल जनसमूह से है ।' ३
' प्रकाश स्तंभ ' का हारीत देश प्रेम के भाव से भरा है । उसका विचार है, ' देश को मां समझने की भावना ही वह आधार है जिसका अवलंब लेकर भारत के संपूर्ण मानव समाज को संगठन में बांधा जा सकता है ।' ४

- -

१- शपथ-तीसरा अंक,तीसरा दृश्य- पृष्ठ-१४३ द्वितीय सं०१९५४

२- संरक्षक- पहला अंक,छठा दृश्य,पृष्ठ-६०

३- कीर्तिस्तंभ-दूसरा अंक,दूसरा दृश्य,पृष्ठ ७४-७५

४- प्रकाश स्तंभ-दूसरा अंक पहला दृश्य,पृष्ठ-५९ दूसरा सं०१९६२

`प्रतिशोध` का प्राणनाथ प्रभु भारत के दलित हृदयों की पुकार सुनकर अपने परिवार की सारी जायदाद छोड़ देता है सांसारिक सुखों को तिलांजली देकर जन्मभूमि का बन्धन काटने का दृढ़ निश्चय लेते हैं।

जब छत्रसाल मां बाप की मृत्यु से निराश होकर आत्महत्या करने केलिए कटार निकालता है तो प्राणनाथ प्रभु, माता को माता जन्मभूमि के प्रति उसके कर्तव्य की याद दिलाता है - - - ` मां चली गई तो क्या हुआ जननी जन्मभूमि तो है। वह तो मां की भी मां है, पिता की भी मां है, तुम्हारी भी मां,है, कोटि कोटि देशवासियों की भी मां है। क्या उसके प्रति तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं ?`

`विषपान` का दौलतखां देश को माता के रूप में देखने तथा माता के प्रति कर्तव्य परायण होने का उपदेश देते हैं। - ` यह देश हमारी सबकी मां है, यह हमारा सबका समान रूप से पालन करती है। हम सब भाई एक होकर अपनी मां का मान बढ़ायें - अपने देश को शक्तिशाली बनायें।` [2]
`उदार` की नायिका कमला को भी मातृभूमि अपनी माता के समान प्रिय है। इसलिए वह कहती है - देश मां है। मां के पैरों में बेड़ियां पहनाने वाले को क्षमा नहीं किया जा सकता चाहे वह भाई हो, पिता हो, चाहे पति हो। - - - - - - देश भक्ति प्रतिप्रेम से भी ऊंचा धर्म है। एक व्यक्ति के देशद्रोह का परिणाम हमारे लाखों करोडों देशवासियों को भुगतना पड़ता है। देशद्रोही हमारा स्वजन है इस कारण हम उसे क्षमा कर देंगे तो हम भी देशद्रोही बनेंगे।

- -

१-प्रतिशोध-दूसरा अंक, पहला दृश्य-पृष्ठ-५ तीसरा सं०१९५६
२- विषपान- तृतीय अंक,चतुर्थ दृश्य,पृष्ठ १०० पंचम सं० १९५८
३- उदार -तीसरा अंक,पांचवां दृश्य,पृष्ठ १०९ चतुर्थ सं०१९५६

तात्याटोपे मातृभूमि के प्रति अपनी दिव्य भावना को स्पष्ट करता है -
" भूल जाओ सारे रिश्तों को - याद रखो केवल अपनी मातृभूमि को । उसी के नाते से मेरा और तुम्हारा नाता है । मैं तो बचपन से ही स्वप्न देखता था कि एक दिन मुझे अपने देश के लिए अपने जीवन की बलि देनी होगी, इसलिए मैंने अपने आपको स्वतंत्र रखने का - माया मोह और ममता से ऊपर रखने का यत्न किया । आज मेरा कोई नहीं है केवल बूढे मां बाप और एक बहन । विवाह मैंने नहीं किया । मेरे माता पिता ने कितना चाहा कि मैं एक बहू लाऊं । लेकिन मैं ने उनकी यह इच्छा पूरी नहीं की । सैनिक को नित्य नया जीवन मिलता है । पता नहीं मुझे किस दिन अपना शीश मां के चरणों पर चढा देने पडे, इसलिए संसार के नातों से मैं ऊपर उठकर रहना चाहता हूं ।" [१]

स्वाधीनता के महत्व का प्रतिपादन:

जब तक जनता को अपनी दासता की अनुभूति न हो पाती, राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन मिलना कठिन है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रेमी देशभक्ति से प्रेरित होकर पराधीनता पर विक्षोभ प्रकट करते है । जनता की भावनाओं को उद्वेलित कर स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए निरंतर संघर्ष करते रहने की प्रेरणा देते हैं । उनमें स्वाधीनता प्राप्ति की जो तीव्र उमंग थी वह उनके नाटकों में प्रतिबिंबित है । ' शतरंज ' के खिलाडी ' की प्रभा पूछती है - ' नीड क्या है, स्वर्णनिर्मित पिंजरा ही तो पक्षी को अपना नीड़ क्यों प्यारा लगता है ? प्राणी चाहे वह पक्षी हो, चाहे पशु,

- -

१-शीशदान-पहला अंक,पहला दृश्य पृष्ठ-३१-३२

चाहे मानव चाहता है कि उसकी स्वाधीनता का अपहरण न हो उस पर किसी का शासन न रहना चाहिए ।' [१] ' शिवसाधना ' के गुरु रामदास में स्वाधीनता की कितनी तीव्र उमंग है - ' स्वतंत्रता ही राष्ट्र की सब व्याधियों की एक मात्र औषध है, स्वराज्य में भूखों मरें, दाने दाने को मोहताज रहें, हमें पेड़ों की छाया में ही घर बसाने पड़ें, फिर भी हमें सन्तोष रहेगा कि हम स्वतंत्र जातियों के सम्मुख गरदन ऊंची करके खड़े हो सकते हैं - - - - - स्वराज्य न होने से हमारा पद पद पर अपमान हो रहा है ।' [२]

आगे वे व्यक्त करते हैं कि इस स्वाधीनता प्राप्ति केलिए मुसीबतों की सेज पर सोना पड़ता है, बहुत खोना भी पड़ता है ।' यह स्वराज्य साधना का कार्य, युग युग की पराधीनता की बेड़ियों को काटने का काम, एक दो दिन में नहीं होता । यह कांटों और बाधाओं से भरा हुआ पथ है । इस पथ पर चलने की दीक्षा लेने वालों को मां- बाप, भाई बहन, धन संपत्ति, लोक परलोक सभी से आंखें फेरनी होती है । स्वतंत्रता से अमूल्य वस्तु कोई नहीं है - धर्म भी नहीं । इसके साधक को इस पर सब कुछ बलिदान कर देना पड़ता है । अपना सुख दुख- अपना अच्छा बुरा लाना भी न्योछावर कर देना पड़ता है - अन्य सब वेदनाओं को इस महावेदना में विलीन कर देना चाहिए ।' शिवाजी के जीवन का भी एकमात्र लक्ष्य यही है - अपनी मातृभूमि को बन्धन

- -

१- शतरंज के खिलाड़ी - तीसरा अंक, दूसरा दृश्य पृष्ठ-६५

२- शिवसाधना - पहला अंक, छठा दृश्य, पृष्ठ-५३

३- शिवसाधना - पांचवा अंक, छठा दृश्य, पृष्ठ-१७६

से मुक्त करना । उसे धन, ऐश्वर्य या संपत्ति की चिन्ता नहीं । अपना लक्ष्य व्यक्त करते हुए वह कहता है - ' मेरे शेष जीवन की एकमात्र साधना होगी भारतवर्ष को स्वतंत्र करना, दरिद्रता को जड़ खोदना ।' [1] दुर्गा जिसका हृदय देश प्रेम की उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत है, किसानों को संगठित करके उन्हें जागृत करने का प्रयास करती है - ' मैं तो सर पर कफन बांधकर निकली हूं, मैं राजमहलों में पली हूं, और कष्टों से मेरा परिचय नहीं है । लेकिन जिस समय देश पर विपत्ति के बादल घिरे हो उस समय सुख विलास में डूबे रहना कायरता है, नीचता है । इसलिए मैंने अंगारों पर चलने का निश्चय किया है । मैं मौत को गले लगाने अपने महल से निकली हूं । मौत से कायर ही डरता है । तुम लोगों में से अनेक राजपूत है अनेक हाडा है । स्वाधीनता किसे प्यारी नहीं है ? दासता को कौन गले लगाना चाहता है ? कोई नहीं । परिंदे भी पिंजरे में रहना स्वीकार नहीं करते । अंग्रेजों की दासता की जंजीरों में जकड़े रहने से तो मर जाना कहीं अधिक श्रेष्ठ है ।' [2] ' अमर आन ' की हाडी राणी में स्वाधीनता की अदम्य आकांक्षा भरी हुई है - ' मैं महाराव को सम्राट से हाथ मिलाने से रोकूंगी । उनसे कहूंगी - हमने मित्रता के नाम पर पराधीनता को बहुत दिन गले लगाया । इस स्वर्ण पिंजरे में अब हमें न रहना । पराये हाथों से हमारे मस्तक पर जो राजमुकुट रखा गया है उसे पैरों से ठोकर मार दो । हमें नहीं रहना ऊंचे महलों में, हमें नहीं पहनना बहुमूल्य वस्त्र , हमें नहीं धारण करने ये आभूषण । हमें चाहिए स्वाधीनता ।' [3]

- -

१- शिवसाधना- पहला अंक, पहला दृश्य पृष्ठ-१६

२- संरक्षक- दूसरा अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ ६६

३- अमर आन-तीसरा अंक,पृष्ठ ७६ प्रथम सं० १९६४

'कीर्तिस्तंभ' का संग्रामसिंह दासता का जीवन हेय एवं लज्जास्पद समझता है। स्वाधीनता प्राप्ति केलिए पुत्र को चाहे पिता से लड़ने पड़े, फिर भी दुनिया उसे विद्रोही नहीं घोषित करता - 'स्वाधीनता की रक्षा केलिए देश का सम्मान अक्षुण्ण बनाए रखने केलिए, अपने वंश की मर्यादा का मान बढ़ाने केलिए जो संतान अपने पिता से संग्राम कर सकती है, उसको संसार अपने हृदय में युग युग तक स्थान देता है। ऐसे व्यक्ति प्रह्लाद की भांति पूजनीय होते हैं। उनका उदाहरण मानवता का मार्ग प्रदर्शन करते हैं।'[1] देश हित का प्रश्न उपस्थित होते ही सारे नाते, ममता, माया और मोह के ऊपर उठकर कार्य करने का उपदेश रायमल देते हैं।[2] रणथंभोर की वीरांगना चपला भागते हुए कायर सैनिकों को धिक्कारते हुए कहती है - 'धिक्कार है तुम्हें अपनी मातृभूमि पर शत्रुओं को ताण्डव करने को छोड़कर तुम भाग जाते हो। अपनी मातृभूमि को छोड़ते हुए क्या तुम्हें दुख नहीं होता? जिसके प्राणों का रस पीकर तुम इतने बड़े हुए, पुष्ट हुए, विपत्ति के समय तुम उसे छोड़ जाओगे -'[3]

प्रेमी के सभी नाटकों में देशप्रेम की चेतना, व्याप्त रही है, स्वाधीनता प्राप्ति केलिए नव जागरण का संदेश भी दिया गया है।' उनके देश प्रेम संबंधी नाटकों में स्वतंत्रता प्रेमी सैनिकों, वीरमाताओं, वीरपत्नियां एवं वीरता को प्रेरणा प्रदान करनेवाले अनेक सूक्ष्म तथा स्थूल उपकरणों को स्थान प्राप्त हुआ। उनके कृतित्व का आधुनिक नाट्य साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम समष्टि रूप में यह कह सकते हैं कि आधुनिक युग में नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीय विचारधारा को उपस्थित करनेवाले साहित्यकारों में उनका उत्कृष्ट

- -

१-कीर्तिस्तंभ-पहला अंक, छठा दृश्य पृष्ठ-३४

२-कीर्तिस्तंभ- पहला अंक, पहला दृश्य पृष्ठ-८-६

३-आहुति -दूसरा अंक, पांचवा दृश्य पृष्ठ-५६

स्थान है ।' [१]

आत्मोत्सर्ग का आत्मबलिदान की भावना

देश को खोई हुई स्वाधीनता प्राप्त करना कोई सहज कार्य नहीं । मां बलिदान चाहती है । अत: इस राह पर वही पग रख सकता है जो अपना सीस हथेली पर रखना जानता है । मातृभूमि के श्रीचरणों में प्राणों की बलि चढा देने की परंपरा हमारे देश में अतिप्राचीन काल से चली आ रही है । प्रेमी के नाटकों में बलिदान का स्वर विशेष रूप से उद्घोषित होता है । उन्होंने अपने नाटकों केलिए भारतीय इतिहास के उन वीर चरित्रों को चुना जिन्होंने स्वाधीनता के यज्ञ में हंसते हंसते प्राणाहुति दे दी थी ।

' रक्षाबंधन ' में स्वदेशप्रेम एवं आन के लिए बलिदान देनेवाले राजपूतों का वर्णन मिलता है । राजपूत पुरुष ही नहीं नारियां भी बलिदान के महत्व को समझती थी । वे देश को परतंत्र देखने से पहले जौहर की ज्वाला में जल जाना पसंद करती थीं । नाटक में राजपूत नारियों को सतित्व की रक्षा केलिए मरण का गीत गाते हुए चिता पर चढ़कर बलिदान का अद्भुत आदर्श रखते हुए दिखाया गया है । [२] ' शिवसाधना ' में शिवाजी कुलदेवी भावना से मातृवेदी पर सर्वस्व बलिदान कर सकने की शक्ति और वरदान मांगते हैं - ' मां भवानी, मुझे बल दो, साहस दो और वह

१- भारतीय नाट्य साहित्य : डा०नगेन्द्र द्वारा संपादित
लेख-नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी - सुरेशचन्द्र गुप्त,पृष्ट-३५४

२- रक्षाबंधन -तीसरा अंक ,पांचवा दृश्य,पृष्ठ-६८

अदम्य पागलपन दो जिससे मैं स्वतंत्रता की साधना में केवल सांसारिक सुखों को ही नहीं बल्कि प्राणों की आहूति भी दे सकूं । निस्पृह, निर्विकार, निर्लिप्त और निरंहकार होकर कर्म कर सकूं ।' [1] बलिदान के महत्त्व को व्यक्त करते हुए वे आगे लिखते हैं :- जन्मभूमि की पुकार पर मस्तक चढाने का हौसला रखनेवाला प्रत्येक सिपाही अमर है, क्योंकि उसके बाद उसकी भावना जीवित रहती है ।' [2] तानाजी ने देश रक्षा के प्रयत्न में बलिदान का मार्ग अपनाया । ताना जी, जीजाबाई के अनुरोध से अपने पुत्र का ब्याह छोडकर सिंहगढ किले पर झंडा फहराने केलिए निकल पडा । गढ तो हाथ आ गया लेकिन वह पराक्रमी सिंह सदा केलिए सो गया । जीजाबाई कहती है - वह मेरा ही नहीं, मां जन्मभूमि का भी लाडला लाल था । वह स्वदेश का सच्चा सेवक और अनन्य पुजारी था । वह जन्मभूमि केलिए जनमा, उसी केलिए जिया और उसी केलिए मरा । उसका बलिदान मुक्तिपथ पर प्रतिक्षण बढते हुए महाराष्ट्र को उत्साह और नवजीवन की प्रबल प्रेरणा देगा ।' [3] बाजी पासलकर ने भी देश केलिए प्राणों की बाजी लगा दी थी । वह अपने शत्रु से कहता है - ' मां के चरणों में बलि होने का सौभाग्य उससे मुझे दुनिया की कोई शक्ति वंचित नहीं कर सकती ।' [4] शत्रु की गोली खाकर गिर पडते समय भी वह सन्तोष का अनुभव करता है, - - - अब मेरा कर्तव्य पूरा हुआ । चिंता

- -

१-शिवसाधना- पहला अंक, पहला दृश्य ,पृष्ठ-१६

२- शिवसाधना- दूसरा अंक, दूसरा दृश्य,पृष्ठ-५८

३- शिवसाधना- - अंक चौथा, सातवां दृश्य,पृष्ठ-१४४

४- शिवसाधना - दूसरा अंक, छठा दृश्य, पृष्ठ-७१-७३

नहीं शत्रु की गोली मेरे शरीर में प्रवेश कर गई है । देश को स्वतंत्र करनेवाले महाप्राण की रक्षा में मैं प्राणों की आहुति देकर सहर्ष महानिद्रा में सो रहा हूं ।'[1] मुरारी बाजी प्रभु भी प्राणों का उपहार लेकर जननी के दर्शनार्थ मातृमन्दिर में उपस्थित हो गया था । दिलेरखां उसे मुगल दरबार में बहुत ऊंचा मनसब दिलाने का वचन देता है, लेकिन वह बहादुर दुनिया के शाहों को शान को शर्मिन्दा करते हुए कहता है - अपने मुल्क को आज़ादी केलिए जान दे देना सबसे बड़ा मनसब है ।'[2] राज्याभिषेक के अवसर पर शिवाजी अपने इन सभी साथियों की याद करते हुए कहते है - आज इस अवसर पर मैं अपने उन साथियों को नहीं भूल सकता जिनके बलिदान से महाराष्ट्र को यह दिन देखने का अवसर मिला है । बाजी प्रभु, तानाजी मालसुरे, बाजी पासलकर और प्रतापराव गूजर जैसे वीर पुरुष हमारे बीच में नहीं । वे अपना कर्तव्य पूरा कर गये, वे सांसारिक ऐश्वर्य की अपेक्षा किये बिना ही जननी जन्मभूमि पर अपने प्राण चढ़ा कर चले गये । हमें उनके प्रति अपना कर्तव्य पालन करना है ।'[3] `शपथ` का विष्णुवर्धन आत्मबलिदान का अमर सन्देश सुनाता है - `प्राणों की बलि देने पर स्वाधीनता की प्राप्ति होती है । तभी वह प्राणों से भी अधिक प्रिय है । - - सहस्रों नरमुंडों को बीज की भांति खेतों में बो दिया जाता है । तब स्वाधीनता के दुर्लभ पौधे को लहराते हुए हम देखते हैं । आज प्रत्येक मालव भवन और मालव कुटी में मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा किए बिना ही दीप जलेंगे । तब दीपमाला के प्रकाश में माताएं देखेंगी आज उनके घर में उनके लाडले पुत्र नहीं, बहन देखेंगी उनके

- -

१- शिवसाधना - दूसरा अंक , छठा दृश्य, पृष्ठ-७१-७२

२- शिवसाधना - तीसरा अंक, पांचवा दृश्य ,पृष्ठ-६६

३- शिवसाधना- पांचवा अंक, चौथा दृश्य ,पृष्ठ-१६२

भाई नहीं , पत्नियां देखेंगी उनके मस्तक का सिंदूर पोंछ गया है ।' [1] ' आन का मान ' का ईश्वरदास भी यही पूछता है - ' क्या मारवाड में एक भी ऐसी मां है जिसने अपना एक न एक बेटा रणचंडी की दाढों को नहीं सौंप दिया ? क्या एक भी बहन ऐसी है जिसका भाई युद्ध की ज्वाला में नहीं समाया ? कितनी नारियों के सुहाग हिंसा की लपलपाती जिह्वा ने पोंछ डाला ' । [2] देश केलिए अपने दो पुत्रों को बलि देनेवाले दुर्गादास का उदाहरण देकर प्रेमी बलिदान काउत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करते हैं - - - बाप होने पर भी मैं ने उनकेलिए आंसू नहीं बहाए । क्यों बहाता ? मेरे आंसू तो विरोहित हो गए उन सहस्रों मां बाप को आंखों के आंसुओं में जिन्होंने हंसते हँसते अपने लालों के शीश मारवाड की आन का मान रखने केलिए इस मरुभूमि की बालू में बो दिए । इस मरुभूमि की बालू में अन्नचाहे न पैदा हो, लेकिन शीश बोने से शीश अवश्य उपजते हैं ।' [3] महाराणा लखनजी और उनके वीर राजकुमारों ने जो त्याग किया था वह अपूर्व था । कराला काली ने उनसे स्वप्न में कहा था - मेवाडभूमि भूखी है । राजबलों को इच्छुक है । उन्होंने अपने हाथ से नित्य एक एक राजकुमार को छत्री पहनाकर, सबको बलि वेदी पर चढ़ा दिया और स्वयं भी चढ़ गये । ' स्वयं बलिवेदी पर चढ़ जाना सरल है, पर अपने हाथ से अपने ग्यारह पुत्रों को एक साथ भी नहीं, रोज एक एक करके मरने केलिए भेजने देना कितना कठिन है यह वही जानता है जिन्हें मां बाप का हृदय मिला है ।' [4] ' शतरंज ' के खिलाडी' का रत्नसिंह बलिदान वीर है ।

- -

१- शपथ - तीसरा अंक, तीसरा दृश्य, पृष्ट-१३६

२- आन का मान - पहला अंक , द्वितीय सं० पृष्ठ-५६

३- आन का मान - पहला अंक, पृष्ठ-४५ द्वितीय सं०

४- रक्षाबन्धन - तीसरा अंक, तीसरा दृश्य, पृष्ठ-८४-८५

वह कर्म करने का आदि है, फल की इच्छा नहीं रखता । रणक्षेत्र की ओर निकल पड़ते समय भी उनके ओजस्विनी शब्द है - ' यह हमारे जीवन का सबसे महत्वपूर्ण दिवस है । आज हम लोग वीरव्रत लेकर घर से निकले हैं । - - - आज हमारे लिए मृत्यु सुन्दरी ने युद्ध भूमि में सेज बिछा रखी है । - - - बलिदान देनेवाला परिणाम को नहीं देखता । वह तो यज्ञ में अपनी आहुति डालता है । वह नहीं जानता कि उसे आत्मसात करके जो धुवां आकाश में भेजती है उससे सुख ऐश्वर्य और नवजीवन की वर्षा होती है । वह नहीं जानता कि उसकी भस्म राष्ट्र के प्राणों में एक ऐसी ज्वाला धधक देती है जो कायरता को भस्म कर देती है । राष्ट्र जाग पड़ता है और लक्ष्य की सिद्धि करता है ।' [१]

प्रेमी के नाटकों में ऐसे अनेक भारतीय नारियों का उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने राष्ट्र सम्मान की बलि वेदी पर अपने प्राण न्योछावर किये हैं । सफियतुन्निसा उन वीर नारियों की याद हमें दिलाती है -- ' चितौड़ की वीरांगना पद्मिनी अपनी पवित्रता और सम्मान की रक्षा करने केलिए किस तरह अपनी हजारों साथिनियों के साथ जौहर ज्वाला में समा गई थी क्या यह तुमने नहीं पढ़ा । इसी चितौड दुर्ग में महारानी कर्मवती ने सोलह हजार वीरांगनाओं के साथ जौहर व्रत का पालन किया था । और अभी कुछ वर्ष पहले ही दिल्ली की एक हवेली में मारवाड की वीर बालाओं ने एक कोठरी में बारूद बिछाकर अपने हाथ से आग लगा ली थी ताकि राजपूत योद्धा शिशु अजितसिंह की रक्षा प्राण पण से कर सकें । जब यहां की स्त्रियां इतना साहस दिखा सकती है तो क्या पुरुष आत्मबलि व्रत का पालन नहीं कर सकते ' ? [२] ' आहुति ' की महारानी केवल एक ऐसी वीर सम्राज्ञी थी जो हंसते हंसते अपने पुत्रों और भाई को युद्ध की बलिवेदी पर

- -

१- शतरंज के खिलाड़ी - तीसरा अंक, छटा दृश्य पृष्ठ-११६
२- आन का मान - पहला अंक, पृष्ठ-३३

चढ़ा देती है । महारानी के शब्दों में बलिदान की प्रखर चेतना उद्भासित होती है - ' हम आत्मदान और आत्म बलिदान के द्वारा अत्याचार से युद्ध करती है । हम तो स्वयं अपनी बलि देकर देश के प्राणों में नवजीवन फूंकती है - - - - - बलिदान स्वयं अपना कार्य करता है । हिंसा का परिणाम अस्थायी है, किन्तु आत्मबलिदान कापरिणाम अमर है । अमर है । आज दासियों में जो तेज बाकी है , वह अपनी मां बहनों के आश्चर्य जनक आत्मत्याग के कारण ही हैं ।' १ ' अमर बलिदान ' में रानी लक्ष्मीबाई के आत्म बलिदान का प्रेरणास्पद वर्णन मिलता है । वह कहती है - ' मेरा देश स्वतंत्र होना चाहिए ।और यदि देश मेरा प्राण मांगेगा तो मैं हंसते हंसते दे दूंगी ।' २ वह वीर तात्याटोपे से विश्वास प्रकट करती है कि जो व्यक्ति स्वाधीनता संग्राम में अपनी बलि चढ़ाएगा उसकी स्मृति आगामी पीढ़ी का मार्ग दर्शन करेगी ।' ३

आत्म बलिदान स्वाधीनता को सन्निकट लाने का मूलमन्त्र कहा जा सकता है ।' स्वतंत्रता देवी के मन्दिर की यही विशेषता है । इसके निर्माण में जितने ही अधिक बलिदान देने पड़े, उतना ही यह दृढ़ होता है ।' ४

बुन्देलखंड की स्वतंत्रता के बाद छत्रसाल उन लाखों वीर पुरुषों की याद करते हैं जो देश केलिए प्राण अर्पण कर चुके थे । वे कहते है -- -

- -

१- आहुति -तीसराअंक, चौथा दृश्य, पृष्ठ-८३
२- अमर बलिदान -द्वितीय अंक, द्वितीय दृश्य,पृष्ठ-५४
३- अमर बलिदान- तृतीय अंक, तृतीय दृश्य,पृष्ठ-१०३
४- प्रतिशोध - तीसरा अंक , नवां दृश्य, पृष्ठ-१४२

भाइयों हम तो उन शहीदों के बलिदान के फल का उपभोग कर रहे हैं, जिन्होंने नींव के पत्थर बनकर स्वतंत्रता देवी के विशाल मन्दिर के निर्माण में हमें सबसे अधिक सहायता दी।'[1] देश को जाति वंश और सभी सांसारिक वस्तुओं से सर्वश्रेष्ठ मानकर उसकी रक्षा केलिए सर्वस्व बलिदान करनेवाले हम्मीरसिंह के शब्दों में 'स्वाधीनता देवी का पोत रक्त पारावार में ये ही आता है।'[2]

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्रेमी ने अपने नाटकों में भारतीय राष्ट्रीयता से प्रेरित बलिदान की उच्चतम भावना से मंडित उत्कृष्ट पात्रों का सजीव रूप प्रस्तुत किया है।

राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीयता का प्रमुख पक्ष है - समस्त देश को एक इकाई के रूप में देखना। प्रेमी ने एक आर्यावर्त की कल्पना की थी। उनका निश्चित मत था कि पारस्परिक एकता के अभाव में राष्ट्रीय स्वाधीनता सुरक्षित नहीं रह सकती। राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने केलिए प्रेमी ने अपने नाटकों की रचना की है, नाटकों की भूमिकाओं में प्रेमी ने अपने इस उद्देश्य का स्पष्ट परिचय दिया है। 'स्वप्नभंग' की भूमिका में उन्होंने व्यक्त किया है- 'मैं ने अपने नाटकों द्वारा राष्ट्रीय एकता के भाव पैदा करने का यत्न किया है। यह नाटक भी इस राष्ट्रयज्ञ में डाली गई एक आहुति है।'[3]

१- प्रतिशोध -तीसरा अंक नवा दृश्य- पृष्ठ-१४२

२- उद्धार- पहला अंक, छठा दृश्य, पृष्ठ-३६

३- स्वप्न भंग - भूमिका - चौथा सं० १९५२

अमर बलिदान ' की भूमिका में भी यही बात व्यक्त की गई है -- हमारा संपूर्ण भारत एक है, प्रदेशगत भेद से परे है सर्वोपरि है ।' [१] रक्तदान ' की भूमिका में प्रेमी जी भावात्मक एकता के महत्व को समझाता है - यह सब दिखाने में मेरा उद्देश्य इतना ही है कि भारतवासी अपनी आपसी फूट के दुष्परिणामों को समझें और देश की भावात्मक एकता के महत्व को जानें ।' [२]

' विषपान ' की भूमिका में प्रेमी राष्ट्रीय एकता का पोषण करते हुए लिखता है -' राष्ट्रीय एकता का अभाव इस देश की सबसे बड़ी कमजोरी है । इस संघर्ष के युग में यदि हम सिर ऊंचा करके चलना चाहते हैं तो सबसे पहले राष्ट्रीय एकता स्थापित करें । मैं ने अपने ऐतिहासिक नाटक में इतिहास को इस रूप में उपस्थित किया है जिससे राष्ट्रीय एकता की भावनाएं पनपें । - - - - मैं अपने नाटकों में भारत की एकता और अखंडता की आवश्यकता पर जोर देना चाहता है ।' [३] ' भग्नप्राचीर ' की भूमिका में वे लिखते हैं - ' देश के विभिन्न वर्गों की एकता वह सुदृढ़ प्राचीर है जो हमें विदेशियों के आक्रमण से बचा सकती है । इस प्राचीर के निर्माण करने के प्रयत्न भारत में अनेक बार हुए हैं । जब भी यह प्राचीर बनायी जा सकी विदेशियों की प्रबल सेनाएं इससे टकरा टकरा कर लौट गईं । - - - यदि देश को स्वतंत्र रखना है तो संपूर्ण भारत को एक मानकर हमें राष्ट्रीय संगठन करना चाहिए ।' [४] पारस्परिक एकता के महत्व के संबंध में संवत् प्रवर्तन का विक्रमादित्य बोलते हैं -' हमारा एक मात्र बल हमारी पारस्परिक एकता

- -

१- अमर बलिदान - प्रवेश पृष्ठ-३ प्रथम सं०

२- रक्तदान - प्रवेश पृष्ठ७ प्रथम सं०१९६२

३-विषपान -पुकार,पृष्ठ ८-९ प्रथम सं० १९५८

४-भग्नप्राचीर-प्रारंभिक शब्द पृष्ठ-४ प्रथम सं० १९५५

है । हम संगठित होकर ही विदेशी शक्ति को पराजित कर सकते हैं । यदि इतने दिन पराधीनता के कष्ट सहने के पश्चात भी यदि हमने एकता के अभाव की हानि को नहीं समझा तो विधाता भी हमारा उद्धार नहीं कर सकता । आज हमें धर्म के आधार पर संग्राम नहीं लड़ना है - बल्कि भारतीयता और मनुष्यता के नाम पर एक झंडे के नीचे खड़े होकर शत्रु को पराजित करना है ।' [1] 'शपथ ' की मन्दाकिनी देशवासियों से पारस्परिक एकता और सहयोग स्थापित करने का उपदेश देती है -- ' हमें व्यक्तिगत मानापमान और हानिलाभ को भूल संपूर्ण राष्ट्र के हिताहित को ध्यान में रखकर एक राष्ट्र पताका की छत्रछाया में खड़े होकर एकता का गीत गाना होगा ।' [2] ' प्रतिशोध ' में भीमसिंह ओडछा नरेश पहाडसिंह को पारस्परिक एकता का महत्व बताते हैं बुन्देले अगर एक होना जान लें तो संसार में कौन सी शक्ति है जो उनकी स्वाधीनता का अपहरण कर सकें । दिल्ली और आगरा के नाक के पास रहकर ही बुन्देलों का देश विदेशियों के उनके आक्रमणों के होते हुए भी किसी प्रकार अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने का यत्न करता रहा है । यद्यपि हम आपस में लड़ते रहे हैं । फिर भी भिन्न भिन्न शक्तियां हो विदेशियों से सफलतापूर्वक लोहा लेती रही है । यदि वे एक होकर मुठभेड कर सकें तो बुन्देलखंड का ही नहीं भारत का इतिहास दूसरी ही रेखाओं में लिखा जाय ।' [3] 'शीशदान ' में तात्याटोपे भारतवासियों को पारस्परिक एकता के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं - ' प्रत्येक भारतीय को समझना चाहिए कि जिस प्रकार

- -

१- संवत प्रवर्तन-दूसरा अंक पांचवा दृश्य ,प्रथम संस्करण १९५८

२- शपथ- प्रथम अंक,सातवां दृश्य -पृष्ठ-५६

३- प्रतिशोध -पहला अंक,दूसरा दृश्य,पृष्ठ २२-२३ तीसरा सं० १९५६

हमारे शरीर में अनेक अंग है, लेकिन अंगों का एक दूसरे से संबंध है और सारे अंग मिलकर ही शरीर बनता है, उसी प्रकार हमारा यह राष्ट्र है। पैर के नाखुन को चोट लगती है तो संपूर्ण शरीर तिलमिला जाता है। वही बात हमारे देश के संबंध में होनी चाहिए। देश के किसी भी कोने में अत्याचार हो तो सारा देश उसके प्रतिकार केलिए तैयार हो जावें। सहानुभूति की डोर से हमें सारे देश को एकता के बन्धन में बांध लेना है। अब यह नहीं होगा कि पलासी के युद्ध में विदेशी ने बंगाल का मान मर्दन किया और महाराष्ट्र तमाशा देखता रहा। और जब मराठों का संघर्ष अंग्रेजों से प्रारंभ हुआ तो शेष भारत सुख की निद्रा सोता रहा।'[1] रानी लक्ष्मीबाई बहुत चिंतित है कि भारतवासियों में ऐक्य नहीं। वह पूछती है - ' क्या एक होते तो अंग्रेज भारत में पांव जमा पाते ?[2] चाणक्य पारस्परिक एकता पर बल देते हुए कहता है - बेटो यह संपूर्ण भारत एक बड़ा परिवार है। भारत का प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने सुख अपनी सुरक्षा और अपनी स्वतंत्रता की चिन्ता करेगा तो लुटेरे एक एक करके सबको लूट लेंगे। यदि सब मिलकर सबकी रक्षा करेंगे तो लुटेरे शक्तिशाली परिवार का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे।'[3] ' शक्तिसाधना ' का ओच्र्य भारत की भावात्मक एकता का पोषण करते हुए कहता है - सांस्कृतिक और भौगोलिक दृष्टि से भारत सदा एक रहा है। किसी भी धर्म को लीजिए। उसके अनुयायी हिमालय से लेकर भारतीय सागर तक फैले हुए हैं। ' बौद्ध,वैदिक धर्मावलंबी तथा जैन। शैवे के मन्दिर शिखर के रूप में भारत के प्रत्येक कोने में बने हुए हैं. इसी प्रकार जैन मन्दिर भी शिव, राम तथा कृष्ण आदि के मन्दिर भी हमारी पवित्र नदियों में जहां उत्तर की गंगा यमुना आदिकी और मध्य की नर्मदा

- -

१- शीशदान -पहला अंक, पहला दृश्य,पृष्ठ-३६

२- अमर बलिदान-पहला अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-१०

३- अमृत पुत्री-प्रथम अंक,प्रथम दृश्य,पृष्ठ-१८,प्रथम सं०१९७२

गोदावरी को माना गया है तो वहां दक्षिण की कृष्णा कावेरी आदि को । भारत के मनीषियों ने सदा ही एक और अखण्ड भारत की कल्पना की है ।[१]

हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतिपादना

राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने केलिए प्रेमी जी ने हिन्दू मुस्लिम एकता की स्थापना अनिवार्य मान ली है । प्रेमी के रचनाकाल में भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को हिन्दू मुसलमानों के वैमनस्य के कारण क्षति पहुंच रही थी । प्रेमी ने देश की आन्तरिक एकता का अनुभव किया, अत: हिन्दू और मुसलमानों के बीच स्थित साम्प्रदायिक विद्वेष दूर करने का प्रयास उनके कुछ नाटकों में हम देख सकते हैं । ' रक्षा बन्धन ' , शिवसाधना , आहुति, स्वप्न भंग आदि नाटकों के माध्यम से उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता का आदर्श प्रसारित किया ।' हिन्दू मुस्लिम संघर्ष विरोध और विद्रोह के युग में प्रेमी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों के द्वारा मानव प्रेम , एकता, धार्मिक सहिष्णुता एवं बन्धुत्व का सन्देश दिया और इस लक्ष्य को प्रस्तुत करनेवाले उपयुक्त कथानक ही चुने । '[२] रक्षाबन्धन में राणी कर्मवती द्वारा अपने पति के शत्रु हुमायू को राखी भेजकर भाई बनाना , उसका यह महसूस करना कि ' मुसलमान भी इंसान है, उनके भी बहने है ।[३] मेवाड के महाराणा विक्रमादित्य का मुसलमान

१- शक्ति साधना, पृष्ठ-८०

२- हिन्दी नाटक:सिद्धान्त और विवेचन : गिरीश रस्तोगी,पृष्ठ-२७१,१९६७

३- रक्षाबन्धन -दूसरा अंक, छठा दृश्य,पृष्ठ-३६

चांदबीबी को शरण देकर अपने जीवन में विपत्ति उठाने को स्वयं तैयार हो जानेवाली घटनाएं हिन्दू मुस्लिम संस्कृति एवं संप्रदाय को एकता के सूत्र में बांधने केलिए पर्याप्त है । शिवसाधना में शिवाजी का मुस्लिम नारी , कुरान शरीफ और मस्जिद के प्रति आदर भाव रखना, उनकी घोषणा करना कि ' स्वराज्ययदि हिन्दुओं तक ही सीमित रह गया तो मेरी साधना अधूरी रह जाएगी ।' [1] आदि घटनाएं भी हिन्दू मुस्लिम एकता और धार्मिक सहिष्णुता की ओर संकेत करती हैं । हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए ' स्वप्न भंग ' के दारा की मृत्यु महान बलिदान है । दारा का हिन्दू मुस्लिम एकता को स्थापित करने का स्वप्न जीवन के अन्तिम क्षण तक संघर्ष करते रहने पर भी ' भंग ' हो गया और वह अन्त तक पूरा नहीं हो सका, प्रेमी अपनी कुछ बातें कहते हुए स्पष्ट कर देते हैं - ' भारतीय इतिहास के मुस्लिम काल में दारा के समान वैभव और शक्ति की चरम सीमा तथा कंगाली और कष्ट की पराकाष्ठा तक पहुंचनेवाला पात्र दूसरा कोई नहीं । हिन्दू मुस्लिम एकता केलिए उस महापुरुष ने अपने जीवन की बलि दे दी । उस समय दारा का जो स्वप्नभंग हुआ था वह आज तक भंग ही पड़ा है ।' [2] हिन्दू मुस्लिम एकता का जो प्रयत्न गांधी जी ने किया उसे फलीभूत होने न देखकर प्रेमी ने प्रकाश से कहलवाया है - ' आज एक महान स्वप्न भंग हो गया । क्या राष्ट्रीय एकता केलिए एक महान बलिदान व्यर्थ जाएगा । क्या दारा का स्वप्न सदा स्वप्न ही बना रहेगा । क्या भारत की भावि पीढ़ियां इस महान बलिदान को भूल जाएंगी ।' [3]

- -

१- शिवसाधना- पहला अंक चौथा दृश्य ,पृष्ठ-२६

२- स्वप्न भंग- कुछ बातें - चौथा संस्करण,१६५२

३- स्वप्न भंग- तीसरा अंक,सातवां दृश्य,पृष्ठ-१२७,चौथा सं०१६५२

प्रेमी ने यह भी अनुभव किया कि जब तक मुसलमान इस भारत को अपना देश न समझेगा तब तक देश में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की भावना दृढ़ न होगी तथा राष्ट्रीय एकता भी स्थापित न होगी । प्रतिशोध का बकोखां भारत की स्वतंत्रता को अपने मुल्क की आजादी समझने वाला पात्र है । जब सुजानसिंह बकोखां से पूछता है कि बुन्देलखंड की आजादी से उसे तारलुक क्या है तो उसका उत्तर है - हमें ताल्लुक क्यों नहीं ? बुन्देलखंड क्या सिर्फ बुन्देलों का है ? क्या यह जमीन सिर्फ हिन्दुओं को खाना पानी देती है, हम मुसलमानों को नहीं ? मजहब के नाम पर मुल्क के टुकड़े न करो सुजानसिंह । जिस मुल्क में हम पैदा हुए , जिसकी मिट्टी में हम खेले कूदे, जिसके पानी से हम पले, उसकी आजादी से क्या हमारा कोई ताल्लुक नहीं ? क्या उसकी आन हमें जान से प्यारी नहीं हो सकती ।' १

प्रेमी ने जातीयता के आधार पर देश के विभाजन करने का घोर विरोध किया है । ' शीशदान ' का तात्याटोपे कहता है - अब तो हिन्दू राज्य या मुस्लिम राज्य के सपने देखना भारत की हत्या करने के समान है । ईश्वर करें हमें अंग्रेजों को भारत से निकालने में सफलता प्राप्त हो । उसके पश्चात् यहां ऐसे राज्य की स्थापना होगी जिसका धर्म से कोई सबंध नहीं होगा ।' २

हिन्दू मुसलमान का फर्क प्रेमी की समझ में नहीं आता । प्रेमी ने उनको एक मां की गोद में बैठनेवाले दो भाई के रूप में देखा है । अपनी इस पवित्र भावना को ' अमर बलिदान ' में गोसखां के द्वारा स्पष्ट

- -

१- प्रतिशोध-तीसरा अंक,पहला दृश्य पृष्ट-१०१

२- शीशदान- पहला अंक, दूसरा दृश्य,पृष्ठ ६०-६१

किया है - हिन्दू और मुसलमान भारत माता की दो आंखे है, दो भुजाएं है, दो पांव है, दो पुत्र है ।' [१]

हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने के प्रेमी के प्रयास को सराहनीय बताते हुए डा० रमासेन गुप्त लिखते हैं - ' हिन्दी नाट्य क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के राष्ट्रीय उद्देश्य को सामने रखकर नाटक रचना करनेवालों में हरिकृष्ण प्रेमी अत्यन्त सफल हुए है ।' [२]

प्रजातंत्र का समर्थन

राष्ट्रीय एकता को दृढ बनाने केलिए प्रेमी ने राजशासन का अन्त और प्रजातंत्र का उदय आवश्यक समझा । उन्होंने अपनी वाणी द्वारा जन मन में नई स्फूर्ति तथा चेतना भरने का प्रयास किया है । उनकी इच्छा है कि स्वतंत्र भारत में जनता के ही हाथों में सत्ता रह जाए । उनके नाटकों में प्रजातंत्र का समर्थन करनेवाले तथा राजशासन का अन्त चाहनेवाले अनेक पात्र मिल जाते हैं । ' शिवसाधना ' का शिवाजी संपूर्ण भारत में जनता का स्वराज्य स्थापित करना चाहता है । ' प्रकाशस्तंभ ' का ' बाप्पा ' और ' शपथ ' का विष्णुवर्धन भी प्रजातंत्र के समर्थक है । सुहासिनी को पूर्ण विश्वास है कि विष्णुवर्धन भारत से हूणों की निरंकुश और नृशंस सत्ता को सदा केलिए समाप्तकरने में सफल हो जाएगें । जो कार्य मालवगणाधिपति शकारि विक्रमादित्य पूर्ण रूप से संपन्न न कर सके, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

१- अमर बलिदान - तृतीय अंक, पंचम दृश्य, पृष्ठ- ११४

२- हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन- डा० रमा सेन गुप्त, पृष्ठ-१०२,प्रथम सं०१९७१

भी आजीवन अनवरत संग्राम रत रहकर कठिनाई से पूर्ण कर सकें , गुप्त साम्राज्य की विशालवाहिनी की अर्गला बना परमभट्टारक स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य भी साथ न सकें, वही भारतभूमि को विदेशियों से मुक्त करने के कार्य विष्णुवर्धन कर सकेगा । सुहासिनी कारण बताती है - ' कारण कि तुम सम्राट नहीं हृदय सम्राट हो । जननायक के साथ मन नायक भी हो । जनमत तुम्हारे साथ है । तलवार को तलवार काट सकता है । न कोई रोक सकता है । कोटि कोटि तोरमाण और मिहिरकुल जनमत के महासमुद्र में विलीन हो जाएँगे । [1] समाज, समुदाय एवं देश के कोटि कोटि मानवों को हितसाधना में व्यक्ति की महत्वाकांक्षाओं का संयत करने के सिद्धान्त को अपनाते हुए विष्णुवर्धन कहता है -' हमें तो परम्परागत चलनेवाले राजाओं की वंशावलियों को समाप्त करके, भारत को एक महान् गणतंत्र में संगठित करना होगा ।' [2] ' संवत् प्रवर्तन ' का विक्रमादित्य जनता की सर्वसम्मति से अपने छोटे भाई भर्तृहरि को मालव का प्रथम गणपति बनाते हुए गणतंत्र की भावना पर ही बल देता है ।

समष्टि पूजा के आगे व्यक्ति पूजा को नगण्य मानकर विक्रमादित्य कहता है - ' मैं व्यक्ति पूजा का विरोधी हूं । - - असल में मैं निरंकुश राजतन्त्र के विरुद्ध हूं । जहां एक ही व्यक्ति के हाथों में संपूर्ण शक्ति केन्द्रित हो जाती है ।' [3] ' कीर्तिस्तंभ ' के राजयोगी की राय में प्रजा

- -

१- शपथ-प्रथम अंक,पांचवा दृश्य,पृष्ठ-४२

२- शपथ-प्रथम अंक,सातवां दृश्य,पृष्ठ-५८

३- संवत् प्रवर्तन - तीसरा अंक, चौथा दृश्य,पृष्ठ १०४,प्रथम सं० १९५८

के लिए यह जरूरी नहीं है कि राजा की आज्ञा को ईश्वरीय आदेश मानें। इसलिए उसका उपदेश है - प्रजा राजा की प्रत्येक उचित और अनुचित आज्ञा का पालन करे ही यह आवश्यक नहीं। प्रजा के वक्षस्थल में भी धड़कनेवाला हृदय है। उसके अपने सुख स्वप्न, अपनी आकांक्षाएं हैं।[१] वह आगे यह भी व्यक्त करता है - - - - देश की शक्ति उसका राजा अथवा राजकुमार नहीं, देश की शक्ति उसकी प्रजा है। प्रकाशस्तंभ में बाप्पा का विचार है -' राजा के मस्तक पर उच्च प्रभुता और वैभव का जो राजमुकुट विभूषित होता है वह वास्तव में प्रजा द्वारा दी दी हुई पवित्र धरोहर है। जो राजा अपने वैभव विलास को सुरक्षित रखने केलिए प्रजा के हितों के प्रति विश्वासघात करता है वह वास्तव में कृतघ्न है।[२] ऐसे राजाओं के प्रति रक्षाबन्धन की जवाहरबाई भी विरोध प्रकट करती है - ' जो राजा अपने आपसे अपनी प्रजा को नीच समझता है, उसे राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार नहीं है।'[३] सफियनुन्निमा को भरोसा है -- इस देश में एक दिन ऐसा आयेगा जब युग युग से प्रपीड़ित प्रजा उठेगी औरअपने बलिदानों के बल पर राजाओं महाराजाओं और सम्राटों का हाथ पकड़कर उन्हें मार्ग पर खड़ा कर देगी। प्रजा स्वयं शासक बनेगी - धर्म का जाति और वंश के बड़प्पन का नशा पिलाकर कब तक उसे अंधा बनाकर रखा जा सकेगा?'[४] दुर्गादास की दिल्ली के तख्त से भी एक ऊंचा सिंहासन

- -

१- कीर्ति स्तंभ- दूसरा अंक। दूसरा दृश्य, पृष्ठ-७३

२- प्रकाशस्तंभ-तीसरा अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-९८-९९

३- रक्षाबन्धन - पहला अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-१०

४- आन का मान - पहला अंक, पृष्ठ-३१ संवत् २०१८

दिखाई पडता है वह है अपने देशवासियों के हृदय का सिंहासन । इसलिए वह कहता है - जो सम्राट इस सिंहासन को गंवा देता है उसे नहीं तो उसकी भावी पीढ़ी को राजसिंहासन भी गंवाना पडता है ।' [1] राज शासन की निन्दा करते हुए सफियतुन्निसा कहती है- राजा महाराजा और सम्राट ही तो सबसे बडे लुटेरे है । प्रजा की गाढी कमाई का धन लूटकर अपने कोष भरना और उसके अपने विलास के साधन जुटाना ही तो इनका काम है । ' [2] हिन्दुस्तान के भविष्य पर आशंका प्रकट करने पर दुर्गादास सफियतुन्निसा से कहते हैं -' भारत का भविष्य राजाओं के हाथों में नहीं वह जनसाधारण मे से जन्म लेनेवाले शिवाजी के हाथ में है, जन्म से ही राजा बनकर आनेवाले संभाजी के हाथ में नहीं, वह है स्वार्थों से वंचित कृषाल में । वह है उन किसानों के हाथों में, जिनकी खडी फसलों को युद्ध की विभीषिका ने जला डाला है । वह है उन घर-बार से वंचित दाने दाने से मोहताज व्यक्तियों के हाथो में जिनके घरों को, पेट की ज्वाला शांत करने केलिए अपना ईमान बेचनेवाले सैनिकों ने जला डाला है ।[3]

' शतरंज के खिलाडी' की प्रभा यह नहीं मानती कि मनुष्य की आकांक्षाओं पर नियंत्रण रखने केलिए राजा की जरूरत है । --' राजा नहीं एक शासन प्रणाली की आवश्यकता है, यह शासन प्रणाली एक व्यक्ति के हाथ में रहेगी तो वह कभी राम का राज्य बन जाएगी - तो कभी रावण का । इसलिए राज्य ऐसा होना चाहिए जिसमें सर्वसाधारण का पूरा हाथ हो । राजा अपना मानापमान, आकांक्षा और लालसाओं केलिए व्यर्थ ही प्रजा को कष्ट देता है - उसे युद्ध भूमि में भेजकर उसके जीवन के साथ खेल करता

- -

१- आन का मान - दूसरा अंक,पृष्ठ-८१

२- आन का मान - तीसरा अंक,पृष्ठ-१०३-१०४

३- आन का मान - पहला अंक,पृष्ठ-२०

है। लोक का राज्य होने से संसार स्वर्ग बन सकता है मैया- राजा के राज्य से नहीं।' [१] 'आन का मान' में बुलन्द आवाज़ क्रान्ति का आह्वान देता है - 'जब तक राजा महाराजा और सम्राटों और इनका समर्थन करनेवाले तथा कथित धर्मगुरुओं के हाथों में हिन्दुस्तान का भाग्य है तब तक इस सृष्टि का बनानेवाला भी इसे सर्वनाश से नहीं बचा सकता। जिनका स्वार्थ धर्म और जातियों के नाम पर हिन्दुस्तान को विशृंखलित रखने में है वे इस महान देश की भावनात्मक एकता को लाने के लिए देश में विचारों की क्रान्ति होनी आवश्यक है। राजमुकुटों को जमीन में गाड़ देना होगा या समुद्र में फेंक देना होगा। जनता को स्वयं अपना भाग्य विधाता बनाना होगा।' [२] 'भग्न प्राचीर' में महाराणा संग्रामसिंह के शब्दों में आशामय भविष्य का स्वर निनादित होता है - - - - एक दिन आवेगा जब राजाओं को एक तरफ फेंककर भारत के सर्वसाधारण लोग उन पर लादे हुए जुए को उतारने को उतावले हो उठेंगे।' [३]

भारतीय दुर्दशा एवं पतन के कारण

प्रेमी की सतर्क एवं तीव्र दृष्टि ने देश की अवनति के मूल कारणों को अनावृत कर देशवासियों का विशेष ध्यान उनके उन्मूलन की ओर आकृष्ट किया था। भारतीय दुर्दशा के विविध पक्षों के प्रति उन्होंने

- -

१- शतरंज के खिलाड़ी - तीसरा अंक, दूसरा दृश्य- पृष्ठ-६५

२- आन का मान - तृतीय अंक, पृष्ठ-११३

३- भग्न प्राचीर - पहला अंक- पहला दृश्य, पृष्ठ-१६

क्षोभ, आक्रोश और वेदना की तीव्र अनुभूति अभिव्यक्त की है ।

भारत का चिरकाल से यह दुर्भाग्य रहा है कि यह देश फूट, वैर, अनेकता आदि दुर्भावों के कारण ही विदेशियों से आक्रान्त होता रहा है । हमारा इतिहास इसका साक्षी है कि भारतकी अवनति का मूल कारण आपसी फूट तथा वैर रहा, अन्यथा वीरता का अभाव न था ।

राजाओं का स्वार्थ :-

प्रेमी ने उन राजाओं की भर्त्सना की है जिन्होंने स्वार्थप्रेरित होकर अपनी व्यक्तिगत उन्नति की कामना की थी और देश की अखंडता को हानि पहुंचाई थी ।' उद्धार ' की कमला कहती है - ' यह भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि यहां का प्रत्येक राजवंश अपनी पृथक ध्वजा फहराने केलिए लालायित है । सिसौदिया, चौहान, राठौर आदि सभी राजपूत ही नहीं बल्कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति जन्मभूमि का पुत्र है । उसकी कोई व्यक्तिगत सत्ता या स्वार्थ नहीं ।' [1] भारतकी पराजयों के कारणों को स्पष्ट करते हुए सेनापति मिहिरकुल से बताता है - भारत की यही तो सबसे बड़ी निर्बलता है कि यहां की विभिन्न भूपालों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं उन्हें संगठित होकर विदेशी शक्तियों से अपने देश की रक्षा नहीं करने देती । [2]

राजपूतों का पारस्परिक द्वेष :-

प्रेमी ने पारस्परिक विद्वेष में उलझे हुए राजपूत नरेशों को राजनैति

१- उद्धार- पहला अंक,दूसरा दृश्य,पृष्ठ-१७
२- शपथ- प्रथम अंक,चौथा दृश्य,पृष्ठ-३३

दुरामिसन्धियों का चित्रण करते हुए उन्हें प्रत्येक में उनसे विमुक्त रहने का सन्देश दिलाता है ।' किस प्रकार राजपूत नरेश पारस्परिक ईर्ष्या - द्वेष, कलह विरोध, आदि से ग्रस्त थे, और किस प्रकार वे राजनीतिक कुचक्रों का शिकार थे, किस प्रकार व्यक्तिगत स्वार्थ, जातिगत अहंकार की भावना उनमें प्रमुख थी, देशहित हो कम । उनकी इन सभी दुष्ट मनोवृत्तियों और संकोर्ण विचार कृत्यों का चित्रण करके प्रेमी ने इन विद्वेषों विरोधों स्वार्थों से मुक्त रहकर व्यक्तिहित की अपेक्षा देशहित की ओर अधिक ध्यान देने का संदेश दिया है जो वर्तमान युग की शासन प्रणाली और शासक वर्ग को ओर भी संकेत करता हुआ प्रेरक सिद्ध होता है ।'[१]

ऊदाजी के पुत्र सूरजमल के लिए मेवाड का सिंहासन प्राप्त करना जीवन का एक मात्र लक्ष्य रह गया, चाहे उसे उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए राक्षस भी बनना पडे । तारा सूरजमल से विवेक के साथ काम करने का उपदेश देती है - ' राजपूत क्षणिक उत्तेजना में आकर ऐसा संकल्प कर बैठता है जिससे केवल उसकी ही नहीं अपितु उसके वंश और देश की अपकीर्ति होती है । हो सकता है कि किसी नादानी में आकर किसी ने तुम्हारा अनादर किया हो किन्तु एक व्यक्ति के अपराध का दण्ड सारे देश को देना उचित नहीं ।'[२] जो राजपूत स्वाभिमान की बीमारी से मुक्त नहीं उनकी ओर संकेत करके तारा का कथन है - ' कोई अपने आपको राम का, कोई कृष्ण का वंशज मानता है, तो कोई अग्निदेव का पुत्र । परिस्थितिवश दो चार सौ वर्ष से कुछ राजपूत राजवंश मेवाड के गहलोतों का नेतृत्व स्वीकार करने को बाध्य हुए हैं, किन्तु उनकी आत्मा ने अहम का

- -

१- हिन्दी नाटक- सिद्धान्त और विवेचन- गिरीश रस्तोगी,पृष्ठ-२७२

२- कीर्तिस्तंभ- दूसरा अंक,पहला दृश्य-पृष्ठ-६६

समर्पण नहीं किया । राजपूतों के संगठन में एक प्राणता नहीं है और वह बालू के कणों की भांति बिखर जाते हैं । भारत की रक्षा करने का उत्तरदायित्व जिन्होंने संभाला था वे परस्पर विभाजित हैं अतएव उनका बल किसी काम में नहीं आता, अपितु आत्मनाश का कारण बना हुआ है । आज पिता के हृदय में पुत्र छुरा भोंकता है और भाई पर भाई तलवार तानता है । [१]

भारत के कदम किस ओर अग्रसर हो रहे हैं उसी ओर दुर्गादास हमारा ध्यान खींचता है - - - - - भारत ने पाप किए हैं- तभी तो यहां औरंगजेब जन्म लेते हैं तभी तो यहां दारा शिकोह की कत्ल किया जाता है, तभी तो यहां शाहजहां को बूंद बूंद पानी केलिए तरसाया जाता है । भारत का सबसे बड़ा पाप है उसकी आपस की फूट । मैं महाराष्ट्र में गया था - मराठों , राजपूतों भारत को अपने समझने वाले मुसलमानों को एक करने केलिए । लेकिन किसने सुनी मेरी बात । सब अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग अलापते हैं । अन्याय से लड़ने का कोई योजनाबद्ध सम्मिलित प्रयास नहीं हो सकता। इसलिये एक एक करके प्रत्येक प्रयास के गले पर औरंगजेब की तलवार आघात कर रही है । सांभाजी की आंखों का निकाला जाना और उसके बाद उसका बध किया जाना- मराठे देखते हैं, राजपूत देखते हैं, एक उदासी से भरी हुई सांझ को अकबर के जहाज को भारत की सीमा छोड़ते देखते हैं । संभाजी के मंत्री कवि कलश को जीभ कटते देखते हैं । अत्याचार के विरुद्ध जहां तहां तलवारें उठती हैं, तलवारों से तलवारें भिड़ती हैं खून की नदियां बहती हैं । [२]

- -

१- कीर्तिस्तंभ- दूसरा अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-६५-६६

२- आन का मान - पहला अंक ,पृष्ठ-२७,द्वितीय सं०२०२१विक्रम

व्यक्तिगत स्वार्थ

व्यक्तिगत स्वार्थ और इच्छा की निन्दा करते हुए 'शतरंज के खिलाड़ी' का मूलराज कहता है -' हमारे देश का संपूर्ण वातावरण विषाक्त हो गया है। हम देश और जाति के सम्मान से भी अधिक व्यक्तिगत इच्छाओं को महत्व देने लगे हैं। आज अलाउद्दीन ने हमारे देश के इतने बड़े भाग पर अधिकार कर रखा है, वह अपने शास्त्र बल के कारण नहीं - बल्कि हमारी ऐक्य बल की निर्बलता के कारण, पारस्परिक फूट के कारण।[१] 'शपथ' का विष्णुवर्धन व्यक्तिगत स्वार्थ को भस्म कर देना चाहता है - 'जन मन देश का जयनाद भूलकर व्यक्ति का जयनाद करेगा तो वह दो चार भगवानों की और सृष्टि भले ही कर ले, किन्तु अपने पराभव को पराजित नहीं कर पाएगा। मैं कहता हूं व्यक्तियों के अहं को श्मशान में ले जाकर जीवित ही चिता पर रख दो। संपूर्ण भारतीय जन समुदाय का अहं देश के सम्मान के महापात्र में ढालकर एकाकार कर दो। किसी व्यक्ति को कोई व्यक्तिगत आकांक्षा न हो तभी हम महाविनाश से व्यक्तियों की भी रक्षा कर सकेंगे।'[२] 'भग्नप्राचीर' में महाराणा संग्रामसिंह चारणियों द्वारा अपनी प्रशंसा का गीत गाया जाना पसन्द नहीं करता। वह कहता है - व्यक्तिपूजा मानव का स्वभाव है और किसी सीमा तक उसका उपयोग भी है। उससे लाभ भी होता है, किन्तु भारत में यह सद्गुण अवगुण की सीमा तक पहुंच गया है। किसी एक व्यक्ति के व्यक्तित्व की चकाचौंध से प्रत्येक देशवासी को अंधा कर देने की आवश्यकता नहीं। हमें व्यक्तियों की भक्ति करने के स्थान पर देश और मानवता का समादार

- -

१- शतरंज के खिलाड़ी, दूसरा अंक, पांचवा, दृश्य, पृष्ठ-७२

२- शपथ- द्वितीय अंक, द्वितीय दृश्य, पृष्ठ-८४

करना होगा ।' १' रक्षाबंधन ' में कर्मवती के शब्द हैं - ' जब तक हम अपने व्यक्तित्व को सुख दुख और मानापमान को देश के मानापमान में निमग्न न कर देंगे, तब तक उसके गौरव की रक्षा असंभव है, तब तक हम मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हो सकते । जिस समय देश पर विपत्ति के बादल घिरे हुए हैं, बिजली कड़क रही है, शत्रु पैशाचिक अट्टहास कर रहे हैं उस समय पृथक पृथक व्यक्तियों जातियों और वंशों के मानापमान और अधिकारों की चर्चा कैसो घोर पाप है - - - -' २ ' शिवसाधना ' का रामदास भी व्यक्तिपूजा के विरोधी है । उनका कथन है - भारतीय चरित्र को एक विशेषण एक सद्गुण उसका बहुत बड़ा दुर्गुण है । उसने व्यक्ति की पूजा को जाना है, लक्ष्य की साधना को नहीं । वह शिवाजी के कहने पर प्राण देने को तैयार है, स्वराज्य की साधना में स्वयं सेवा करने को तैयार नहीं । नेता के पथ प्रदर्शन में इस देश की जनता असाध्य साधन कर सकती है, किन्तु नेता के अभाव में वह अबोध शिशु की भांति असहाय बन जाती है ।' ३

व्यक्तिगत आकांक्षा और स्वार्थ के दुष्परिणामों की और भी ध्यान दिया गया है । ' कीर्तिस्तंभ ' के राजयोगी से प्रेमी ने इस वस्तुता पर प्रकाश डाला है -- ' भारत में क्षत्रियों के वंशाभिमान एवं व्यक्तिगत आकांक्षाओं ने अनेक बार व्यर्थ ही पृथ्वी का रक्त रंगा है, अनेक साहसी प्राणों को बलि दे दी है, देश को अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभाजित कर दिया है । निश्चय ही इससे देश की शक्ति क्षीण हुई है , विदेशी आक्रमणकारियों ने इसका लाभ भी उठाया है ।' ४

- -

१- भग्नप्राचीर-पहला अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-६
२- रक्षा बन्धन- पहला अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-११
३- शिवसाधना-पांचवा अंक-छठा दृश्य,पृष्ठ-१८४
४- कीर्तिस्तम-पहला अंक-सातवां दृश्य,पृष्ठ-५२

भारत देश का यह दुर्भाग्य था कि वह छोटे छोटे राज्यों में विभाजित थी जिससे उसकी शक्ति क्षीण हो गई थी। इसलिए 'भग्न प्राचीर' में मोहम्मद खां कहता है --'भारत के छोटे छोटे राज्यों में विभाजित रहना, असंगठित रहना, भारत की भयानक दुर्बलता है, यही दुर्बलता बार बार विदेशियों को आक्रमण करने का साहस प्रदान करती है। सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने भारत की बिखरी हुई राजसत्ताओं को एक सूत्र में बांधने का यत्न कर कोई अपराध नहीं किया और मैं समझता हूँ भारत के अन्य राजाओं में दूरदर्शिता होती तो भारत के हित में वे खुशी खुशी दिल्लीपति पृथ्वीराज का नेतृत्व स्वीकार करते।' [1] 'अमृतपुत्री' की कणिका देश की दुर्दशा से क्षुब्ध होकर कहती है - 'दुर्भाग्य भारत का ? कोई देश रक्षक सारे भारत को एक मानने और एक होकर देश के विकास और सुरक्षा की बात कहता है तो लोग उसे अप्रासंगिक और अनर्गल प्रलाप कहते हैं। तुम छोटी छोटी बातों को लेकर परस्पर युद्ध करते हो देश के सच्चे हित चिन्तकों को तुम मूर्ख समझते हो। छोटी छोटी सीमाओं के प्रति आस्था रखने का नशा पिलाकर तुम मनुष्यों को पिशाच बनाते हो जो भाई भाई होते हुए भी एक दूसरे के खून के प्यासे बने रहते हैं। तब एक तुमसे भी बड़ा राक्षस आता है जो सबको खा जाता है।' [2]

देशद्रोह

प्रेमी ने देशद्रोह एवं षड्यंत्र जैसी स्वतंत्रता विरोधी शक्तियों के विरुद्ध भी अपनी लेखनी उठाई है। 'उद्धार' की सुधीरा कहती है - यही

१- भग्नप्राचीर - पहला अंक- पहला दृश्य, पृष्ठ-१७

२- अमृतपुत्री, प्रथम अंक, चौथा दृश्य, पृष्ठ-१०४

तो हमारा दुर्भाग्य है कि जिस समय सबका हित विदेशी सत्ता को निर्मूल करने में है उस समय कुछ अदूरदर्शी, स्वार्थी और नीच प्रकृति के व्यक्ति प्रभुता और कंचन की लालसा से देश की पराधीनता की कड़ियाँ को चिरस्थायी करने के प्रयास में है।' [१]

स्वार्थ, अभिमान और क्रोध में आकर जन्मभूमि का हित भूलनेवाले तथा सत्ता एवं सम्मान पाने केलिए प्रतिस्पर्धा की भूल करनेवाले व्यक्तियों की प्रेमी ने भर्त्सना की है। इन लोगों से प्रेमी का उपदेश है कि क्षणिक लाभ केलिए देश के शत्रुओं को मित्र समझने की भूल मत करो।

' शपथ ' में धन्यविष्णु जैसे नर की खाल पहने हुए श्वान को पाटलीपुत्र के राजसिंहासन पर बैठने की लालसा हुई जिससे प्रेरित होकर उसने हूण राजा मिहिरकुल की सहायता की। फिर भी धन्यविष्णु के प्रति मिहिरकुल के मन में घृणा की भावना है। वह कहता है - ' ऐसे पामर प्राणियों को पास बैठाने से भी मुझे घृणा है। अपनी चिरपुरातन संस्कृति पर गर्व करनेवाले भारतवासी हमें बर्बर असभ्य, और हिंसक कहते हैं। किन्तु हम हूणों को इस बात का अभिमान है कि हमने व्यक्तिगत लाभ केलिए अपनी जाति से विश्वासघात नहीं किया। अपने देश और जाति से विश्वासघात करनेवाला मनुष्य गंदी नालियों में रेंगनेवाले कीड़ों से भी निकृष्ट है।' [२]

अपने शत्रु से लोहा लेने के पहले अपनी ही दुर्बलता पर विजय पाने का उपदेश देते हुए तात्याटोपे कहता है - ' हमारा प्रयत्न यह

१- उद्धार - तीसरा अंक, चौथा दृश्य, पृष्ठ-१०४

२- शपथ - प्रथम अंक, चौथा दृश्य, पृष्ठ-३३-३४

होना चाहिए कि देश में कोई भ्रष्टाचार उत्पन्न होने पाए । आज भी अनेक रजवाड़े ऐसे हैं जिनके पास अपनी सेनाएं हैं, जो अंग्रेजों के चरण चूमने में ही अपना कल्याण समझते हैं । उन्हें भारत की जनशक्ति पर विश्वास नहीं । उनमें देश की स्वाधीनता के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देने का साहस नहीं । जनता में भी ऐसे समुदाय है जो स्वाधीनता का मूल्य नहीं समझते । हमें अपने प्रचार के साधनों से देशवासियों का हृदय बदलना है ,' १ देश पराधीनता के पाश में बंध जाने का कारण व्यक्त करती हुई अमीचन कहती है - - - - - --' जब कुछ स्वाधीनता प्रेमी और देशभक्त लोगों ने पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ना चाहा, तो अपने ही लोगों ने इस प्रयत्न को विफल कर दिया ।' २ महाराणा संग्रामसिंह देश की अवनति का कारण स्पष्ट करता है --' हमारे देश में बाप्पा रावल, हम्मीर, कुम्भाजी जैसे अमर शूरों के अवतरित होने पर भी हम भारत भूमि की छाती पर से विदेशी शासक को समाप्त नहीं कर सके - - - क्योंकि हमारे यहां ऊदाजी जैसे व्यक्ति भी जन्म लेते रहे हैं । देशद्रोह , स्वार्थ, और कृतघ्नता ने हमारे राजनीतिक जीवन को कुत्सित कर डाला ।' ३

दूषित राजनीति

आजकल राजनीति के क्षेत्र में ऐसे नेताओं का जमाघट है जो स्वार्थ लिप्सा, दलबंदी और भ्रष्टाचार के कारण घृणा के पात्र बन गए

१- शीशदान , पहला अंक-पहला दृश्य,पृष्ठ-४१

२- शीशदान - पहला अंक - पहला दृश्य,पृष्ठ-४१

३- कीर्तिस्तंभ -पहला अंक,तीसरा दृश्य-पृष्ठ-२१-२२

है, इन नेताओं के प्रति जनता में कोई आदर की भावना नहीं है ।
' नई राह ' में नेताओं के खोखले आदर्शवाद और नैतिक पतन पर चिन्ता प्रकट की गई है । किशोर नामक पात्र अपने धनी मित्र विनोद से कहता है - ' नेताओं की बढ़ती हुई भीड़ पैदा हो गई है । और वे अपनी अपनी ढपली पर अपना अपना राग आलाप रहे हैं । वे गांवों में घूमकर देश की समस्या को समझने के बजाए विदेशी नेताओं के विचारों को पढ़ते हैं और उनमें से भारत की समस्या का हल खोजते हैं । इन स्वयंभू नेताओं के कोहराम में देश की बीमारी को समझनेवाले वास्तविक वैद्यों की बात कोई नहीं सुनता ।' १

निष्कर्ष :-

प्रेमी जी के ऐतिहासिक नाटकों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना के सम्यक् विवेचन के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनके नाटकों ने युग धर्म का निर्वाह ही नहीं किया, अपितु युग के धर्म को भी समझा था । उनके नाटकों में राष्ट्रवाद के सभी पक्षों की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है । उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना को क्षति पहुंचाने वाले तत्वों पर गहरी चोट की, उनसे राष्ट्रीय जीवन को मुक्त कर राष्ट्रीय एकता के प्रयासों के साधनों का उल्लेख किया । उन्होंने अपने युग की देशव्यापी राष्ट्रीय भावना की अन्तश्चेतना का स्पर्श किया, देश के यथार्थ जीवन का सूक्ष्म अवलोकन करके देश जीवन के अनेक अभावग्रस्त परिस्थितियों का विशद चित्र खींचा अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति की अत्याधिक विशद एवं मार्मिक रूप में अभिव्यक्ति दी , अतीत की स्मृति के भैरवनाद द्वारा देशवासियों को पुन: एक बार जगाने का एवं उनके शौर्य को जागृत

१- नई राह- द्वितीय अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-७०

करने का प्रयत्न किया, देश देवता के चरणों पर सर्वस्व समर्पित कर देने की उत्कट अभिलाषा भी प्रकट की, देशवासियों को पारस्परिक एकता और सहयोग स्थापित करने का संदेश दिया । राष्ट्र के भविष्य निर्माण केलिए हरिकृष्ण प्रेमी एक राष्ट्रीय नेता से कुछ कम गतिशील नहीं थे । जयनाथ नलिन के शब्दों को उद्धृत करना उपयुक्त जान पड़ता है --- हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को इतिहास सम्मत साहित्यक प्रेरणा देने में प्रेमी के नाटकों का कार्य किसी भी राष्ट्रीय नेता से कम नहीं । साहित्य की वाणी कभी मूक हो जाती है । भारतीय राष्ट्रीय एकता और सबलता केलिए हमें प्रेमी के नाटक सदा मार्ग दिखाते रहेंगे ।' [१]

- -

१- हिन्दी नाटकार - जयनाथ नलिन , पृष्ठ-११४ ,दूसरा सं० १९६१

पाँचवाँ अध्याय

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में समसामयिक सामाजिक विचार

पाँचवा अध्याय

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में समसामयिक सामाजिक विचार

साहित्य और समाज का पारस्परिक अभिन्न संबंध है जो गंभीर और व्यापक है। साहित्य समाज या सामाजिक जीवन का व्याख्याता होता है और उसे स्पंदन देता है। साहित्यकार समाज में रहनेवाला एक प्राणी है और यह संभव नहीं कि वह युगीन भावधाराओं से परे रह सके। तत्कालीन सामाजिक संस्कारों का प्रतिबिंब उसके साहित्य पर पड़ता है। युगानुकूल पड़नेवाले भावों और विचारों से वह अपने को विमुक्त नहीं कर सकता। सजग साहित्यकार सामयिक परिस्थितियों, समस्याओं और प्रचलित विचारधारा से प्रेरित होकर अपने धर्म का निर्वाह करता है।

हरिकृष्ण प्रेमी प्रमुख रूप में ऐतिहासिक नाटककार हैं। इतिहास के ग्रन्थों से कथानक ग्रहण करते हुए भी प्रेमी ने सामयिक समस्याओं और अपने युग जीवन के आदर्शों की प्रतिष्ठा की है। जब प्रेमी ने कला सृजन केलिए अपनी लेखनी उठाई तब भारतीय जनता में सामाजिक चेतना बड़ी व्यापक और शक्तिशाली हो उठी थी। अत: प्रेमी ने सामाजिक उत्थान को अधिक महत्व दिया था। वे समाज में आमूल परिवर्तन के पक्षपाती थे। उन्होंने समाज की प्रत्येक गतिविधि का अध्ययन किया। उन्हें अनुभव हुआ कि बेकारी, निर्धनता वर्ग संघर्ष, शोषण की मनोवृत्ति ये सब समाज के ढांचे को हिला देती हैं, जातिपांति एवं अस्पृश्यता की भावना, धार्मिक द्वेष, सांप्रदायिकता एवं प्रान्तीयता समाज को जर्जर बना देती हैं। प्रेमी ने इन विकट समस्याओं को अपने नाटकों में

महत्वपूर्ण स्थान दिया और समस्याओं के निराकरण केलिए दिशाएं प्रशस्त की ।

अस्पृश्यता निवारण एवं अछूतोद्धार की भावना :-

छुवाछूत एवं अस्पृश्यता की समस्या समाज का अत्यन्त पेचीदार प्रश्न है जो हिन्दु समाज में व्याप्त सामाजिक वैषम्य और गहरे भेदभाव का सूचक है जो सदियों से धर्म के नाम पर उसका एक अनिवार्य अंग बन गई है । समाज की जड़ों को कमजोर बना देनेवाली इस समस्या के संबंध में गांधीजी के निम्नलिखित कथन में कितनी सचाई है - ' अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं , बल्कि उसमें घुसी हुई सड़ाध है, वहम है, पाप है और उसका निवारण करनाप्रत्येक हिन्दू का धर्म है, उसका परम कर्तव्य है । यदि यह अस्पृश्यता समय रहते नष्ट न की गई तो हिन्दु धर्म और हिन्दु समाज का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा ।' [१]

प्रेमी ने अपने नाटकों के माध्यम से हिन्दु समाज के माथे पर लगे हुए इस कलंक को मिटा देने का पूरा प्रयत्न किया । ' शपथ ' में व्यक्त किया गया है कि अस्पृश्यता की समस्या हमारे समाज के पतन का कारण कैसे बनती है । हिन्दु वर्ण व्यवस्था का अंग होते हुए भी अस्पृश्य अपने

१- गांधीविचार दोहन ,पृष्ठ४१- (गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव- डा० अरविन्द जोशी पृष्ठ-७७ से उद्धृत प्रथम संस्करण-१९७३

अधिकारों से किस प्रकार वंचित रहते हैं, उनके साथ कैसा अमानुषिक एवं क्रूर व्यवहार होता रहता है । मील युवक मालू एक चंडाल स्त्री को बर्बर हूणों से बचाने केलिए जाने लगता है तो क्षत्रिय सैनिक सोमदेव यह कहकर उसे रोकना चाहता है कि एक चंडाल स्त्री केलिए अपनी जीवन संगिनी का सुहाग नहीं लुटवा देना चाहिए । तो मालू पूछता है -' अपने आपको क्षत्रिय - राम और कृष्ण के वंशज, सूर्य और चन्द्र के अंश मानने वाले सोमदेव तुम चंडाल को मनुष्य नहीं समझते । तुम आर्यजन चंडाल और अस्पृश्यों को सेवा का पुरस्कार तिरस्कार से देते हैं ।' सोमदेव की दृष्टि में -- इससे तिरस्कार की कोई बात नहीं , वर्ण और जाति की व्यवस्था समाज की सुविधा केलिए है । सोमदेव को मालू कितनी खरी बात सुनाता है ---' समाज की सुविधा केलिए उन्हें नगर से दूर बसाया जाता है । तुम्हारी सेवा करने जब वे नगर में प्रवेश करते हैं तब उनकी अपवित्र छाया पडने से आर्यों की कंचन काया अपवित्र न हो जाए, इसलिए उन्हें लकडी बजाते हुए आना पडता है । ' शिष्ट समाज पर तीखा व्यंग्य करते हुए मालू आगे कहता है - शिष्ट समाज जो हाथ में सत्ता और धन का आ जाने पर अपने ही समाज के अंगों के स्वाभाविक रक्त संचार को बांधकर उन्हें सुखा डालते हैं - विकास और उन्नति के सारे मार्ग रोककर उन्हें गंदे कार्य करने और गंदे बने रहने को बाध्य करते हैं, जो समाज के शरीर में स्वयं कोढ के कीटाणु प्रविष्ट कर गले हुए अंगों से नाक भी सिकोडते हैं । वे ही शिष्ट समाज के कर्णाधार कहाते हैं । उन्होंने केवल चंडालों को ही नहीं, पुलिंद, शबर, भील ,मीना, गोंड और कोल आदि भारत के आदिवासियों को भी नगरों के सुख साधनों से वंचित कर वन पशुओं की भांति वन वन भटकने को बाध्य कर दिया है । अपने आपको सुसंस्कृत और सभ्य घोषित करनेवाले आर्यों को इस सामाजिक महापाप का मोल चुकाना ही पडेगा । हूणों ने आर्यों पर जो अत्याचार किए है उनसे तो प्राप्त ऋण का ब्याज भी अभी नहीं चुका ।

आर्यों द्वारा प्रपीड़ित पददलित कथित अस्पृश्य और चंडाल एवं आदिवासी वर्ग युग युग का ऋण युग युग तक चुकाएगा । तुम अपनी महत्ता को लेकर यहीं खड़े रहो, लेकिन मैं तो मनुष्यता का कर्तव्य पूरा करने जाता हूं ।"[1] शपथ की सुहासिनी भी अस्पृश्यता विरोधिनी विचार प्रकट करती है ।[2]

प्रेमी छुआछूत की भावना को स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय एकता केलिए विघ्न समझते हैं । वे चाहते हैं कि इसी भावना का सर्वनाश होना ही हितकर है । उनकी इस प्रबल इच्छा की अभिव्यक्ति बेगम महरू के शब्दों द्वारा होती है :- जब तक हिन्दुस्तानी विभाजित रहेंगे, एक दूसरे के दुख दर्द में शामिल नहीं होंगे - जब तक सारे हिन्दुस्तानी एक जाजम पर बैठकर खाना नहीं खा सकेंगे - जब तक इनके यहां आठ घरों केलिए नौ चूल्हों की जरूरत रहेगी, तब तक अलाउद्दीन के अत्याचारों को कौन रोक सकता है ? जो भारतीय विदेशियों से लड़ते समय भी युद्ध करने की अपेक्षा छुआ छूत पर ही अधिक ध्यान रखते हैं उनका उद्धार कैसे हो सकता है ।"[3] शपथ की सुहासिनी को आशंका है कि भारत में अस्पृश्यता जैसी सामाजिक वैषम्य की जो खाइयां खुद गई है वे एक न एक दिन भारत की स्वाधीनता को डस लेंगी ।[4] दुर्गादास की राय में भारत का नक्शा इसलिए नहीं बदलता कि " हमारे जीवन में नैतिकता नहीं, ईमानदारी नहीं, सच्ची वीरता नहीं,

- -

१- शपथ- प्रथम अंक,आठवां दृश्य,पृष्ठ-६६-६७,द्वितीय सं०१९५४
२- शपथ-प्रथम अंक,आठवां दृश्य, पृष्ठ- ६८
३- सांपों की सृष्टि - पहला अंक,दूसरा दृश्य, पृष्ठ-३०
प्रथम संस्करण-१९५६
४- शपथ- प्रथम अंक,आठवां दृश्य,पृष्ठ-७०

मानवता नहीं । हम बंटे हुए विभिन्न राज्यों में, विभिन्न जातियों में विभिन्न धर्मों में । हम एक मन्दिर में भगवान की पूजा नहीं कर सकते । हम एक आसन पर भोजन नहीं कर सकते ।' [1] अंग्रेजो अफसर गार्डन और स्कोट भी इस छुआ छूत की भर्त्सना करते हैं ।' [2]

प्रेमी ने यह भी संकेत किया है कि हिन्दू समाज में ऐसी जाति व्यवस्था के बने रहने से निम्न समझा जानेवाला वर्ग जो निरंतर निकृष्ट व्यवहार का शिकार बनता है, धीरे धीरे इस्लाम या ईसाइयत अपना लेता है और हिन्दू समाज क्रमश: क्षीण होता हुआ समाप्त हो रहा है । 'अमर बलिदान' में शेरबहादुर के शब्द यही व्यक्त करते हैं -' हम मुसलमान जब भारत में आए तब यहाँ की जनसंख्या में दाल में नमक के समान थे । इन्हीं हिन्दुओं से जो नीच ऊंच और छुआछूत की भावनाओं से सताए हुए थे हमारे धर्म में आए । इसी प्रकार वे ईसाई भी बनेंगे ।' [3]

देश में बसनेवाली सभी जातियों में संकुचित जातीय भेदभाव तिरोहित होने की कामना प्रेमी करते हैं । वे देशवासियों को जातीय अनेकता के दुष्परिणामों से अवगत करा कर उन्हें जातीय संगठन का सन्देश भी देते हैं ।

'रक्षाबन्धन' में विजयसिंह की माता श्यामा भीलनी है, पिता राजपूत कुल का राजकुमार है । इसलिए विजयसिंह और श्यामा को

- -

१- शान का मान- पहला अंक पृष्ठ-१६ द्वितीय सं० सं०२०१२

२- अमर बलिदान -प्रथम अंक, द्वितीय दृश्य, पृष्ठ-१७ प्रथम सं० वि०सं०२०२५

३- अमर बलिदान - पहला अंक, दूसरा दृश्य, पृष्ठ-१८

नीच जाति कहकर पुकारा जाता है । इस जातीयम रचना की निन्दा करते हुए भीलराज विजयसिंह से कहता है - यदि वे नीच है तो कोई उसके दरवाजे पर पुण्य की भीख मांगने को आता है ? फूल क्या तोड़कर सड़क पर फेंक देने के लिए है ? न बेटा मैं इस सामाजिक विषमता को उच्च जातियों के अत्याचार को सहन नहीं कर सकता ।'[1] श्यामा भी इस जाति-पांति भेद भाव के विरुद्ध आवाज उठाती है - ब्राम्हणी और भीलनी के एक ही प्रकार की आत्मा होती है, उन्हें एक ही से अधिकार होते हैं, समाज यदि इस बात को मानता, तो जिस सिंहासन पर आज विक्रमादित्य बैठे है उस पर मेरा पुत्र विजयसिंह भी बैठ सकता था - किन्तु वह सिसौदिया वंश में उत्पन्न होकर भी मेवाड़ के राजमहलों को छोड़कर जंगलों में रह रहा है । किसलिए जानती हो? आपके थोथे वंशाभिमान और समाज के अन्याय के कारण ।'[2] 'उद्धार' का सुजानसिंह भी समाज में व्याप्त जातीय भावना पर चोट करते हुए कहता है - - - - - संसार में भारत जैसा महान, धन धान्यपूर्ण कलाकौशल निपुण दूसरा देश कौन सा है, फिर भी शताब्दियों से इस देश पर विदेशियों को आक्रमण करने का साहस हो रहा है, इतने बड़े राष्ट्र को अनेक बार पराजय और स्वाधीनता का अभिशाप सहना पड़ता है सो कब किस पाप से इसलिए कि हम भाई को भी भाई नहीं समझते । हम जातियों में विभाजित है - एक दूसरे से घृणा करते हैं । शत्रु संख्या में भी कम होकर हम पर विजय पाता है क्योंकि हम बहुसंख्या में होकर भी एक रस नहीं, एक अनुशासन में नहीं ।'[3]

- -

१- रक्षाबंधन-दूसरा अंक,तीसरा दृश्य,पृष्ठ-५१ ,३०वां संस्करण
२- रक्षाबंधन-दूसरा अंक,सातवां दृश्य,पृष्ठ-७१
३- उद्धार-तीसरा अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-८६-६०,चतुर्थ सं० १६५६

जातीय एकता पर अभिव्यक्त किए हुए ताप्याटोपे के विचार उच्च कोटि के है । ' मैं केवल एक जाति को मानता हूं वह है मनुष्य । तुम्हें इस बात में सन्देह नहीं होना चाहिए कि तुम मनुष्य हो । अपने हाथ से शर्बत देने में संकोच क्यों हुआ तुम्हें ? जातिप्रथा और छुतछात के प्रेतों ने भारत का सर्वस्व छीन लिया । - - - - - - मैं तो शबरी के झूठे बेर खाने वाले और विदुर के घर भोजन करनेवाले राम और कृष्ण के हिन्दु धर्म का मानता हूं ।' [१]

' प्रकाश स्तंभ ' में वर्णव्यवस्था को शोषण का रूप माना गया है । बाप्पा और राजकुमारी पद्मा का विवाह एक खेल से संपन्न हुआ था । परन्तु यौवन होने पर दोनों का विवाह इसलिए अस्वीकार किया जाता है कि बाप्पा निम्न कुल का है । इस पर बाप्पा काकथन है - मानव मात्र ही एक जाति है । पद्मा और बाप्पा दोनों ही मानव संतान है । दोनों में प्रेम और प्रेम के उपरांत विवाह होना किंचित भी अस्वाभाविक नहीं और न ऐसा करना सामाजिक अपराध है - - - - - समाज में वैषम्य को परिपुष्ट करनेवाली परंपराएं अति प्राचीन हैं । प्रथम तो यह धारणा ही भ्रममात्र है और यदि प्राचीन हो तो भी मानवता के सिद्धान्त के विरुद्ध, अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण परंपराओं का अंत करना मानव का कर्तव्य है ।' बाप्पा नीच और ऊंच के, क्षत्रिय और भील के, राजा और प्रजा के बीच असमानता की खाई को पाट देना चाहता है । अत: वह कहता है - ' जो वस्तुएं जो परंपराएं, जो विश्वास मनुष्य मनुष्य में वैषम्य स्थापित करें उनका मैं परम शत्रु हूं । जातिप्रथा ने हमारे समाज को छिन्नभिन्न कर दिया हममें पारस्परिक भातृभाव समाप्त हो गया, उच्च जातिवालों ने समाज के बड़े अंश

- -

१- शीशदान -पहला अंक,पहला दृश्य पृष्ठ-२०-२२

२- प्रकाश स्तंभ- पहला अंक, पहला दृश्य,पृष्ठ-१५-१६ दूसरा सं० १९६२

को अस्पृश्य और दास की स्थिति में पहुंचा दिया ।'[1] बाप्पा अपने दुर्भाग्य को कोसता है -' मैं ने ऐसे समाज में जन्म पाया जो जन्म केआधार पर मनुष्य और मनुष्य में अंतर मानता है । कुछ दिन पहले तक इसी समाज में जिसमें मैं ने जन्म लिया है मेरी स्थिति भी वही थी जो आज तुम्हारी है और अपमान के आघात से मेरी आत्मा में विद्रोह जाग उठा । बचपन से ही मैं ने अपमान की टीस का अनुभव किया । तभी से सोचा था समाज के जो अपमानित हैं उन्हें एकत्रित कर मैं विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित करूंगा ।[2] हारीत बाबा भी वर्ण और जातियों की मर्यादा को समाप्त देखना चाहता है ---' जातियों का वर्तमान रूप मैं अवश्य ही भारत केलिए अहितकर मानता हूं । जातियों का विधान समाज को खंड खंड कर देनेवाला बन गया है । वर्णव्यवस्था किसी समय भारतीय समाज केलिए सुविधाजनक रही होगी ऐसा मैं मानने को तैयार हूं । यह भी मान लेता हूं कि श्रमविभाजन और धंधों की अधिक व्यवस्था केलिए वर्णों का प्रारंभ हुआ अब जो वर्ण व्यवस्था परशोषण को न्याययुक्त ठहराने का साधन बन गई है । - - - समाज में जितना आदर द्विजों को प्राप्त है उतना शूद्रों को नहीं, और जो आर्य नहीं उन्हें आर्यों के समान सुविधाएं प्राप्त क्यों नहीं है ? - - - भारत समाज में व्यक्ति अपने वर्ण एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार आदृत या अनादृत होता है । हमारी आर्थिक व्यवस्था भी सामाजिक व्यवस्था से इस प्रकार गुंफित है कि उच्च वर्णों के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं कर सका । '[3] बाबा हारीत यह नहीं

- -

१- प्रकाशस्तंभ- पहला अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-१७ दूसरा सं०१९६२

२- प्रकाश स्तंभ-तीसरा अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-१०७-१०८

३-प्रकाश स्तंभ- दूसरा अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-५४-५५

मानते है कि उच्च या नीच जाति में जन्म लेना तो व्यक्ति के गत जीवनों के सु अथवा कु कृत्यों पर निर्भर है । विधि विधान और तथाकथित कुछ धर्म शास्त्रों के निर्माताओं ने ऐसी ही धारणाओं का बारंबार प्रचार कर निम्नवर्ग को अपनी हीनता से सन्तुष्ट रखने का यत्न किया । भाग्य का लेख अमिट समझकर वे अपनी स्थिति से ऊपर उठने का यत्न नहीं करते उनका आत्मविश्वास भी नष्ट हो गया, किन्तु यदि व्यापक दृष्टि से देखें तो इससे हमारे देश की हानि हुई है । हमारा संपूर्ण समाज मानव शरीर की भांति एक है, उसके प्रत्येक अंग को हमें पुष्ट रखना है । उनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा ,घृणा या वैर नहीं होना चाहिए बल्कि सहानुभूति चाहिए ।' [१] हारीत जानते है कि धर्म के आधार पर संपूर्ण भारतीय समाज को एकत्रित नहीं कर सकता । कैसे कर सकते है ? क्या भारतवासियों क कोई एक धर्म है । आर्यो का मूल वैदिक धर्म अपना स्वरूप खो बैठा है । अनेक मत मतांतरों ने जन्म ले लिया है । बौद्ध और जैन धर्म भी अपने आदर्शों और सिद्धान्तों को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं । प्रत्येक धर्म के अवलंबन करनेवाले भारत में केवल अपने धर्म को जीवित रखना चाहते है और इस उद्देश्य की पूर्ति केलिए राज सत्ता पर अपना अधिकार चाहते है और अधिकार पाने पर अन्य धर्मावलंबियों पर अत्याचार करते हैं ।' [२]

' आन का मान ' में जाति पांति की संकीर्ण भावना पर कुठाराघात करते हुए प्रेमी ने दारा से कहलवाया है -- - - - मनुष्य मात्र को मैं अपने जिगर का टुकड़ा समझूंगा । जाति धर्म की सीमाओं को लांघकर हमें केवल मनुष्य बनना है । इसी आदर्श केलिए मैं जियूंगा और इसी

- -

१- प्रकाशस्तंभ-दूसरा अंक पहला दृश्य,पृष्ठ-५६

२- प्रकाशस्तंभ-दूसरा अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-५९

केलिए मरूंगा ।'[१] आहुति में हम्मीरसिंह ने सब मनुष्यों को समान माना है । अपने शत्रु अलाउद्दीन द्वारा निष्कासित मुसलमान सैनिक मीर महिमा को पनाह देकर वह कहता है - मीर महिमा जैसे बहादुर हमारी जाति में शामिल हुए है । - - - - जाति में शामिल होने से मेरा मतलब यह नहीं कि उन्होंने हमारा धर्म स्वीकार कर लिया है । सभी बहादुरों की एक जाति है, चाहे मुसलमान हो, चाहे हिन्दु, चाहे किसी और जाति का, जो वीर है वह हमारा सगा है, वही हमारी जाति का है । इसी दृष्टिकोण से मैं ने मीरमहिमाशाह को अपना भाई बनाया है ।'[२] 'ममता' का रजनीकान्त जातिव्यवस्था को मनुष्यता की विरोधिनी शक्ति के रूप में देखता है - जातियों की सीमाएं कृत्रिम है, जो हमें दुर्बल बनानेवाली है, मनुष्यता के टुकड़े करनेवाली है । स्वभावत: प्रत्येक मनुष्य एक ही जाति का है, मनुष्यता ही उसका धर्म है, यदि अपनी ही जाति में संबंध जोडना स्वाभाविक होता तो हृदय अन्य जाति के व्यक्ति के चरणों पर न्यौछावार ही क्यों होता ?'[३] प्रेमी ने इस दिशा की ओर भी संकेत किया है कि जाति पांति का भेदभाव दो प्रेमपूर्ण हृदयों को अलग कर देता है, उन्हें कभी मिलने न देता । 'बादलों' के पार में हम देखते है कि राधा का विवाह माधव के साथ इसलिए न हुवा कि वे दोनों भिन्न जाति के थे । बेचारी राधा के शब्द कितना करुणापूर्ण है - 'मैं तुमसे मिलना चाहती थी, लेकिन मैं कुलीन ब्राह्मण की कन्या और तुम कायस्थ के छोकरे, हमारे मिलन मार्ग में समाज ने खाई खोद दी थी ।'[४]

- -

१-अमर आन-तीसरा अंक,पृष्ठ-६६ प्रथम सं० १९६४

२-आहुति- पहला अंक,चौथा दृश्य,पृष्ठ-२०,पन्द्रहवांसं०१९६२

३- ममता- पहला अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-१३-१४ चतुर्थ सं:१९५२

४- बादलों के पार- पहला दृश्य-पृष्ठ-३ दूसरा सं० १९६१

श्रीपाल और विजया एक दूसरे से मिलने की इच्छा अपने प्राणों में पालते रहे । दोनों के मिलन मार्ग में कुल का अभिमान और जाति की दीवारें खड़ी थीं जिसके संबंध में श्रीपाल कह रहा है - ' एक है तुम्हारा भाई जयदेव । उसे अपने कुल का अभिमान है । मैं एक साधारण किसान का पुत्र हूं और तुम भारत की सुप्रसिद्ध मालव जाति के मद्र कुल की कन्या हो । पृथ्वी पर पैर रखकर चलने वाला प्राणी आकाश की तारिका की ओर कैसे हाथ बढ़ा सकता है ।'[१]

प्रेमी के नाटकों का एक महान् उद्देश्य राष्ट्रीय एकता है । इसका विशद विवेचन पिछले अध्याय में कर चुके । इस राष्ट्रीय एकता केलिए प्रेमी ने सांप्रदायिक ऐक्य के आदर्श को विशेष महत्व दिया है । प्रेमी जी अपने समय के हिन्दु मुस्लिम वैमनस्य से परिचित थे । अत: उन्होंने इतिहास के आधार पर लिखित अपने नाटकों में इन दो जातियों के बीच सद्भाव का आदर्श प्रतिष्ठित किया है । प्रेमी चाहते थे कि दोनों जातियां धर्मान्धता को छोड़कर सच्चे धर्म -मानव धर्म के अर्थ को समझें । धार्मिक अदालदा के अन्तर्गत सर्वधर्म में समभाव और अहिंसा का बड़ा महत्व है । मन्दिर और मस्जिद में कोई भेद नहीं है । गीता और कुरान में भी कोई अन्तर नहीं है । इसी भावना को प्रेमी ने ' रक्षाबन्धन ' में हुमायूं के मुंह से व्यक्त कराया है -- - - - - - ' हिन्दुओं के अवतार ने और तुम्हारे पैगम्बर ने एक ही रास्ता दिखलाया है । कुरान शरीफ में साफ लिखा है कि ' हमने गिरोह केलिए इबादत का खास रास्ता मुकर्रिर कर दिया है जिसपर वह अमल करता है, इसलिए उस पर झगड़ा न करो ।

- -

१- यह भी एक खेल था -(बादलों के पार) से -पृष्ठ-१८ दूसरा सं०१९६१

तुम्हें साफ बताया गया है कि नेकी यह नहीं कि तुमने इबादत के वक्त मुंह मशरिक की तरफ किया या मगरिब की तरह या इसी तरफ कि कोई जाहिरा रस्मरिवाज कर लो । नेकी की राह तो उसकी राह है जो खुदा पर आखिरत के दिन पर सारी खुदादाद किताबों पर और सारे पैगंबरों पर ईमान लाता है, अपना प्यारा धन रिश्तेदारों, अपाहिजों, गरीबों ,आरत करनेवालों, मांगनेवालों की राहत में और गुलामों को आजाद कराने में खर्च करता है, जो बात का पक्का है, जो डर और घबराहट, तंगी और मुसीबत के वक्त धीरज रखता है । ऐसे ही लोग है जो बुराइयों से बचनेवाले इन्सान है ।' यही बात हिन्दुओं की मजहबी किताबें कहती हैं । फिर मजहब दोनों की दोस्ती के बीच में दीवार कैसे बन सकता है ?' [१]

सामाजिक समानता

प्रेमी ने सामाजिक समानता पर बल दिया है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी समाज में समानता की भावना उत्पन्न नहीं हुई । इसी सामाजिक विषमता को समाप्त करने केलिए ' उद्धार नाटक में सुजानसिंह सामंत गंभीरसिंह को आदेश देते हुए कहता है --' स्वार्थ, लालच, दम्भ और अविवेक का परिणाम है समाज में विभव के पर्वत और अभाव का गहर । हमारा अर्जन अपने लिए नहीं, अपने देश केलिए, मनुष्य मात्र केलिए होना चाहिए । हमें इस बात परकोई अधिकार नहीं कि जब हमारा पडोसी भूख से तडप रहा है तो हम उसे दिखा दिखाकर ५६ प्रकार के भोजनों का उपभोग करें ' - - - - - आज तो यह स्थिति है कि बेचारे

- -

१- रक्षाबंधन - दूसरा अंक,दूसरा दृश्य,पृष्ठ-४८

अधिक पसीना बहाता है और हम उनके श्रम पर मौज मनाते हैं । [1] विषपान में जवानदास के प्राणों में यही सामाजिक असमानता विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित करता है । यह प्रश्न उठता है -' एक महारानी और दूसरी दासी क्यों ? उच्च कुल में जन्म लेने के कारण ही एक व्यक्ति सम्मान और सुविधा का अधिकारी क्यों हो ?' [2] जवानदास समाज को इस विधान को बदलना चाहता है ।

राजकुमारी कृष्णा और एक धीमर के बीच जो वार्तालाप होता है वह सामाजिक असमानता पर प्रकाश डालता है -- धीमर - नहीं कुमारी जी हम लोगों में भला कोई नहीं होता । बनिया, बामन, ठाकुर आदि सभी बड़े आदमी हमें कमीना कहकर पुकारते हैं । भले आदमी हमें कभी न अपने पास बैठाते हैं न भली आदतें हम सीख पाते है ।' [3]

प्रेमी ने ' सांपों की सृष्टि ' में खिजरखां के मुंह से अपने मन की बात स्पष्ट की है कि समाज में विषमता का भाव उत्पन्न करने वाले हम लोग ही है और हम ही इस भावना को स्थापित रखना चाहते हैं । ' अमर आन ' में सामाजिक विषमता का कड़े शब्दों में विरोध किया गया है । बहादुरी रानी को ऊँचे वंश पर अभिमान है । उसके अभिमान को चुनौती देती हुई दासी गुलाब कहती है - ' आप प्रतिनिधि है उनकी जो वैभव में पले है, सम्मान के अधिकारी है, समाज में ऊँचे स्थान पर अवस्थित है । मैं प्रतिनिधि हूँ उनकी जो वैभवशालियों के टुकड़ों पर पलते हैं, जिन्हें

१- उद्धार - तीसरा अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-८७

२- विषपान- दूसरा अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-३६ पंचम सं० १६५८

३- विषपान - दूसरा अंक, दूसरा दृश्य, पृष्ठ-४४

समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, जिन्हें मस्तक ऊंचा करके चलने नहीं दिया जाता - - - - - किन्तु प्रश्न व्यक्तियों का नहीं - प्रश्न समाज का है - वंशों और जातियों का - भद्र और नीच कहे जाने वाले समूहों का है । मनुष्यता के नाते सबको समान होना चाहिए - पर भारत में ऐसा नहीं है । आप भारत की स्वाधीनता की बात करती हैं लेकिन वह केवल धोखा है - कपट है । हम जैसे पद मर्दित लोगों को और भी अधिक पीसने की सुविधाओं की प्राप्ति की आकांक्षा है ।' [1]

प्रेमी यह मानते हैं कि सामाजिक विषमता मनुष्य के स्वार्थ की सृष्टि है । ' कीर्तिस्तंभ ' में पृथ्वीराज इस सत्य की अभिव्यक्ति करता है - ' विषमता मनुष्य के स्वार्थ की सृष्टि है । वैभव और सत्ता के धनी दीन दुखी और पीड़ितों के कष्टों और अभावों को पूर्व जन्म के कर्मों का फल कहकर अपने पापों को अन्यायों को न्यायपूर्ण सिद्ध करने का यत्न करते हैं ।' [2]

पूंजीपतियों का विरोध -

युग के दलित एवं पीड़ित व्यक्तियों के जीवन की समस्याओं को प्रेमी ने अपने नाटकों में समेट कर रख दिया है और उनकी पीड़ा के परिहार केलिए सुझाव भी प्रस्तुत किए हैं । मजदूर और पूंजीपतियों की आर्थिक स्थिति में जो भयानक अन्तर है वह सर्वथा अन्यायपूर्ण एवं अनैतिक है । भारतीय मजदूर अपने दुख और दरिद्रता को अपने भाग्य पर फेंककर दिन

- -

१- अमर आन-तीसरा अंक,पृष्ठ-७७-७८ प्रथम सं० १९६४
२- कीर्तिस्तंभ-पहला अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-११, विद्यार्थी सं०

काटते है । मजदूरों के कठिन प्रयत्न के फलस्वरूप अर्जित लाभ और संपत्ति पूंजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है । संपत्ति के वास्तविक स्वामी और उत्पादक को जीवन के साधारण और अनिवार्य साधन भी दुर्लभ होते है । जो मजदूर अपना खून पसीना करके काम करते है उन्हीं को ये पूंजीपति दाने दाने केलिए तरसाते हैं । जिन कारखानों में इतना कपड़ा बनाया जाता है कि सारा संसार ढक सकता है उन कारखानों के मजदूर खुद चिथड़े लपेटे घूमते हैं । यह कहना अनुचित न होगा कि बड़े बड़े औद्योगिक नगरों के दैत्याकार कारखाने और उनका समस्त वैभव श्रमिक वर्ग की हड्डी पसलियों पर ही स्थित है जिसका बल बूता पाकर ही समाज गतिमान होता है ।

प्रेमी ने अपने सामाजिक नाटक ' बन्धन ' में पूंजीपतियों तथा श्रमिकों के बीच का संघर्ष प्रस्तुत किया है । मिलमालिक रायबहादुर खजानची राम पूंजीवादी चेतना का प्रतिनिधि है जब कि मोहन मजदूरों का नेता है । अन्त में पूंजीपतियों पर श्रमिकों की विजय भी दिखाई गई है । ' बन्धन ' की भूमिका में प्रेमी ने लिखा है - - - - समाज के कुछ व्यक्तियों ने लक्ष्मी को अपने यहां बन्दी बना रखा है । इसलिए हिंसा का तांडव चल रहा है । इस तांडव को रोकने के लिए लक्ष्मी को पूंजीपतियों के बन्धन से मुक्ति मिलनी चाहिए । कैसे ? इसका उत्तर समाज के नेता सोचे ?' [1]

स्वर्ण की प्यालियों में सुरा की मदिरा पीकर मस्त रहनेवाले लोगों के पास आहत हृदयों की कहानी सुनने केलिए समय नहीं । खजांचीराम जैसे पूंजीपतियों के संबंध में सरला ने जो कुछ कहा वह ठीक ही है - हम हो

- -

१- बन्धन - (भांकी-प्रथम संस्करण की)-पांचवा सं० १९५६,पृष्ठ-५

२- बन्धन-पहला अंक, पहला दृश्य,पृष्ठ-१२

तो इनकी मोटर के पहिए हैं । ये हमपर चढ़कर ही सैर करने जाते हैं ।' मोहन भी अपनी पूंजीवादी विरोधी भावना व्यक्त करता है - राय बहादुर साहब, डाका आप डालते हैं जो मजदूरों के परिश्रम से आये हुए रुपये को अपनी तिजोरी में डाल लेते हैं । विद्रोह आप कर रहे हैं जो अपने मजदूरों को भूखा मारते हैं । यह विद्रोह है, प्रकृति के साथ विद्रोह है ।' [२] समाज के दलित वर्गों के हृदयों पर अत्याचार रूपी हथौड़ों का प्रहार करनेवाले इन पूंजीपतियों का हनन करने को वाणी प्रेमी देते हैं । ऐसा क्रान्तिकारी सन्देश देते हुए हम मोहन को देखते हैं:- - - - - - आपने गरीबों की हड्डियों पर जो महल खड़ा किया वह ज्यों का त्यों खड़ा रहेगा । हमें तो आपके महलों में से वे ईंटें निकाल लेनी है जो ईंटे नहीं इन गरीब मजदूरों की लाशें है । यह पूंजीवाद का भवन हमें समाप्त कर देना है ।' [३]

प्रेमी ने मजदूरों को आपस में पत्तलों की जूठन केलिए छीना झपटी दिखलाई है । रहीम लक्ष्मण से मजदूरों की गरीबी की ओर इंगित करता हुआ कहता है - आजकल बेकारी, गरीबी और कंगाली क्या कम है । हमारी हालत कुत्तों से भी बदतर है । जो पत्तलों की जूठन हमारे सामने डाली जाती है उसकेलिए भी छीना झपटी जारी है ।' [४] इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि जहां पत्तलों की जूठन पर भी छीना

- -

१- बन्धन- पहला अंक, पहला दृश्य,पृष्ठ-१२

२- बन्धन- पहला अंक, दूसरा दृश्य,पृष्ठ-१७

३- बन्धन - पहला अंक, दूसरा दृश्य, पृष्ठ-१६

४- बन्धन - पहला अंक, चौथा दृश्य,पृष्ठ-२५

भ्रष्टाचार ही वहां की आर्थिक व्यवस्था कैसी होगी ?

गरीब मजदूरों की नग्नमूर्ति को सरला के शब्दों द्वारा प्रेमी ने खड़ा कर दिया है। वह कहती है - कल बसन्ता की पत्नी का इसलिए देहांत हो गया कि इलाज केलिए पैसे न थे। लक्ष्मण कल आया था कि दो दिन से उसने कुछ नहीं खाया। रहीम के बच्चे के पास पहनने को एक चीथड़ी भी नहीं। इसी तरह पांच हजार मजदूरों की कहानियाँ है।' [1]

रुपये के मोह में मनुष्यता को भूलकर मजदूरों को कीड़े मकोड़े समझने वाले पूंजीपतियों के प्रति प्रेमी के मन में अत्यन्त घृणा की भावना है। ऐसे लोगों से उनका आदेश है - ' रुपये को अपने सिर न चढ़ने दो मनुष्य, रुपये को मनुष्य का सुख न छीनने दो मनुष्य । रुपये को मनुष्य का अपमान न करने दो मनुष्य।' [2]

जिस वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के कारण मानव दो वर्गों में - शोषक और शोषित, बंट चुका है उससे प्रेमी असन्तुष्ट है। आज भी स्वतंत्र भारत में गरीबों का शोषण हो रहा है। प्रेमी ने ' संरक्षक ' में किसानों पर होनेवाले अत्याचारों एवं शोषण का सच्चा खाका उपस्थित किया है। जालिमसिंह किशोरिसिंह का संरक्षक है। वह जनता का रुपया लूट लूट कर अपना घर भरना चाहता है। वह कई किसानों की भूमि हड़प कर अपनी भूमि में मिला लेता है। कुछ किसान आपस में वार्तालाप कर रहे हैं। एक किसान जालिमसिंह को महात्मा मानता है।

- -

१- बन्धन- पहला अंक, सातवां दृश्य, पृष्ठ-३४

२- छाया- तीसरा अंक, पांचवा दृश्य, पृष्ठ-८०, चतुर्थ सं० १९५८

परन्तु दूसरा किसान कहता है - उसका महात्मापन हमसे पूछ जिनकी जमीनें किसी न किसी बहाने से छीनकर उसने निजी जोत में ले ली हैं। आज उसके अन्नागारों में करोड़ों रुपयों का अन्न भरा हुआ है। हाडौती के प्रदेश की आधी से आधी जोती जा सकनेवाली जमीन आज उसकी बुद्कारत में है। जो आदमी गरीब किसानों की भूमि और जीविका हड़पने से नहीं चूका उसे राजगद्दी का लोभ हो तो आश्चर्य की बात ही क्या ?'[1]

'स्वप्नभंग' में भी शोषण की समस्या को उठाया गया है। कासिमखां जैसा उच्चाधिकारी गरीब प्रकाश की झोंपड़ी पर अपना महल बनवाना चाहता है। वह एक सैनिक को आदेश देता है - यह स्थान हमारा महल बनवाने केलिए उपयुक्त है। इस झोंपड़ी को आप खुदवा दो।'[2] 'विषपान' में भी शोषकों की हृदयविदारक अवस्था पर सहानुभूति प्रकट की गई है। बड़े बड़े राजा महाराजा विवाहों जैसे अनेक अवसरों पर पानी की तरह रुपया बहाते हैं। परन्तु वे रुपया गरीबों की कमाई से वसूल करते हैं। रामी और श्यामा की बातचीत सुनिए - 'धन संग्रह करने का कर्म तो इन्हीं मोटे मोटे लोगों के हाथों में होता है और ये अगर स्वयं अपनी जेब से नाममात्र को देते हैं। अधिकांश गरीबों की गाढ़ी कमाई में से छीना जाता है। सच तो यह है कि हम लोगों को दोनों समय भर पेट अन्न भोजन भी नसीब नहीं होता - तिस पर जब ऐसे दंड लग जाते हैं तो हमारी आत्मा तिलमिला उठती है खुशी की बात भी मुसीबत का सन्देश बन जाती है ?'[3]

- -

१- संरक्षक-दूसरा अंक- पहला दृश्य, पृष्ठ-६२-६३, १६५८

२- स्वप्नभंग-तीसरा अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-८६-६०, चौथा सं० १६५२

३- विषपान-पहला अंक, चौथा दृश्य, पृष्ठ-२१

अकाल

भारत में स्वतंत्रता के पहले और बाद में भी अकाल बहुत पड़े। निर्धन जनता इसका सामना करते थक गई है। प्रेमी ने ' शतरंज के खिलाड़ी ' में अकाल की समस्या को उठाया है। जोतसिंह दो वर्ष की खाद्य सामग्री एकत्र करना चाहता है। परन्तु रत्न सिंह उससे पूछता है कि क्या अकाल की सम्भावना है। इस पर जोत सिंह कहता है--'दुर्भिक्ष तो यहाँ के लिए रोज की बात है।' [१] परिणामस्वरूप कृषि नहीं होती एवं जनता अनाज के लिए त्राहि -२ करने लगती है।

देश की निर्धनता

प्रेमी ने देश की दरिद्रता एवं निर्धनता के क्रूर अहसास को और भी संकेत किया है। भारत ऐसा देश है जहां एक ओर गरीब व्यक्ति भूखे मर रहे हैं तो दूसरी ओर धनवान व्यक्ति ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते है। सबसे बड़े दुख की बात यह है कि धनी वर्ग अधिक धनवान होते जा रहे हैं निर्धन वर्ग अधिक निर्धनता की गहरी खाई में गिरते जा रहे हैं। धनी वर्ग के अन्याय का विरोध करते हुए ' नई राह ' में किशोर कहता है -

------- मुझे विरोध इस बात से है कि पैसेवाले निर्धनों को उठाने का अवसर नहीं देता। उन्हें ऐसी स्थिति में रखना चाहते हैं कि उन्हें पैसेवालों के उपकार पर जीवित रहना पड़े।' [२] देश में अधिकांश लोगों को पेट भर भोजन नहीं मिलता, वस्त्र नहीं मिलता, रहने को झोंपड़ी नहीं। जब अमीर लोग मखमली गद्दे पर लेटकर स्वर्ग का सुख

१- शतरंज के खिलाड़ी - पहला अंक,पांचवां दृश्य,पृष्ठ-२७

२- नई राह -द्वितीय अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-६८ प्रथम सं०१९६८

भोग रहे हैं तो गरीब माघ पूस के जाड़े में ठिठुरता हुआ रात काट देते हैं। देश की ऐसी आर्थिक विषमता प्रेमी की असह्य थी, एक ओर धन का एकत्रित होना तथा दूसरी ओर लाखों का भूखा मरना वे पाप और अन्याय समझते थे। ' शिवसाधना ' में रामदास का हृदय गरीबों की निर्धनता देखकर भर भर आता है। वह शिवाजी से कहता है - ' मैं ने बचपन से आजतक भ्रमण करने में अपना जीवन व्यतीत किया। इस भ्रमण में मैं ने जन्मभूमि का जो रूप देखा उससे मेरा हृदय टूक टूक हो गया। मैंने देखा कि धन संपत्ति सब समाप्त हो गई। सब प्रदेश सुनसान और निस्तब्ध हैं। जनता के पास खाने केलिए अन्न नहीं, पहनने ओढ़ने को कपड़े नहीं। घर बनवाने को उपादान नहीं। यह देखकर मेरे हृदय में हाहाकार गरज उठा।'[1] ' स्वप्न भंग ' में शाहजादी जहांनारा के मन में गरीबों के प्रति सहानुभूति है। आकाश में उदित चन्द्रमा की ओर देखकर वह जो कुछ कहती है वे शब्द कितने मर्मस्पर्शी हैं - ' तुम अंधे हो चांद। तभी तो इतने निर्लज्ज होकर मुस्कुरा रहे हो। अंधे हो उसी तरह जिस तरह आजकल के संपत्तिवान और शक्तिशाली मनुष्य। बाहर की झोंपड़ी में चार चार बच्चों की मां अपने भूखे नंगे बच्चे को कंकरीली भूमि पर निद्रालीन पड़े देखकर रो रही है। और श्रीमानों की कोठियों में वेश्या की स्वर लहरी गूंज रही है। लोग आज मनुष्य धर्म को भूल गये हैं। मैं कैसी अभागिनी हूं जो शाहजादी हूं (सम्राट की पुत्री हूं। सम्राट कैसा निष्ठुर नाम है यह। इस शब्द के साथ कितने कटे हुए मस्तक, रक्त की सरिताएं विधवाओं का करुण क्रन्दन याद आ जाता है।[2] प्रकाश नामक बूढ़े

- -

१- शिवसाधना - पहला अंक, छठा दृश्य, पृष्ठ-४३, आठवां सं० १९७०
२- स्वप्नभंग-दूसरा अंक, पांचवां दृश्य, पृष्ठ-७१

मज़दूर और उसकी बेटी वीणा के वार्तालाप द्वारा प्रेमी ने गरीबों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। '- - - - ' गरीबों के दुख को न कोई जान पाता न कोई उसे महत्व देता। गरीबों की वेदना का संसार में मूल्य ही क्या ? - - - - - - - - - - अमीरों का निर्दय वैमनस्य हम निर्धनों की आकांक्षाओं को चकनाचूर करता हुआ थह थहाता चलता ही रहता है। - - - धनवान अपना दुख ताजमहल को भांति संसार की आंखों में अंकित कर जाते हैं - कवि अपनी वेदना काव्यों में लिख जाते हैं - किन्तु हम निर्धन मजदूर जिनके पास न धन है, न विद्या है, शून्य से ही आत्मनिवेदन करते हैं। हमारी सहानुभूति में किसकी आंखों में आंसू आयेंगे। गरीब तो वह रेगिस्तान है जहां प्रकृति के बादलों नहीं आते। आते हैं तो बरसते नहीं, जो दो चार बूंदे पाकर भी धन्य हो जाते हैं। - - - - आप वैभव संपन्न व्यक्ति ताज-महल बनाकर संसार से कहते हैं हम बड़े दुखी हैं। किन्तु हम मजदूर अपने दुख को - आत्मवेदना को हृदय के कब्रिस्तान में दफनाए रखते हैं - हम दूसरों के सुख दुख की तस्वीरें बनाने में जीवन बिता देते हैं। संसार वैभवशालियों के दुख को देखता है। अभाग्य के शिकार अभागे लोगों के दुखों को और भी जानता है।' [१]

प्रेमी अमीर और गरीबों के बीच की विशाल खाई पाटना चाहते हैं। उनकी यह अभिलाषा तारा के स्वरों में फूट पड़ी है। तारा कहता है -- ' आज सामाजिक व्यवस्था बड़ी त्रुटिपूर्ण हो गई।

- -

१- स्वप्नभंग- पहला अंक,चौथा दृश्य,पृष्ठ-२५,२७,२८

मनुष्य मनुष्य के बीच भेदभाव की दीवारें खड़ी हो गईं । हम एक दूसरे के दुख में भाग लेने के मानव धर्म को भूल गए । स्नेह और सहानुभूति के उच्चतम मानवीय गुण आज मूर्खता के लक्षण समझे जाते हैं । जिनके पास शक्ति और धन है उनके हृदय से मानो मनुष्यता नष्ट हो गई है । वे अपनी वासना के बन्दी बन गए हैं । - - - - - - मैं सम्राट नहीं मनुष्य बनना चाहता हूं । मैं धनी निर्धन, विद्वान, अविद्वान और छोटे बड़े का भेद मिटाना चाहता हूं । मैं चाहता हूं संसार एक मजदूर के पुत्र की मृत्यु का दुख भी उतना ही अनुभव करें जितना कि वह शाहजहां की पत्नी की मृत्यु का करता है । [१]

पुलिस का अत्याचार

किसी भी देश में पुलिस का कर्तव्य है शान्ति- सुव्यवस्था की स्थापना । लेकिन वे जनता को डरा - धमकाकर या उन्हें झूठे अभियोगों में फंसाकर धन लूटने का प्रयास करते हैं । ' बन्धन ' में पुलिस के ऐसे अत्याचारों की ओर प्रेमी ने संकेत किया है । मिल मालिक खंचाचीराम की बेटी मजदूरों की मदद करना चाहती थी, इसलिए वह अपनी सहेली को अपने घर से कुछ जेवर , पिता से बिना पूछे ही दे देती है । लेकिन उसकी मेहरबानी से सरला के भाई पर मुसीबत आती है । पुलिस मोहन को अपराधी समझकर उसे - जेल ले जाती है, वास्तविक अपराधी को सजा नहीं देती । अपनी मांगों केलिए जुलूस निकालनेवाले मजदूरों पर पुलिस को निर्दयतापूर्वक गोली चलाते हुए दिखाकर प्रेमी ने पुलिस की दमननीति

- -

१- स्वप्नभंग-पहला अंक,चौथा दृश्य,पृष्ठ-२६

का परिचय दिया ।

धार्मिक पाखण्ड

धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्डों से भी प्रेमी ने अपने पाठकों को परिचित कराया है । जनता की मूर्खता और अन्ध-श्रद्धा का अनुचित लाभ उठाकर कुछ पुरोहित वर्ग अपनी जीविका चलाते हैं । इन शोषकों के हाथ में ईश्वर और धर्म एक भीषण अस्त्र बन चुका है । आज तो मन्दिर के पुजारी एवं धर्मगुरु जनता द्वारा देवता पर चढ़ाया हुआ धन भोगविलास में फूंककर आनन्द केलि मनाते दिखाई पड़ते हैं । तपस्या और साधना के स्थान पर उनके जीवन में सुखोपभोग -लालसा आ बैठी है । प्रेमी ने ऐसे पुजारियों की अच्छी पोल खोलते हुए ` ढेढ़ अरब ` में लिखा है कि मन्दिरों में जो पैसे भगवान के नाम पर चढ़ाये जाते हैं वे शराब में समाप्त किए जाते हैं । कमाण्डर नागेश रीटा को पूरी स्थिति से अवगत करते हुए कह है - उस चढ़ावे के रुपयों को तुम्हारे मन्दिर का मोटा पुजारी शराब गांजे , चरस और रण्डी बाजी में खर्च कर डालता है ।' २

साधुओं के उपदेश सुनकर कर्तव्य विमुख न होने केलिए प्रेमी लोगों को चेतावनी देते हैं । साधु महन्त धर्माचरण करने के बहाने जनता को भुलावे में डालते हैं । ऐसे साधुओं को संकेत करके गुरु रामदास कहता है - ' दुख तो इस बात का है कि जो समाज के पथ प्रदर्शक थे गुरु थे उन्होंने उल्टी गंगा बहाई, महात्मा त्यागी और लोक शिक्षक, मोक्ष के स्वप्न में वास्तविकता को भूल गये । स्वर्ग की साधना में भौतिक विश्व को गंवा उठे । उन्हें न माला ही मिली , न राम । ये वेदान्त लोग मूर्खो

- -

१- बन्धन- दूसरा अंक, सातवां दृश्य,पृष्ठ-६६

२- ढेढ़ अरब, पहला अंक,दूसरा दृश्य-पृष्ठ-३०

मरते हुए देशवासियों से कहते हैं, तुम्हारे सामने माता, स्त्री, पुत्र और कन्याएं भूख से मरती हैं तो मरने दो, तुम विचलित मत हो । शान्त और समाहित होकर हरि-नाम स्मरण करो । अनाहार के कारण आर्तनाद करते हुए पुत्र कलत्रों की क्रन्दन ध्वनि को मृदंग और करताल की ध्वनि में विलीन कर दो । उपवास से भयभीत मत हो । यहां उपवास करोगे तो परलोक में इन्द्रपुरी में स्थान मिलेगा, पहनने केलिए पारिजात माला मिलेगी और भोजन की जगह अमृत । इस प्रकार के असंगत उपदेशों के अजोणों से लोग कर्तव्य विमुख हो गए । - - - - मैं कहता हूं माया निरा प्रपंच नहीं है । जनता की सांसारिक उन्नति से वंचितों एवं पीड़ितों की सेवा से लोक कल्याण होता है । लोककल्याण असीम परोपकार है और परोपकार से लोक और परलोक दोनों में परमपद प्राप्ति निश्चित है । केवल करताल और मृदंग ध्वनि से भूखे राष्ट्र का पेट नहीं भरा करता, केवल तुलसी की माला से शांति प्राप्त नहीं हो सकती । देश की आर्थिक स्थिति सुधारना सर्वप्रथम कर्तव्य है और वह तब तक नहीं सुधर सकती जब तक देश पराधीन है, परतंत्र है । [१]

नारी

नारी अनन्त काल से समाज की मुख्य शक्ति रही है । इस शक्ति के विदा्त तथा मूर्च्छित पड़े रहने पर समाज के स्वस्थ तथा उन्नत होने की संभावना सर्वथा असंभव है । इस यथार्थ से अवगत होकर प्रेमी ने समाज में नारी की दयनीय स्थिति का सजीव आलेखन कर नारी की रक्षा केलिए समाज को सावधान किया तथा उसे समाज में समुचित स्थान

१- शिवसाधना- पहला अंक, छठा दृश्य, पृष्ठ-४३-४४

दिलाने की वकालत भी की । वेश्या वृत्ति, विधवा विवाह, बाल विवाह दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा आदि नारी समाज की प्रमुख समस्याएं हैं । प्रेमी नारी समाज की इन विकट समस्याओं को अपने नाटकों में स्थान दिया है और इन समस्याओं का अन्त करने की ओर ठोस प्रयास भी किया है ।

वेश्या समस्या

वेश्या समस्या समाज की अति विकट समस्या है । सौन्दर्य की हाट में पैसे के लिए शरीर बेचनेवाली नारियों को प्रेमी ने समाज की छाती का कोढ़ बताया है ।' [1]

प्रेमी ने ' बन्धन ' , ' छाया ' , ' ममता ' , ' शीशदान ' ' विषपान ' आदि नाटकों में वेश्या समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार किया । उन्होंने इस सत्य की ओर भी संकेत किया है कि वेश्याएं जन्म से वेश्या नहीं होतीं, समाज ही उन्हें इस ओर घसीटने का प्रयत्न करता है, समाज का अन्याय ही उन्हें पाप की गन्दी नाली में धकेलता है । अतएव प्रेमी नारी कोनहीं समाज की निन्दा करते हैं । रूप के बाजार में वही स्त्रियां आती हैं जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मान पूर्वक आश्रय नहीं मिलता या आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती हैं । इन दोनों प्रश्नों का हल कर दिए जाएं तो अनेक स्त्रियों को वेश्या बनने से बचा सकते हैं । बन्धन की उर्मिला उचित संरक्षण के अभाव में वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए विवश होती है । उसके सामने इसके सिवा और कोई मार्ग

- -

१- कीर्तिस्तंभ- पहला अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-१५

नहीं था । ललिता के पति के हाथ में किराये देने केलिए रुपये नहीं, तो घर का मालिक मजिस्ट्रेट उसे जेल भिजवा देता है । ललिता को अपनी वासना तृप्ति का शिकार बनाने के बाद मजिस्ट्रेट उसे घर से बाहर निकाल देता है । ललिता को कोई ठिकाना न रहा, उस अवस्था में वह वेश्या बनने केलिए बाध्य हुई । यदि समाज से उचित संरक्षण प्राप्त होता तो इस भांति उसका पतन न होता ।

समाज और परिवार द्वारा कलंकित घोषित किए जाने पर नारी केलिए और कोई विकल्प नहीं रह जाता, उसे सुधार केलिए कोई अवसर नहीं दे पाता इसलिए उसे अपना शरीर बेचकर जीवन निर्वाह करना होता है, ' शीशदान ' में प्रेमी एक ऐसी नारी को प्रस्तुत करते हैं । अजीजन को कुछ फिरंगी सिपाही उसके गांव से उठा ले गए थे । उन्हें रोकने का साहस गांव में किसी को न था । अजीजन ने प्राण पण से यत्न करके अपने आपको उनकी पशुता से बचा लिया, लेकिन जब वहाँ से भाग कर घर आयी तो अपने लिए द्वार बन्द पाए । उसे कहीं कोई शरण न मिला । भगवान ने उसे सौन्दर्य दिया था । गाना और नाचना उसने बचपन में सीखा था । जो इन चीजों का व्यापार करते थे उन्होंने अजीजन को शरण दी । सामाजिक व्यवस्था के संबंध में वह कहती है - ' किन्तु सबसे अधिक दुख तो पवित्रता का पाखण्ड करनेवाले समाज की कायरता के कारण मुझे आया । आत्मा की अमरता पर विश्वास करनेवाले गीता के पुजारी शत्रु के आगे भीगी बिल्ली बन जाते है और मासूम बच्चियों का गला घोंटना अपना धर्म मानते हैं । गीता का पाठ नित्य करता है, किन्तु उसके अनुसार आचरण नहीं करता, भगवान कृष्ण की मूर्ति पर फूल तो बहुत चढाते हैं, किन्तु उनके दिखाये पथ पर चलने वाला कोई नहीं ।' तात्याटोपे की राय में समाज है वास्तविक शत्रु जिससे अजीजन को

उपदेश देता है - यह आत्मघात समाज स्वयं अपना शत्रु है अजीवन । मैं अपने शरीर के एक अंग को काटकर फेंक देता हूं तो अपनी ही हानि करता हूं। हमारा समाज अपने शरीर के अंगों को शताब्दियों से काट काटकर फेंकता चला आ रहा है - - - - ।' [१]

प्रेमी ने इस यथार्थ की ओर भी संकेत किया है कि कई बार माता पिता आर्थिक पराधीनता से विवश होकर अपनी लड़कियों को वेश्यावृत्ति धारण करने को मजबूर करते हैं। सेठ करोड़ीमल के शब्द सुनिए - - - इसी महानगरी बंबई में कितने ही मां बाप अपनी बेटियों को बेच रहे हैं। [२] 'छाया' में हम माया को अपने माता पिता की प्रेरणा से वेश्यावृत्ति अपनाती हुई देखते हैं। वह पांच महीने के गर्भ के बच्चे को गर्भपात कराकर नदी में फेंक देती है। प्रकाश नामक कवि माया से सहानुभूति रखता है और माया इस घटना को बड़े दर्दनाक शब्दों में व्यक्त करती है - वह बालक पूरा नहीं था। मांस का लोथड़ा था, केवल पांच मास मेरे पेट में रहा था। दो दिन से घर में ही सन्दूक में बन्द पड़ा था। आज जागने वालों को आंख बचाकर आ पाई हूं।' [३] माया अपनी पतित अवस्था के लिए मातापिता को जिम्मेदार मानती हुई दर्द भरे शब्दों में कहती है - - - 'उन्हें इज्जत के साथ रहना है, दोनों लड़कों को कालेज में पढ़ाने का खर्च देना है, पिता जी को शराब पीने केलिए पैसा चाहिए।' [४]

- -

१- शीशदान - पहला अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-१२-१३

२- नर्इराह - तृतीय अंक, दूसरा दृश्य, पृष्ठ-६८

३- छाया- पहला अंक, चौथा दृश्य पृष्ठ-१४

४- छाया - पहला अंक, चतुर्थ दृश्य, पृष्ठ-१५

वेश्यावृत्ति के विस्तार का कारण पुरुष की कामुक प्रवृत्ति है। पुरुष नारी की असहाय स्थिति का लाभ उठाकर उसके शरीर को क्रीड़ा का साधन बना लेता है। 'कीर्तिस्तंभ' में यमुना के नारीत्व का, दिल्लीपति द्वारा अनादर किया गया था, इसलिए यमुना के मन में दिल्लीपति के प्रति क्रोध था। यमुना की दृष्टि में जिसका नारीत्व कभी समाप्त हो चुका था, उसके लिए धर्म अधर्म की परवाह करने की कोई बात नहीं वह कहती है - मानव अनेक परिस्थितियों का दास बन जाता है, विशेष रूप से नारी जो प्रकृति से अबला है नारी के उज्वल जीवन पर कालिमा का एक छींटा भी परिस्थितियों के दबाव के कारण पड़ जाए तो उसे धो सकने का अवसर संसार देता नहीं। समाज पुरुष की अपेक्षा नारी पर अधिक निर्दय है। सब ओर तिरस्कार पाकर नारी का दुखी और विद्रोही मन पुरुष की निष्ठुरता से बदला लेना चाहता है और पुरुष की कुत्सितता को उत्तेजित कर उसकी नग्नता में वह आनन्द लेता है, पुरुष का कोई ठिकाना नहीं, वह सीता को भी कलंक लगाने से नहीं चूका।"[1] पुरुष की लम्पटता के विरुद्ध अजीजन अपना क्षोभ प्रकट करती है - पुरुष सिंह है और नारी मृग। प्रेम के बाण से वह नारी का वध करता है। पुरुष स्वामी है, शासक है, बलवान है। नारी दासी है। उसकी प्रत्येक सांस पुरुष की दया पर अवलंबित है, वह अबला है। पुरुष उससे खेलता है जैसे बिल्ली चूहे को पकड़कर उससे खिलवाड़ करती है। प्रेम ममता सम्मान आदि कैसे कैसे सुन्दर नाम रखे हैं पुरुष ने अपने शस्त्रों के जिनसे वह नारी के हृदय को छेदता है।[2] प्रेमी ने यह प्रश्न भी उठाया है कि एक वेश्या का अनेक व्यक्तियों से प्रेम का खेल खेलना तथा एक राजा

१- कीर्तिस्तंभ- दूसरा अंक, चौथा दृश्य, पृष्ठ-८६-८७
२- शीशदान - पहला अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-८-६

का अनेक रानियाँ तथा रखैलियां रखना क्या दोनों समान नहीं है ? समाजक्यों राजा का आदर करता, क्यों वेश्या का अपमान करता है और क्यों उसे घृणा करता है ।' [१]

नारी को एक बार वेश्या बना देने पर उसे नारीत्व से वंचित करा देता है । यह प्रथा आगे इसलिए बढ़ती रहती है कि वेश्या की लड़कियों को भी वेश्या ही बनना पड़ता है । समाज उन्हें अच्छे रूप में स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं होता । इस अस्वस्थ परंपरा के प्रति प्रेमी का आक्रोश ' कीर्तिस्तंभ ' के संग्रामसिंह के स्वरों में फूट पड़ा है । संग्रामसिंह वेश्या की पुत्री को भी समाज में सद्कुल की कन्या के समान विश्वास और आदर प्रदान करने का समर्थक है । वह कहता है - पापी का पुत्र पुण्य के मार्ग परअग्रसर होना चाहे तो समाज को उसका मार्ग प्रशस्त करना चाहिए । - - - प्रत्येक व्यक्ति हमारे समाज का अंग है - समाज की शक्ति है । समाज के अंगों को हम काट काट कर फेंके अथवा उन्हें गलने सड़ने दें तो समाज दुर्बल होगा ।' [२] ' विषपान ' में महाराजा जगतसिंह को वेश्या केसरबाई का जीवन एक राजपुत्री के जीवन के जैसे पवित्र लगता है । लेकिन राजा के सामंतगण एक वेश्या के आगे सिर झुकाने की अपेक्षा सर कटाना पसन्द करते हैं । सामंतों से राजा का कथन है - मेरे वीर और बुद्धिमान सामंतों मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं ने परंपरागत राज मर्यादा के विरुद्ध कार्य किया है । जिन संस्कारों और जिस वातावरण में आप पले हैं उसके कारण आपको मेरा आचरण अति नीचतापूर्ण जान पड़ता है । किंतु मैं आपसे पूछता हूं कि एक भोली

- -

१- विषपान - तृतीय अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-८०

२- कीर्तिस्तंभ- पहला अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-१०

बालिका जिसमें रूप भी है और गुण भी है, पाप पथ पर चलने से बचाना चाहती है तो क्या उसे धक्का देकर फिर नरक में धकेल देना चाहिए। क्या उसे आश्रय और सम्मान न देना चाहिए ? - - - आप लोग चाहते हैं कि पाप परदे के पीछे पनपता रहे। आप नहीं चाहते हैं कि पाप के पथ पर जानेवालों को पुण्य मार्ग पर आने का अवसर दिया जाय। जो एक बार भूल से या परिस्थितियों के दबाव से कुपथ पर चला गया उसकी सन्तान भी उसी रास्ते पर जाय। यही आज के समाज का विधान है। जब तक उसी रास्ते को छोड़कर आनेवालों को समाज में स्थान नहीं मिलेगा वह सत्पथ पर कैसे आएगा।' १

पुरुष अपने स्वार्थ केलिए निम्न वर्गीय नारियों से विवाह तो कर सकते हैं, एक क्षण केलिए जाति काअभिमान और वंश का गौरव भूलकर कीचड में खिलने वाले पंकज को आगे नतमस्तक होकर दया की भीख मांगते हैं। बाद में उन बेचारियों की पंखुरी पंखुरी नोच डालते हैं, उनसे उत्पन्न पुत्र को पुत्र का अपनत्व एवं अधिकार नहीं दे सकता। ऐसे पुरुषों के विरुद्ध प्रेमी ने अपने कुछ पात्रों से आवाज उठाई है।' संरक्षक ' का ' माधोसिंह ' झाबुआ नरेश को दासी पुत्री दुर्गा के जीवन से खिलवाड करना चाहता है। उसे आदर के ऊंचे सिंहासन पर बैठाने का प्रलोभन देता है। दुर्गा माधोसिंह से कहती है - आदर का ऊंचा सिंहासन झाबुआ नरेश अर्थात् मेरे पिताजी ने एक दिन मेरी माता के रूप सौन्दर्य पर मोहित होकर उसे आदर के ऊंचे सिंहासन पर बैठाना चाहा था। और ऐसा आदर किया कि आज उसकी बेटी स्वयं महाराजा की पुत्री - एक दासी पुत्र से अधिक कुछ नहीं। स्वयं तुम्हारे पिता जी ने एक दासी को

- -

१- विषपान -द्वितीय अंक,पांचवा दृश्य-पृष्ठ-६१-६२

आदर के ऊंचे सिंहासन पर बैठाया था । किन्तु उनको वह आदर उसके पुत्र तुम्हारे पिता से उत्पन्न पुत्र, तुम्हारे भाई गोवर्धन को राजपूत समाज में ऊंचा न उठा सका।'[१]

'विषपान' का जवानदास भी मेवाड़ के महाराणा का एक दासी से उत्पन्न पुत्र था । वह प्रतिहिंसा को भावना से प्रेरित है क्योंकि उसकी मां एक नीच कुल को स्त्री थी, इसलिए उसे कोई सम्मान प्राप्त न था, उसे घृणा और व्यंग की वर्षा सहना पड़ता था । महाराणा भी उसके लिए जो कुछ करता था उसमें कृपा का भाव भरा रहता था । उसे दया के ये टुकड़े जहर जान पड़ते थे । असम्भव, घृणा, और व्यंग्य के बाणों से विक्षिप्त जवानदास का हृदय सर्वनाश का खेल खेलना चाहता है । वह समाज के अत्याचार को चुपचाप सहने केलिए तैयार नहीं । अत: वह कहता है - हमारे पास वे साधन नहीं जिनसे हम समाज में सम्मानपूर्ण आसन पा सकें । प्रतिहिंसा हमें उन मार्गों पर ले जाती है जो मनुष्यता के विरुद्ध होते हैं । - - - - इस जन्मगत जातीय अभिमान को मिट्टी में मिलाना ही चाहिए । इनका संगठन इतना बलशाली है कि सीधे रास्ते इनसे पार पाना असंभव है । हमें वे साधन अपनाने होंगे जो रात के अन्धकार में काम आवें , हत्या , षड्यन्त्र ।'[२]

विधवा विवाह

भारतीय समाज की अतिशय रूढ़िवादिता के कारण विधवा का पुनर्विवाह घोर पाप समझा जाता था । समाज द्वारा उनके संरक्षण

- -

१- संरक्षक - प्रथम अंक,दूसरा दृश्य पृष्ठ-१७

२- विषपान - दूसरा अंक,पहला दृश्य,पृष्ठ-३१

की उचित व्यवस्था भी नहीं थी । वैवाहिक सुख के प्रभाव में ही विधवा बननेवाली युवतियों को मानसिक स्थिति के संबंध में समाज विचार नहीं करता था । समाज उनकी पुकार नहीं सुन पाता था । वैधव्य का अभिशाप उसे समाज को क्रूर यातनाओं का शिकार बनने केलिए विवश कर देता है । अनेक विधवाएे जीवन की बाधाओं और आपत्तियों से विवश होकर मृत्यु को आलिंगन करना श्रेयस्कर समझती है । लेकिन शिक्षित समुदाय की वृद्धि के साथ रूढियों और हानिकारक परंपराओं का विरोध होने लगा । फलत: विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति दी जाने लगी । विधवा विवाह के संबंध में प्रेमी का विचार महत्वपूर्ण है । ' उद्धार ' का हम्मीर प्राचीन रूढियों को तोडने के पक्ष में था । हम्मीर अपने शत्रु मालदेव की पुत्री कमला को जीवन संगिनी बनाता है , सुहाग रात मेंहम्मीर कमला के मुंह से सुनता है कि वह एक विधवा है । कमला का विवाह उस समय हुआ जब वह गुड्डे गुडियों से खेला करती थी , विवाह को उसने सिर्फ एक खेल ही समझा था । जिसके साथ उसका विवाह हो गया था वह मर गया । कमला डरती थी कि जब हम्मीर को यह रहस्य ज्ञात होगा तब वह उसे पैरों से कुचलकर चले जाऐंगे । कमला का डर अस्थायी था । हम्मीर समाज के व्यवस्था के संबंध में कहता है - ' समाज की मर्यादा , दूध मुंह बच्चियों का विवाह कर देना और उनके विधवा हो जाने पर उन्हें जीवन के सभी सुखों से वंचित रखना इसे तुम समाज की मर्यादा कहती हो ? नहीं कमला यह घोर अत्याचार है । हमें समाज के पाखण्डों के विरुद्ध विद्रोह करना है ।'[१] सुजानसिंह

- -

१- उद्धार- दूसरा अंक, नवां दृश्य, पृष्ठ-८५

हम्मीर के कार्य से संतुष्ट होकर कहता है - - - पुरुष यदि दूसरा विवाह कर सकता है तो नारी भी - - - - हम लोग, एक, दो तीन यहाँ तक कि दर्जनों पत्नियाँ, रखेलियाँ और प्रेमिकाओं को अंगीकार कर सकते हैं और चाहते हैं कि स्त्री बेचारी पति के मर जाने पर जीवन भर तपस्या करती रहे ।' [1]

प्रेमी ने ' बन्धन ' में सरला के वैधव्य जीवन की दयनीय, असहाय एवं अरक्षित अवस्था का मार्मिक चित्र खींचकर विधवा के आर्थिक अधिकार की समस्या पर भी विचार किया है । पति की मृत्यु के पश्चात् उसे न तो पिता के घर में आश्रय मिलता न ससुराल में । उसकी करुण दशा देखकर उसका भाई कहता है - भगवान ने इस आयु में तुम्हारी मांग का सिन्दूर पोंछकर कितनी कठोरता की है । ससुराल वालों ने भी तुम्हें भार समझा, घर पर माता जी ने तुम्हें चैन न लेने दिया, यहां मैं तुम्हें कोई सुख न दे पाया । ' [2] वास्तव में सरला की जैसी अनेक आश्रय हीन तरुणी विधवाएं हैं जिन्हें खाने को भी नहीं मिलता, भूख के कारण विधर्म को भी ग्रहण करना पड़ता है, अपने चिरसंचित सतित्व धन से हाथ धोना पड़ता है ।

सती प्रथा की निन्दा

प्रेमी सती प्रथा के विरुद्ध थे । उनके अनुसार स्त्री के सती हो जाने से समाज का कल्याण नहीं होगा । मृत्यु का आलिंगन कर वास्तव में वह अपने कर्तव्यों से पालायन कर रही है । प्रेमी ने अपने मन की बात

- -

१- उद्धार - तीसरा अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-८६

२- बन्धन - पहला अंक, सातवां दृश्य, पृष्ठ-३२

' शपथ ' की सुहासिनी के शब्दों में प्रकट की है । उमा अपने पति की मृत्यु के बाद सती होना चाहती है । सुहासिनी को उमा का निश्चय उचित नहीं लगता । उसके अनुसार ऐसा करना जीवन के उत्तरदायित्व से विमुख होना है । वह पूछती है -- यदि पुरुष पत्नी के निधन पर उसके साथ चिता में नहीं जलता तो नारी ही क्यों जले ? सती महादेव शंकर को कितना प्यार करती थी कि अपने पिता दक्ष द्वारा उनका अपमान किये जाने पर प्रज्वलित यज्ञ कुंड में कूदकर उन्होंने प्राण दे दिए और शंकर उनके वियोग में चाहे कितने ही विह्वल हुए किन्तु प्राण नहीं दे सके । - - - - पति से प्रेम करने का यह अर्थ नहीं कि संसार के प्रति अपने कर्तव्य को हम भूल जायें । - - - - हमारा समाज पति की मृत्यु के पश्चात् जीवित रहनेवाली नारी की उपेक्षा करता है, किन्तु एक निर्मम परिपाटि से पराजय मान लेने की अपेक्षा समाज के व्यंग्य बाण सहते हुए युद्ध करना अधिक वीरता का कार्य है ।[१]

दहेज प्रथा ?-

आधुनिक समाज में दहेज की समस्या ने एक विकट रूप धारण कर लिया है । इस कुप्रथा के कारण भारत जैसे अभावग्रस्त देश की कन्याओं का अनादर होता है । प्राय: सुन्दर सुयोग्य एवं उच्च शिक्षा प्राप्त कन्याओं को उनके योग्य वर नहीं मिल पाता । अभिभावक ही नहीं, स्वयं शिक्षित नवयुवकों की मनोवृत्ति इतनी दूषित हो गई है कि वे दहेज रुपयों पर चैन का जीवन बिताना चाहते हैं । इस समस्या को प्रेमी

- -

१- शपथ, तीसरा अंक, तीसरा दृश्य, पृष्ठ-१४१-१४२

ने उठाया है । दहेज के कारण माता पिता अपनी कन्याओं को जन्म देते ही मार डालते हैं । ' विषपान ' में रमा बेटियों को जन्म देते ही मार डालने के वास्तविक कारण पर प्रकाश डालती हुई कृष्णा से कहती है --' बेटियों को इसलिए मार डालते हैं कि उनके विवाह में बहुत अधिक खर्च करना पड़ता है । अच्छे कुल का वर नहीं।मिलता है तो दहेज बहुत अधिक मांगता है । लड़कियों को अविवाहित रखें तो मां बाप नरक जाए, इसलिए उन्हें मार डालते हैं ।' [१]

पर्दा प्रथा

प्रेमी समाज से पर्दा प्रथा को अन्त कर देने के पक्ष में थे । यह प्रथा स्त्रियों की उन्नति में बाधा उपस्थित करती है, प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने से उसे रोकती है । ' स्वप्नभंग ' में रोशनआरा इस प्रथा का विरोध करती हुई कहती है - हमारे मर्दों ने स्त्रियों को पर्दों में बन्द कर उन्हें दुर्बल बना दिया । हमारे समाज में स्त्रियों को सिर्फ मनोरंजन का सामान - एक खिलौना समझा जाता है । हमारा समाज अपने आधे अंग को बेकार कर बैठा है । मुसलमानों की यह दुर्बलता किसी दिन उन्हें पराजित , पतित, और दास बनाकर छोड़ेगी । - - - जब मेरे प्राण बाहर के संसार से मिलने केलिए रातदिन तड़पते हैं तो मैं अनुमान करती हूं कि आठों पहर बुर्के में बन्द रहनेवाली मेरी दूसरी बहनों का क्या हाल होगा ? मुसलमान स्त्रियों को यह भीतर ही भीतर सुलगती रहनेवाली आग हमारी जाति की जड़ों को खोखला बनारही है । न जाने किस दिन हमारे मर्दों की आंखे खुलेंगी ।' [२]

१- विषपान - तीसरा अंक, दूसरा दृश्य, पृष्ठ-८५
२- स्वप्नभंग- दूसरा अंक, चौथा दृश्य, पृष्ठ-६५

नारी जागरण

'प्रेमी ने नारी के स्वातंत्र्य पर बल दिया । वे यह नहीं चाहते थे कि स्त्री एक कोमल लतिका बनकर पुरुष से लिपटी रहे । स्वयं निर्बल रहे और पुरुष को भी बोझिल बनाए । उसका स्वतंत्र अस्तित्व होना चाहिए । उसमें प्रत्येक परिस्थिति से लोहा लेने की क्षमता होनी चाहिए ।' [1]

भारतीय समाज में नारी का स्थान चिरकाल से निम्न माना जाता रहा था । वह पराधीन एवं विवशता का जीवन व्यतीत करती आई थी । आर्थिक दृष्टि से वह पुरुष की आश्रिता थी । वह पुरुष की छाया मात्र बनकर रहती थी । जीवन की विवशता के बीच वह पर कटे पक्षी के समान निस्सहाय थी । जैसे छाया में ज्योत्सना व्यक्त करती है - ' मेरे पर कटे हुए है, मेरे पैरों में जंजीरें कसी हुई है ।' [2] वह पति की आकांक्षाओं के सम्मुख नतशिर है तथा उसके लिए भोग्या और सम्पत्ति मात्र है । जीवन की दयनीयता उसके ' स्व ' को शव में परिवर्तित कर देती है ।

आधुनिक काल में नारी की स्थिति में विकास के प्रचुर उपकरण परिलक्षित होते हैं । शिक्षा के समुचित प्रचार के साथ नारी में स्वाभिमान की भावना भी जागृत हुई । वह अपने अधिकारों की मांग भी करने लगी । प्रेमी ने ' छाया ' में नारी की अत्याचार के विरुद्ध आत्मसम्मान की भावना मुखरित करते हुए दिखाया है । रजनीकान्त हलाहल का संपादक है ।

१- शतरंज के खिलाड़ी -दूसरा अंक,सातवां दृश्य,पृष्ठ-८२
२- छाया- पहला अंक, पांचवा दृश्य,पृष्ठ-२२

वह एक ऐसा पति है जो पत्नी के सौन्दर्य की ओट में रुपया कमाना चाहता है। एक मालदार आसामी को अपने वश में लाने केलिए वह अपनी पत्नी ज्योत्सना को प्रेरित करते हुए कहता है - अरे तुम्हें करना ही क्या ? एक झलक दिखाकर उसे पागल कर देना। तुम जानती हो ज्योत्सना इससे अधिक तुम्हें कुछ न करना पड़ेगा। सरदार को हम ले चलेंगे होटल। बाजार में औरतों की क्या कमी है ? शराब के नशे में उसे प्रत्येक स्त्री ज्योत्सना नजर आएगी। ' [1] इस पर ज्योत्सना का आत्मसम्मान जाग उठता है और वही रजनीकान्त के प्रस्ताव को एक दम अस्वीकार कर देती है। इस प्रकार प्रेमी ने नारी पर अत्याचार करने को एक झलक दिखाकर नारी में जागरण की भावनाका परिचय दिया है।

आर्थिक पराधीनता ही नारी को पुरुष का दासी बनने केलिए बाध्य करती है। आधुनिक काल की नारी ने इस सत्य को जान लिया, अत: किसी नौकरी प्राप्त करके इस बन्धन से मुक्ति पाना चाहती है, किसी पर भार न बनने की कामना करती है। ' ममता ' की लता अपने स्वाभिमान की रक्षा इस प्रकार करती है। समाचार पत्रों में वह अपराधी घोषित की जाती है, परन्तु वह इसकी चिन्ता न करके दिल्ली में रहकर अध्यापन कार्य करने में सफल होती है। वह अपने स्वाभिमान की रक्षा के विषय में मुंशीजी से कहती है - मैं ने भी सोचा अपमानित और उपेक्षित जीवन व्यतीत करने से तो श्रेष्ठ है अपने पैरों में खड़े होकर स्वाभिमान की रक्षा करना। ' [2]

१- छाया - पहला अंक, चौथा दृश्य, पृष्ठ-२०

२- ममता- दूसरा अंक, पांचवा दृश्य, पृष्ठ-१०७

समाज में आधी शक्ति महिलाओं की होती है । कोई भी समाज का राष्ट्र अपने आधे भाग की उपेक्षा करके विकास नहीं कर सकता 'प्रेमी' ने गुरु रामदास के शब्दों द्वारा इस सत्य को उद्घाटित किया है - 'अपनी स्वराज्य साधना से महिलाओं को पृथक न रखना । समाज के आधे अंश को पंगु बनाओगे तो तुम्हारी सफलता स्थायी न होगी । मैं वह दिन देखना चाहता हूं जिस दिन यह भी कराला काली का रूप धारण करके स्वतंत्रता संग्राम में सहायक होंगी । नारी शक्ति समाज की प्रधान शक्ति है । जब तक उन्हें अपने अंतर्बल का ज्ञान न हो, अपनी शक्ति पर विश्वास न हो तब तक कोई देश स्वतंत्र नहीं हो सकता । राजपूताने की उन वीर रमणियों को स्मरण करो जो अपने हाथ से पति पुत्र को युद्ध में भेजकर अन्तपुर में चिता प्रज्वलित कर हंसते हंसते भस्म हो जाती थीं । वे आज संसार के इतिहास में अमर हैं और उनके कारण सारी राजपूत जाति अमर है ।' - -[१]

प्रेमी ने नारी स्वातंत्र्य पर जोर देने के साथ ही साथ नारी की मर्यादा की सीमा भी निश्चित कर दी है । प्रेमी ने उन आधुनिक युवतियों की निन्दा की है जिन्होंने फैशन करना और साहसिक जीवन बिताना ही जीवन का ध्येय समझा था । वे उन नारियों के प्रति असंतुष्ट थे जो शादी के बाद ससुराल आने पर अपने हाथ से घर का काम काज करना अपना अपमान समझती है और फैशन के खिलाफ समझती हैं । ऐसी नारियों पर तीखा व्यंग्य करते हुए प्रेमी कहते हैं कि आज की पत्नियां पतियों से पांव दबवाना प्रसन्न करती हैं । पति सारा दिन बाहर काम करें और सन्ध्या को आकर पत्नी की नौकरी बजाए । उसको साथ लेकर सैर करने जाए । सिनेमा देखें या क्लब में ले जाए । जहां भी वह जाए

१- शिवसाधना -पहला अंक, छठा दृश्य, पृष्ठ-४४-४५

वह गले की फांसी बनी हुई साथ ही रहेगी । - - - और घर में बच्चे आयाओं के सुपुर्द रहते हैं । मां को पिता की चौकसी करने से अवकाश नहीं, पिता को मां का मन रखने से । बच्चों के प्रति उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं होता । पहले की स्त्री मां बनना अपने जीवन की सबसे बड़ी सफलता मानती थी और उनका लालन पालन ही अपने जीवन का ध्येय । लेकिन आज की नारी का मन घर की सीमा में नहीं लगता । चूल्हा जलाने से उसकी आंखों को धुंआ लगता है । बर्तन मांजने से हाथ काले होते हैं । बच्चे के देखभाल में बहुमूल्य शरीर का सत्यानाश होता है । वह बच्चे को गोद में इस भय से नहीं ले सकती थी कि उसकी मूल्यवान साड़ी खराब हो जाएगी । सोसाइटी में बच्चों को ले जाने से उसे शरम आती है । चार बच्चों की मां हो जाने पर भी वह अपने आपको षोडशी सिद्ध करना चाहती है । [१]

नारियों को अपने कर्तव्य पालन करने का आदेश देते हुए प्रेमी उनसे कहते है कि दिन भर कर्म करके आने वाले पुरुष की थकावट मधुर मुस्कान और सेवा से दूर करें स्त्रियों का तो यही काम है । जो स्थान प्रकृति में निर्मल झरने का है, जो महत्व चांदनी रात का है वही पुरुष के जीवन में स्त्री का है ।' [२]

निष्कर्ष

अतः हम कह सकते है कि प्रेमी ने अपने नाटकों में समाज की प्रमुख समस्याओं को प्रस्तुत किया है । समाज का अधिक से अधिक बोलता हुआ

१- ममता- दूसरा अंक, पहला दृश्य, पृष्ठ-६४-६५
२- स्वप्नभंग - दूसरा अंक, तीसरा दृश्य, पृष्ठ-४७

चित्र उनके नाटकों में पा सकते हैं । भारत की स्वतंत्रता को खतरे में डालनेवाली पेचीदी समस्याओं के संबंध में प्रेमी का विचार कितना महत्वपूर्ण है --' यह वह भारत है जहां आदमी आदमी को छूना पाप समझता है । यह वह भारत है जहां सैकड़ों जातियां और कोढ़ियाँ धर्म है । यह वह भारत है जहां कन्याओं को जन्म लेते ही मार देते हैं । यह वह भारत है जहां नारियों को घरों के कारागार में बन्द रखा जाता है । यह वह भारत है जहां के राजाओं और जागीरदारों के रनवासे में अनेक नारियां नरक का जीवन बिताती है । यह वह भारत है जहां के देवी मन्दिरों में भारत में जन्म लेने वालों को ही प्रवेश नहीं मिलता । [१] ऐसे भारत को स्वतंत्र करने का सपना वे देखते है ।

प्रेमी ने अपने मन की सम्पूर्ण निष्ठा के साथ समाज में प्रचलित अनेकानेक विषमताओं के बीच पिसते हुए व्यक्ति के प्रति संवेदना व्यक्त की और उन विषमताओं से बचने का उपाय भी संकेत किया । श्री सुरेश चन्द्र गुप्त ने ठीक ही कहा --' उनके (प्रेमी) नाटकों में राष्ट्रचिन्तन के पश्चात् समाज कल्याण से संबंधित तत्वों के चिन्तन को ही मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है ।' [२]

- -

१- अमर आन- तीसरा अंक,पृष्ठ-७६

२- भारतीय नाट्य साहित्य : सं० डा० नगेन्द्र

' नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी - लेखक :- सुरेश चन्द्र गुप्त

पृष्ठ-३५६ (१६६८)

छठा अध्याय

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व

छठा अध्याय

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व

भारतीय इतिहास के काल को तीन क्रमों में रखा जा सकता है ।

1) प्राचीन युग ।
2) मध्यकालीन युग ।
3) आधुनिक युग ।

इसी क्रम में रखकर हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों का विवेचन किया जाएगा।

प्राचीन युग

मौर्यकालीन नाटक :-

1. अमृतपुत्री - घटनाकाल 327 - 322 ई. पूर्व

मौर्य कुषाण संक्रान्तिकालीन नाटक

2. संवत् प्रवर्तन - घटनाकाल 57 ई. पूर्व

गुप्तवर्धन संक्रान्ति काल :

3. शपथ - घटनाकाल 528 ई. के लगभग

मध्य युग

4. प्रकाशस्तम्भ - घटनाकाल सन् 734-753 ई.

इस्लाम साम्राज्य काल

5. शतरंज के खिलाड़ी	- घटनाकाल	सन् 1294 - 1295	
6. आहुति	- घटनाकाल	सन् 1301	
7. सांपों की सृष्टि	- घटनाकाल	1306 - 1316	
8. उद्धार	- घटनाकाल	1301	के लगभग
9. कीर्तिस्तम्भ	- घटनाकाल	1509	
10. भग्नप्राचीर	- घटनाकाल	1527	के लगभग
11. रक्षाबन्धन	- घटनाकाल	1535	
12. अमर आन	- घटनाकाल	16[illegible]4	
13. स्वप्नभंग	- घटनाकाल	1657 - 1659	
14. शिवसाधना	- घटनाकाल	1646 - 1676	
15. प्रतिशोध	- घटनाकाल	1661 - 1705	
16. आन का मान	- घटनाकाल	1679 - 1701	के लगभग
17. विदा	- घटनाकाल	1680 - 1691	के लगभग

आधुनिक युग

18. विषपान	- घटनाकाल	1806 - 1808	के लगभग
19. संरक्षक	- घटनाकाल	1817 - 1822	के लगभग
20. शीशदान	- घटनाकाल	1857	
21. अमर बलिदान	- घटनाकाल	1857	
22. रक्तदान	- घटनाकाल	1857	

[illegible]

अमृतपुत्री

यह नाटक भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के समय की भारत की स्थिति को एक झाँकी देता है। इस ऐतिहासिक तथ्य को भी अभिव्यक्ति प्रदान की गई है कि सिकन्दर के समय पराजित होनेवाला भारत जब चाणक्य और चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में एक हो गया तो इन्होंने यूनानियों को पूरी तरह पराजित किया।

कठ गणराज्य के प्रमुख की पुत्री कणिका चाणक्य से भेंट :-

नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में कणिका को विपाशा के तट पर गीत गाकर बैठते हुए दिखाया है। उस समय तक्षशिला विद्यापीठ का आचार्य चाणक्य, वहाँ पहुँचते हैं। यह प्रसंग कल्पित है।

कठ गणराज्य के प्रमुख की पुत्री कणिका ही नाटक का केन्द्रबिन्दु है। कणिका यद्यपि ऐतिहासिक पात्र नहीं तोभी वह ऐतिहासिक संभव्यता लिए हुए अपने सशक्त व्यक्तित्व के साथ नाटक में हमारे सामने आती है।

नाटक का यह प्रसंग कि कणिका ने अपनी छोटी सी आयु में ही महानाश का ताण्डव देखा था, साकल को युद्धभूमि में वह भी थी - प्रेमी की अपनी उद्भावना है। लेकिन प्रेमी की कल्पना ऐतिहासिक तथ्य को कोई क्षति नहीं पहुँचाती, बल्कि उनको सजीव बना देती है। कठों पर यूनानियों का आक्रमण इतिहास देखी घटना है।" [1]

---

1. The Oxford History of India, Vincent A. Smith, 3rd Edn. pp.87-88

नन्द मौर्य युगीन भारत - नीलकंठ शास्त्री -पृ.62 - प्रथम सं. 1969
हिन्दू भारत - रतिभानुसिंह 'नाहर' : पृ. 99

इतिहास तो इस घटना का साक्षी है कि जब सिकन्दर ने कठ गणराज्य की राजधानी साकल को घेरा तो कठवासियों ने उसके छक्के छुड़ादिए। रणकौशल और पराक्रम में कठ यूनानियों से दुर्बल प्रमाणित नहीं हुए। तीस हजार मृत्युंजय कठ योद्धाओं के शवों पर पाँव रखता हुआ ही सिकन्दर साकल में पाँव रख सका। कठों की वीरता का वर्णन इतिहासकार राधाकुमुद मुखर्जी ने भी किया है। "[1] उन्होंने यह भी व्यक्त किया है कि साकल के युद्धक्षेत्र में पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी लड़ी थीं।"[2] कणिका उन वीर नारियों को जिन्होंने अत्याचार से संग्राम करने के लिए असि धारण की थी, प्रतिनिधि के रूप में नाटक में प्रस्तुत होती है।

कणिका के अन्तर्विद्रोह का सुंदर चित्रण नाटक में मिलता है। उसके अन्तर शत शत दुर्गाएँ एवं चंडिकाएँ जन्म ले रही थीं। कठ गणराज्य को पुनः स्वतंत्र करना और यूनानियों से प्रतिशोध लेना ही उसका संकल्प था। जब कठ गणराज्य के अधिकांश वीर वीरगति पाकर भारत की कीर्ति को चार चाँद लगा चुके तो कणिका चाहती थी कि वह भी वीरगति पा जाएँ, किन्तु भविष्य की आशा ने उसे मरने नहीं दिया। वह कहती है – "रक्त के घूँट घूँट पीती हुई मैं जी रही हूँ – इस आशा में कि एक दिन शत्रु रक्त की प्यासी असि को सिकन्दर के हृदय का रक्त पिलाऊँगी।"[3]

तक्षशिला के राजा आम्भी का राजा पोरस के विरुद्ध सिकन्दर की सहायता करके उसका स्वागत करना इतिहास सम्मत घटना है।"[4]

- -

1. चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल - राधा कुमुद मुकर्जी -पृ.48, प्रथम सं.1962
2. –''– –''– पृ. 49
3. अमृत पुत्री - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ.12, प्रथम संस्करण 1972
4. नन्दमौर्ययुगीन भारत -(सं) नीलकंठ [redacted] शास्त्री, पृ.39

चन्द्रगुप्त और सिकन्दर में भेंट :-

प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में हम देखते है कि विपाशा के तट पर यूनानी सेना के शिबिर में सिकन्दर एवं उनका सेनापति बातें कर रहे है। सहसा चन्द्रगुप्त वहां प्रवेश करता है। वह सिकन्दर को युद्ध का खेल खेलने के लिए चुनौती देता है। चन्द्रगुप्त एवं सिकन्दर की यह भेंट एक ऐतिहासिक घटना है। " [1] इस प्रसंग में प्रेमी ने सिकन्दर के मुंह से चन्द्रगुप्त की वीरता की प्रशंसा करावे, चन्द्रगुप्त के चरित्र को और भी उत्कृष्टता प्रदान करने का प्रयत्न किया है। सिकन्दर का चन्द्रगुप्त से कथन है - 'वास्तव में हम तुम्हारी निर्भीकता से प्रसन्न हुए। तुम कोई भी हो, तुम्हारी आंखों में मुझे वही प्रकाश दिख रहा है जो कभी कभी दर्पण देखते समय अपनी आंखों में देखता था। यदि तुम भारत के किसी प्रदेश के राजा होते और तुमसे युद्ध करना पडता तो मुझे कितना आनन्द आता। " [2]

सिकन्दर की सेना का विद्रोह :-

सिकन्दर के साथ जो साथी योद्धा यूनान से आये थे, उनमें हजारों योद्धा युद्धों में अनन्त निद्रा में सो गए, जो शेष थे वे विश्राम चाहते थे। उनकी सेना में असंतोष बढ़ गया था। सेना ने व्यास तट से आगे बढ़ने से इनकार कर दिया, यह ऐतिहासिक तथ्य है। " [3]

---

1. Bihar Through Ages, R.R. Diwakar, 1959, pp.186-187,
   The Age of Imperial Unity, Chapter IV, Radakumud Mukarji, p.57.

2. अमृतपुत्री - प्रथम - द्वितीय दृश्य - पृ.26

3. हिन्दू भारत : रतिभानुसिंह नाहर - पृ. 98
   नन्द मौर्ययुगीन भारत - सं. नीलकंठ शास्त्री - पृ.68

नाटक के तृतीय दृश्य में शिवि गणनायक सिंहरण की पुत्री जयश्री को अश्विनी नदी के तट पर गीत गाते बैठती हुई हम देखते है। यह प्रसंग कल्पित है। सिंहरण एवं जयश्री भी कल्पित पात्र है। अग्रश्रेणी गणतंत्र के गणनायक के पुत्र जयपाल का उस समय वहाँ आना, जयश्री के साथ वाक्विवाद चलना, जयपाल का, जयश्री को बलपूर्वक उठा ले जाने को उद्यत होना, जयश्री का अपने कपडों में छुपाई हुई कटार निकाल लेना, बाद में दोनों का समझौता होना, जब सिंहरण जयपाल पर आक्रमण करने के लिए जाता है तो जयश्री का, उसका विरोध करना, सन्यासिनी के वेश में कणिका का वहाँ पहुँचकर सिंहरण एवं जयपाल को कर्तव्य की शिक्षा देना और उन्हें यह उपदेश देना कि छोटी छोटी बातों को लेकर परस्पर युद्ध करते रहना मूर्खता है - ये सब घटनाएँ ऐसी है जिनके लिए कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता है। इन काल्पनिक प्रसंगों की योजना द्वारा जहाँ एक ओर कणिका के चरित्र को उत्कर्ष प्राप्त होता है तो दूसरी ओर तत्कालीन परिस्थितियों की झलक भी मिलती है। सिकन्दर के आक्रमण के समय उत्तर भारत में अनेक छोटे छोटे गणतंत्र राज्य थे जो आपस में ही संघर्ष करते रहते थे। शिवि और अग्रश्रेणी गणतंत्रों में चिरकाल से शत्रुता चली आ रही थी। कणिका के इस कथन से कि यदि सभी मिलकर बाहरी शक्ति का सामना करते तो इसे कभी पददलित न होना पडता, परस्पर की लाग डाट में जनपद जब मिलकर एक शक्ति नहीं खडी करेंगे तो यवन साम्राज्य की टक्कर से उन्हें गिरना ही पडेगा, तत्कालीन परिस्थितियों का बोध स्पष्टतया हो जाता है।

नन्द द्वारा आचार्य चाणक्य के अपमान का जो प्रसंग नाटक में मिलता है वह पूर्ण रूप से इतिहास सम्मत है।[1] नन्द की विलासता एवं कर्तव्य-

---

1. प्राचीन भारत : इतिहास और संस्कृति - बी.जी.गोखले - पृ.34 -तृतीय सं.1956

विमुखता का जो संकेत नाटक में मिलता है वह भी इतिहास से अनुमोदित है। [1]

प्रेमी की मान्यता है कि चाणक्य ने नन्दवंश का नाश करने का निश्चय इसलिए न किया था कि वह नन्द द्वारा अपमानित हुआ था, वरन् इसलिए किया कि वह अखण्ड आर्यभूमि को एक शासन के सूत्र के नीचे लाकर महाशक्तिशाली राज्य बनाना चाहता था और नन्द उसके इस उद्देश्य में बाधक था। चाणक्य सम्पूर्ण भारत को एक बड़ा परिवार मानता है। जब वह देखता है कि परिवार का मुख्य व्यक्ति - नन्द - केवल अपने सुख, अपनी सुरक्षा और अपनी स्वतंत्रता की चिन्ता करता है तो वह उस व्यक्ति का अन्त करके भी परिवार का उद्धार करना चाहता है। चाणक्य अपने नवीन महत्तम आयोजन के लिए चन्द्रगुप्त को चुनता है जो एक घायल सिंह है, जिसका अंग अंग प्रतिहिंसा की ज्वाला में जल रहा है। भाग्य से चाणक्य को कणिका भी मिल जाती है जिसका हृदय भीतर ही भीतर प्रज्वलित ज्वालामुखी है। यूनानी शासन उन्मूलन करने के लिए चन्द्रगुप्त का प्रतिज्ञा लेना ऐतिहासिक तथ्य है।" [2]

नाटक का यह प्रसंग कि अग्रश्रेणी एवं शिवि जैसे गणराज्य जिन्हें सिकन्दर ने पराजित कर दिया था फिर स्वतंत्र होने की चिन्ता करने लगी एवं चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया, भी ऐतिहासिक घटना है। " [3]

शिवि गणराज्य पर यूनानियों का अत्याचार एवं अग्रश्रेणियों का बलिदान:-

यूनानियों ने शिवि गणराज्य को निर्दयता से रौंद डाला,

---

1. प्राचीन भारत - इतिहास और संस्कृति - बी.जी.गोखले पृ.34 - तृतीय सं.1956
2. चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल - राधाकुमुद मुकर्जी - पृ.43
3. हिन्दू भारत - रतिभानुसिंह नाहर - पृ.103-104

यहाँ तक कि खेतों पर कार्य करनेवाले कृषकों को भी मौत के घाट उतार दिया। बच्चे, बूढ़े, नारी किसी पर दया नहीं की। नारियों के सतीत्व का भी सम्मान उन्होंने नहीं किया। इस घटना को नाटक में रखकर प्रेमी ने खुलकर दिखाया है कि किस प्रकार दार्शनिकों के देश यूनान के योद्धाओं ने अपनी संस्कृति और सभ्यता को कलंकित कर डाला। प्रेमी ने कणिका और जयपाल के वार्तालाप द्वारा यूनानी एवं भारतीय संस्कृति की तुलना करके भारतीय हृदय की विशालता एवं भारतीय संस्कृति की सदाशयता का परिचय दिया है। प्रतिशोध की ज्वाला में झुलसता हुआ भी वह अपनी महान संस्कृति की अवहेलना नहीं कर सकता। उसके पर नारी माँ है, बहन है, बेटी है। वह चाहे शत्रु की हो, चाहे अपनी हो।"[1] अतः कणिका एवं जयपाल का वार्तालाप-प्रसंग काल्पनिक होते हुए भी अधिक सार्थक एवं स्वाभाविक लगता है।

अग्रश्रेणियों ने जिस वीरता से युद्ध किया था उसका वर्णन इतिहास में भी मिलता है। उन्होंने नाम मात्र की भी पराधीनता स्वीकार करने की अपेक्षा जलकर भस्म हो जाना स्वीकार किया। उन्होंने स्वयं ही राजधानी में आग लगा दी। स्त्री, बच्चे, बूढ़े, जवान सब जाज्वल्यमान ज्वाला की गोद में बैठ गए।[2] एक बच्चा भी नहीं बचा जिससे यूनानी गर्वसहित कह सकें कि उन्होंने अग्रश्रेणियों को पराजित किया! प्रेमी का लक्ष्य भारतीय चिन्तन, संस्कृति, बौद्धिकता एवं वीरता को विदेशी चिन्तन, एवं संस्कृति के समानान्तर रखकर श्रेष्ठ सिद्ध करने का भी है। इसलिए प्रेमी ने सिकन्दर से कहलवाया है - " इस ज्वाला में भारत की वीरता और उसके आत्मतेज को प्रकाशित होते हम देखते हैं।

---

1. अमृतपुत्री - द्वितीय अंक - द्वितीय दृश्य - पृ. 72

2. चन्द्रमौर्य युगीन भारत - नीलकंठ शास्त्री - पृ. पृ. 68

यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी पराजय है। युद्धभूमि में विजयी होकर भी हम पराजित हुए। यूनान का दर्प भारत के बलिदान को नमस्कार करता है। मैं अग्रश्रेणियों के इस जौहर को प्रणाम करता हूँ। " ।

नाटक के द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य में सिकन्दर एवं उसकी अनुपम रूपवती प्रेयसी ताया के वार्तालाप का जो प्रसंग है उससे सिकन्दर के अत्याचारों का पता मिलता है। संसार के सबसे सबल और समृद्ध समझे जानेवाले पार्स-साम्राज्य पर विजय प्राप्त करने के उल्लास में उन्मत्त सिकन्दर एवं उनके अन्य सेनापतियों द्वारा पार्सिपोलिस के राजमहल में आग लगा देना इतिहास देखी घटना है। " 2

सिकन्दर की प्रेयसी ताया नाटककार की मानसिक सृष्टि है। प्रेमी ने उसे एक वारांगना के रूप में दिखाया है। यह तो सत्य है कि वारांगनाएँ यूनानी सभ्यता का सम्माननीय अंग थीं। बड़े बड़े दार्शनिक भी उनके सामीप्य के अभिलाषी थे।

यूनानी क्षत्रप फिलिप्स के अधीन विशाल सेना को भारत में छोड़कर सिकन्दर का लौट जाना इतिहास सम्मत है।

<u>फिलिप्स की हत्या :-</u>

यूनानी क्षत्रप फिलिप्स की हत्या एक ऐतिहासिक घटना

---

1. अमृतपुत्री - दूसरा अंक - तृतीय दृश्य - पृ.83

2. Cambridge History of India, Vol. I, Ancient India, Ch. IV, by Bevan, E.F. pp.310-311.

कल्पना है। " 1 किन्तु इतिहास यह नहीं बताता है कि किसके हाथों उनकी हत्या हुई। प्रेमी ने कल्पना के सहारे इतिहास के इस रिक्त स्थान को भरने का प्रयास किया है। काल्पनिक प्रसंग यह कि चाणक्य ने पुरु को यह आदेश दिया कि वह अपना प्रासाद सौंप दे और उसमें प्रथम आगमन के उपलक्ष्य में उत्सव मनाएं। पुरु फिलिप्स के स्वागत में उत्सव का आयोजन करता है। कणिका नर्तकी के वेश में प्रवेश करती है। वह पात्रों में मदिरा डालकर फिलिप्स और पुरु को देती है। कणिका नृत्य और गान प्रारंभ करती है। फिलिप्स नशे में आकर अपने स्थान से उठता है और कणिका की तरफ बढ़ता है। वह कणिका का हाथ पकड़ना चाहता है। कणिका क्षिप्रगति से कंचुकी में से कटार निकालकर फिलिप्स के कलेजे में भोंक देती है। वह तो अपनी पवित्रता की रक्षा करना जानती है। यूनानी अंगरक्षक तलवारें तानकर कणिका की तरफ बढ़ते हैं। तभी चन्द्रगुप्त अनेकों सैनिकों सहित प्रवेश करके उसकी रक्षा करता है। कणिका चाणक्य के आदेश के अनुसार फिलिप्स के रक्त से चन्द्रगुप्त के कपाल पर टीका लगाती है। वहीं नाटक समाप्त होता है।

नायिका कणिका के उज्वल व्यक्तित्व को मुखरित करने के साथ साथ यह नाटक आचार्य चाणक्य के राजनैतिक दांवपेंचों पर भी प्रकाश डालता है। इस नाटक का चन्द्रगुप्त चाणक्य का ही निर्मित हुआ प्रतीत होता है। वह सर्वत्र चाणक्य के आदेश का पालन करता हुआ दृष्टिगत होता है। चाणक्य के ये शब्द इसका स्पष्ट प्रमाण है - - "चाणक्य से विद्रोह करने की शक्ति है तुममें चन्द्रगुप्त? तुम क्या थे और अब भी क्या हो? तुम्हारे पास केवल तुम्हारा शरीर है। चाणक्य की बुद्धि और प्रभाव ही तुम्हारा अतिरिक्त और

---

1. "किसी ने फिलिप्स की हत्या की थी" - चन्द्रगुप्त मौर्य और उनका काल : राधाकुमुद मुकर्जी - पृ.48
"Philippa, the Satrap whom he had appointed to govern the Western Punjab, met his doom in 324 B.C. - Ancient India, Part I of An Advanced History of India, p.97. Majumdar, Kalikinkar Datta.

समस्त बल है।" ¹

सचमुच चाणक्य का व्यक्तित्व असाधारण है। वे दृढ प्रतिज्ञ, दूरदर्शी और राजनीति में पूर्ण पारंगत है। यही कारण है कि वे अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल होते है। उसका प्रत्येक संकल्प पूर्ण होता है। चाणक्य के चरित्र की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह मानव चरित्र का सच्चा पारखी है। वह मनुष्यों को वश में करके उनसे अपना काम निकालने में सिद्धहस्त है। यही कारण है कि वह फिलिप्स और पुरु को भारत का सिकन्दर के स्वतंत्र सम्राट बनाने का लालच देता है, उन्हें अपने संकेतों पर नचाता है और अन्त में बर्बर विदेशी के हृदय रक्त से भारत के भावी सम्राट चन्द्रगुप्त के मस्तक का अभिषेक कराता है।

संवत् प्रवर्तन

भारतीय जनमानस में शकारि विक्रमादित्य का नाम बहुत अधिक रमा हुआ है। विक्रमादित्य से संबंधित विभिन्न लोककथाएँ, जनश्रुतियाँ एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण उपलब्ध है। हरिकृष्ण प्रेमी ने जैन ग्रंथ से प्राप्त विवरण के आधार पर इस नाटक की रचना की है।

सरस्वती का अपहरण :-

धारावास के नृपति की कन्या सरस्वती और उसके भाई कालक ने आचार्य गुणाकर के अमृत वचन सुनकर ही त्याग और तपस्या का जीवन स्वीकार किया। उज्जयिनी नरेश गर्दभिल्ल दर्पण ने सरस्वती को बलात् उठवा लिया। कालकाचार्य ने अपनी बहन के अपमान को संपूर्ण जैन समाज का अपमान माना। कालकाचार्य ने राजा से अपनी बहन को ~~को~~ वापस देने का अनुरोध

---

1. अमृतपुत्री - तृतीय अंक - द्वितीय दृश्य - पृ. 98

किया, लेकिन राजा ने उसकी परवाह नहीं की। कालकाचार्य ने राजा से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा की । ये घटनाएँ नाटक में इतिहास के अनुसार ~~के अनु~~ सार ही रखी गयी है । " [1]

<u>कालक का प्रतिशोध</u> :- उज्जयिनी नरेश को अपमान का दण्ड देने के लिए कालकाचार्य पार्श्वकुल (पर्शिया) में शकों के डेरे में पहुँचा। उस समय शकसाही भूमक एवं नहपाण और उनकी सेना बडी मुसीबत में पड गये थे, क्यों कि शकों का शत्रु मिश्रदात ने शकों को धमकी दी थी कि प्रत्येक साही को एक एक कटारी राजाधिराज मिश्रदात की ओर से प्रेम सहित उपहार स्वरूप भेजी जाती थी जिससे अपना मस्तक काटकर राजाधिराज के चरणों में उपस्थित न करें तो शकों का एक भी परिवार सुरक्षित नहीं रहेगा। आचार्य कालक ने शसाहियों को सान्त्वना दी कि उत्तेजित अथवा निराश होने की आवश्यकता नहीं । भारत पर राज्य करके शक साही अपनी विपत्ति के दिन को सौभाग्य-रवि के उदय के दिन बना सकते है । इस प्रसंग की पुष्टि 'पभावक चरित'से होती है।' [2]

कालक ने उज्जयिनी नरेश से प्रतिशोध लेने के लिए जो कार्य किया, प्रेमी की दृष्टि में, वह बिलकुल कायरता था। कालक ने अपनी बहन के अपहरण के प्रश्न को एक नारी के सम्मान की रक्षा का प्रश्न न मानकर जैन धर्म के अपमान के रूप में माना।

<u>शक और गर्दभिल्लदर्पण के बीच युद्ध :-</u>

आचार्य कालक के आदेश से भारत के जैन समाज ने शक-

---

1. Vikramaditya of Ujjayini, Raj Bali Pandey, pp.28-29.
2. Vikramaditya of Ujjayini, Raj Bali Pandey, p.29.

साथियों के आगे धन का ढेर लगा दिया। दोनों पक्ष बलवान थे। एक सुदीर्घ कालव्यापी युद्ध ने संपूर्ण आकर प्रदेश को रक्तरंजित कर दिया। शकों की बर्बरता की कोई सीमा न थी। गांव के गांव उन्होंने अग्नि के भेंट कर दिए। स्त्री-बच्चों पर भी उन्होंने दया नहीं की। लंबे संघर्ष के पश्चात् शकों की विजय हुई। आकर के पश्चात् उन्होंने मालवगणों को दबाया। और मथुरा तक अपना राज्य फैला लिया। गर्दभिल्लदर्पण को अन्तिम युद्ध में पराजित होकर प्रयाण करना पड़ा। यह प्रसंग भी पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है। " [1]

नाटक में यह भी दिखाया है कि गर्दभिल्लदर्पण अन्तिम युद्ध पर प्रयाण करने के पूर्व, महारानी और बच्चे के साथ, बंदीगृह में सारस्वती के पास गये और उसने सारस्वती से क्षमा भी मांगी। महारानी ने अपने तीन वर्षीय बच्चे विक्रम को सारस्वती के हाथों में सौंप दिया। सारस्वती ने रानी की आज्ञा का पालन किया। अठारह वर्ष तक सारस्वती ने विक्रम रूपी दीपक को अपने आंचल की ओट में रखा। अठारह वर्ष के बाद सारस्वती ने रहस्य की यवनिका उठा दी। लेकिन इतिहास के अनुसार विक्रमादित्य की माता ने उसका पालन पोषण किया। " 2

---

1. The Pattavalis, the Nisithasutra and Prabhavakacharita all record the defeat and expulsen of Gardabhilla (Mahendraditya) by the Sakas through the instrumentality of the Jain Saint Kalakacharya", 'Vikramaditya of Ujjayini, Raj Bali Pandey, pp.91-92.

2. "Vikramaditya was separated from his father and had to fly and to hide for his life, accompanied by his mother and a few assailants . . . . under the inspiring guidance of his mother he still remembered the Kshatriya ideal of retaliation against the enemies . . . ." 'Vikramaditya of Ujjaini, Raj Bali Pandey, pp.93-94.

अत: नाटक का यह प्रसंग अनैतिहासिक है। इस परि-वर्तन के पीछे नाटककार का लक्ष्य होगा - सरस्वती के चरित्र को उज्वलता दिखाना। जिस नरेश के कारण सरस्वती को जीवन में अनेक संकट झेलने पड़े, उसीके पुत्र का वह भक्षक बन सकती थी, लेकिन रक्षक ही बन गई।

शकों से विक्रमादित्य का लोहा लेना

प्रारंभ में विक्रमादित्य के पास न धन था, न सेना थी। फिर भी वह स्वतंत्रता का संग्राम लड़ा। [1]"स्वतंत्रता संग्राम के महान यज्ञ में बेताल, भर्तृहरी, सरस्वती और बाद में आचार्य कालक ने विक्रमादित्य का साथ दिया। आकर और मालव प्रदेश की सम्मिलित शक्ति की सहायता से विक्रम ने शकों की दुर्धर्ष शक्ति पर विजय प्राप्त की। विक्रमादित्य के साथ हुए युद्ध में शक सेना के पैर उखड़ जाना पूर्ण रूप से ऐतिहासिक घटना है।"[2]

एक नये युग का निर्माण

आकर और मालव प्रदेश के लोगों ने विक्रमादित्य को नवीन मालव प्रदेश के प्रथम गणपति बनाने की इच्छा की। लेकिन विक्रमादित्य ने भर्तृहरि को मालव प्रदेश का प्रथम गणपति बनाना चाहा। उनको इच्छा की पूर्ति हुई। बेताल द्वारा यह निवेदन भी रखा गया कि उस दिन से नवीन संवत् का प्रवर्तन किया जाए और उस नए युग को लानेवाले आदित्य के नाम पर

---

1. Vikramaditya of Ujjaini, Raj Bali Pandey, p.94.
2. Vikramaditya of Ujjayini, Raj Bali Pandey, pp.101-102.

शकानां वंशमुच्छेद्य कालेन कियताऽपिहि ।
राजा श्री विक्रमादित्यः सार्वभौमोपमोऽभवत् ।। । • 90
-- प्रभावक चरित

उस संवत् का नाम विक्रम संवत् रखा जावे। विक्रमादित्य व्यक्ति पूजा के विरोधी थे। उस शुभ दिन का संपूर्ण श्रेय वे स्वयं नहीं लेना चाहते थे। विक्रमादित्य जानते थे कि जो सफलता प्राप्त हुई वह तो सारी प्रजा के संकल्प का परिणाम था, इसलिए नवीन संवत् का नाम कृत संवत् रखा गया। देश अपने वीर विक्रमादित्य के उपकार नहीं भूला। और संवत् के साथ विक्रम के नाम को भी जोड़ा गया । यह पूर्ण रूप से इतिहास सम्मत घटना है। " [1]

विक्रमादित्य का अपने अनुज भर्तृहरि के लिए सिंहासन छोड़ना अनैतिहासिक होते हुए भी संभाव्य है। यह घटना विक्रमादित्य के चरित्र की उत्कृष्टता का प्रमाण है। राजबली पांडेय ने उनके चरित्र पर प्रकाश डाला है। " [2]

विक्रमादित्य और उसकी पत्नी मलयावती के बीच जो वार्तालाप होता है, उस काल्पनिक प्रसंग द्वारा प्रेमी ने विक्रम के चरित्र को विशिष्टता को व्यक्त किया है। मलयावती से उनका कथन है - मेरा दुर्भाग्य है कि मैं राजा का बेटा हूँ। मैं अपने मस्तक पर से यह कलंक का टीका पौंछ डालना चाहता हूँ। ' [3]

- -

1. Vikramaditya of Ujjayini, Raj Bali Pandey, pp.102-103.
2. He is regarded peerless in the galaxy of the greatmen of the country - "BY Vikramaditya, the enjoyer of the earth, was done by anybody else, by him was given away what was not given by others, and he accomplished what was not possible of accomplishment of others", Vikramaditya of Ujjayini, p.260.

3. संवत् प्रवर्तन - तीसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ.95 - प्रथम सं. 1959

नाटक के पात्रों की ऐतिहासिकता पर प्रेमी ने नाटक की भूमिका में कुछ बातें व्यक्त की है। इतिहासकार जायसवाल जी एवं जयचन्द्र जी यह तो मानते है कि उज्जयिनी का नरेश गर्दभिल्लदर्पण था, आचार्य कालक शकों को भारत में लाए, लेकिन यह नहीं मानते कि गर्दभिल्ल दर्पण के पुत्र वि विक्रमसदित्य ने मालव प्रदेश को शकों से मुक्त किया। आचार्य कालक संबंधी आधी कथा को मानना और आधी को न मानना प्रेमी की सम्मति में उचित न था।

जयसवाल एवं जयचन्द्र ने गौतमीपुत्र शातकर्णि को शकों से भारत को मुक्त करनेवाला माना है जिसका एकमात्र कारण है - नासिक निरण्डु पर्वत में एक दीवार पर मिला हुआ गौतमी पुत्र की माँ गौतमी के लेन देन के संबंध में एक लेख जिसमें उसने अपने पुत्र को शक, भवन और पल्हवों का विदूषक लिखा है। अतः हम इस निर्णय पर नहीं पहुँच सकते कि कालक कथा में गर्दभिल्लदर्पण के पुत्र द्वारा शकों को मालवप्रदेश से मुक्त करने का जो उल्लेख है वह मिथ्या है। विक्रमादित्य द्वारा शकों का उन्मूलन किए जाने के बाद भी सौराष्ट्र में वे बने ही रहे और इन्हीं शकों का संघर्ष बाद में गौतमी पुत्र से हुआ जिसमें गौतमी पुत्र शातकर्णि विजयी हुआ। अब स्पष्ट है कि आचार्य कालक की कथा भी सही है। गौतमी के लेन देन का लेख भी।

प्रेमी ने शक क्षत्रप, भूमक, नहपाण और नहपाण के जामाता उषवदात को गर्दभिल्ल पुत्र विक्रम का समकालीन माना है। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने श्री जयसवाल जी के मत का अनुमोदन करते हुए नहपाण को उज्जयिनी का क्षत्रप माना है। यह भी माना है कि गर्दभिल्लदर्पण के बाद वह उज्जयिनी का राजा था, नहपाण का अन्त गौतमीपुत्र शातकर्णि द्वारा हुआ था।· इस अन्तिम निष्कर्ष का कारण भी नासिकवाला लेख है किन्तु जब

हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि उज्जयिनी के शकों का उच्छेद विक्रमादित्य ने किया तो यह निश्चित है कि गर्दभिल्लदर्पण के बाद उज्जयिनी का क्षत्रप नहपाण था तो हमें यह मानने में संकोच न करना चाहिए कि नहपाण से ही विक्रमादित्य ने मालव प्रदेश का उद्धार किया।

उषवदात नहपाण का जामाता था। इसका उल्लेख नासिक के पास गुहा संख्या 10 के बरांडे की दीवार पर छत के नीचे उसके पास एक लेख से सिद्ध है जिसमें उसने स्वयं ही अपने आप को राजा क्षहरात क्षत्रप नहपाण का जामाता लिखा।

प्रेमी ने भर्तृहरि को अनुश्रुति के आधार पर रखा है ।
अनुश्रुतियों के आधार पर प्रेमी ने भर्तृहरि को गर्दभिल्लदर्पण का शूद्रा दासी से उत्पन्न पुत्र मान लिया।

जैन साहित्य में उपलब्ध जिस कालकाचार्य कथा को नाटक का आधार बनाया है वह कई इतिहासकारों की दृष्टि में पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है। फ्रैंकलिन एजेरटन,[1] डा॰ अल्तेकर [2] आदि इतिहासकारों का विचार महत्वपूर्ण है।

- -

1. Franklin Egerton, "I am not aware that there is any definite and positive reason for rejecting the Jainistic Chronicles and for saying categorically that there was no such king as Vikrama living 57 B.C. . . .
Vikrama's Adventures. H.O.S. Introduction, p. L.XIV.

2. Though the story of Kalakacharya was written in the thirteenth century, it can be said with certainty that it contains historical materials in a good quantity". The Nagaripracharini Patrika, Vikrama Number V.S 2000, pp.85-86.

शकारि विक्रमादित्य के सम्पूर्ण जीवन को नाटक का विषय बनाने की प्रेमी की इच्छा न थी। विक्रम का प्रामाणिक जीवन भी नाटक में उपलब्ध नहीं होता। विक्रमादित्य ने संवत् चालू करते समय अपना नाम उसके साथ जोड़ना अनुचित समझा। उसने व्यक्ति को नहीं, घटना को प्रधानता दी। प्रेमी ने भी नाटक के नामकरण में व्यक्ति को प्रधानता न देकर घटना को प्रधानता दी, अतः इसका नाम 'संवत् प्रवर्तन' रखा गया।

<u>वातावरण</u>:- ऐतिहासिक वातावरण तैयार करने में नाटककार को काफी सफलता मिली है। पहले अंक के चौथे दृश्य में आचार्य कालक और भूमक के वार्तालाप से तत्कालीन वैदिक धर्म एवं जैन धर्म के पारस्परिक संघर्ष की सूचना मिलती है। पहले अंक के दूसरे दृश्य में उज्जयिनी के राजभवन में नरेश गर्दभिल्लदर्पण के पानगृह का वर्णन है। उस समय नर्तकियाँ विलासी राजाओं तथा उनके सामन्तों को सानुरोध प्यालियाँ भरकर मदिरापान कराती थीं। ये नर्तकियाँ तथा उनके नृत्य उस समय की शोभा समझी जाती थीं, जैसे एक एक सभासद का कथन है -- " उज्जयिनी की अप्सरा के हाथों से मदपान करने के लिए तो स्वर्ग के देवता भी तरसते हैं। '[1] इस प्रसंग को नाटक में लाकर तत्कालीन वातावरण का यथार्थ चित्र अंकित करने के लिए सफल प्रयत्न हुआ है।

- - - - - - -

श प थ

सत्य प्रेमी का प्रथम संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। नाटक का नायक यशोधर्मन जो एक साधारण व्यक्ति है, जनमत को उत्तेजित करके

---

1. संवत् प्रवर्तन - पहला अंक - दूसरा दृश्य - पृ. 10-11।

एक सफल, सशस्त्र राजनीतिक क्रान्ति करते है और विश्वविजयी हूणों की शक्ति को धूल में मिलाकर देश की स्वतंत्रता को सुरक्षित करते है । नाटक में भारतीय इतिहास के आधार पर भारतीयों के उन गुणों और संस्कारों का उल्लेख है जिनके कारण भारत तेजस्वी; वीर और बलवान बना। तो उन निर्बलताओं और त्रुटियों का भी - जिनके कारण भारत को अनेक बार विदेशी शक्तियों से पराजित होना पडा ।

विष्णुवर्धन के पिता की हत्या

विष्णुवर्धन के पिता दशपुर के विषयपति है । गुप्त साम्राज्य के गरुडध्वज की रक्षा में उनकी हत्या हूण सेनाओं से रण के रणस्थल में होती है। प्रतिशोध की भावना से प्रज्वलित विष्णुवर्धन आतंककारिणी हूणों को मालव से निर्वासित करने की प्रतिज्ञा लेते है । नाटक के इस प्रसंग के लिए कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। यह प्रेमी की कल्पना है। यशोधर्मन के पिता का उल्लेख इतिहास में कहीं भी नहीं मिलता। डा॰धनंजय के अनुसार प्रेमी की कल्पना से नाटक में कार्यकारण की स्थापना होती है। यशोधर्मन ने हूणों का विनाश किस कारण किया, इसकी संबद्धता इस काल्पनिक घटना से पूर्णतः बैठ जाती है। 1 प्रेमी की कल्पना से नाटक में कार्य कारण व्यक्त हो जाता है, यह तो ठीक है। लेकिन एक महान कार्य एक महान प्रेरणा से हो, यही उचित है । भारत की सीमा से बाहर हूणों को निर्वासित करने की उनकी प्रतिज्ञा के मूल कारण के रूप में उनके पिता की हत्या का उल्लेख करें तो दोष यह निकलेगा कि इससे विष्णुवर्धन के चरित्र की विशिष्टता में ठेस पहुँचेगी। इस कल्पना से यह भी प्रतीत होता है कि यदि उनके पिता की हत्या हूणों द्वारा न हुई होती तो हूणों से प्रतिशोध लेने के लिए विष्णुवर्धन कभी भी कटिबद्ध न होते।

- -

1॰ हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा॰ धनंजय - पृ॰ 266

हूणों का आक्रमण

विष्णुवर्धन के समय गुप्त साम्राज्य अन्तिम सांस ले रहा था। महान पराक्रमी सम्राट समुद्रगुप्त जीवन भर हूणों के टिड्डीदल को भारत में न घुसने देने का प्रयास करते रहे। इसी प्रयास में उन्होंने वीरगति पाई। हूणों ने, जो भारत के उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश से ही टकरा टकराकर रह जाते थे, अग्रसर होकर मालव प्रदेश तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। गुप्त साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो गयी। भारत के अन्य राज्य अपने अपने राज्य में मुंह छिपाये बैठे थे। उन्हें यह नहीं सूझता था कि अपने शत्रु को संगठित होकर पराजित कर भारत से कैसे निकाला जाए। तब जनता में से एक वीर प्राण खड़े होकर विश्व विजयी हूणों की शक्ति को धूल में मिलाकर देश को स्वतंत्र करते हैं। यह प्रसंग इतिहास के साक्ष्यों के अनुसार ही है। 1

वत्सभट्ट रचित प्रशस्ति पत्र

यशोधर्मन के संबंध में इतिहास में बहुत कम जानकारी मिलती है। जो भी जानकारी प्राप्त होती है वह केवल एक शिलालेख से है, अन्यत्र कहीं भी उल्लेख नहीं। नाटक के अन्तिम दृश्य में प्रेमी इस शिलालेख का वर्णन करते हैं। विष्णुवर्धन के मित्र एवं महामंत्री वत्सभट्ट ने युद्ध से लौटने पर एक प्रशस्ति पत्र लिख दिया जो कीर्तिस्तम्भ में प्रकट हुआ। उसमें लिखा है - जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोवर्धन ने उन प्रदेशों को भी जीता, जिनपर गुप्त सम्राटों का आधिपत्य नहीं था और न ही जहां राजाओं के मुकुट को ध्वस्त करनेवाली हूणों की आज्ञा ही प्रवेश कर पायी थी। लौहित्य से लेकर महेन्द्र पर्वत तक और गंगा से - स्पष्ट हिमालय से - लेकर पश्चिम पयोधि तक के प्रदेशों के सामंत उसके

---

1. The History and Culture of Indian People, Vol. III, The Classical Age, p. 39 (1962).

चरणों पर लोटे। मिहिरकुल ने जिसने भगवान शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सिर नहीं नवाया, अपने मुकुट के पुष्पों के द्वारा उसके युगल चरणों की अर्चना की। " ।

मंदसौर से प्राप्त लेखों के अध्ययन से विदित होता है कि यशोवर्धन ने सुदूर देशों तक अपनी विजय पताका फहरायी थी। उनका प्रताप इतना बढ़ गया था कि हूणों के राजा मिहिरकुल ने उसके पैरों की पूजा की।

जैसे --ये भुक्ता गुप्तनाथैर्न सकल वसुधा क्रान्तिदृष्टप्रतापै-
र्नाज्ञा हूणाधिपानां क्षितिपतिमुकुटाध्यासिनी यान् प्रविष्टा
अलौहित्यो प कंठा त्तलवनगहनोपत्यका मा महेन्द्रा
दा गङ्ग श्लिष्टसानोस्तुहिनशिखरिणः पश्चिमादापयोधेः ।
सामन्तैर्यस्य बाहुद्रविणहृतमदैः पादयोरानमद्भि
श्चूडारत्नांशुराजिव्यतिकरशबला भूमिभागाः क्रियन्ते ।
चूडा पुष्पोपहारैः मिहिरकुल नृपेणार्चितं पाद युग्म । " [2]

नाटक में वत्सभट्ट ने विष्णुवर्धन को राजा न मानकर जनेन्द्र कहा है। मंदसौर के शिलालेख में भी उन्हें जनेन्द्र तथा शत्रु सेना को छिन्न भिन्न करनेवाला बताया गया है। जैसे :-

" प्रमद वनमिवान्तः शत्रु सैन्यं विगाह्य । " [3]

---

1. शपथ - प्रेमी - तीसरा अंक - पाँचवां दृश्य - पृ. 155
2. सरकार - सेलेक्टेड इंस्क्रिप्शंस - पृ. 394-395
3. -- " -- पृ. 387

'एंशियेंट इंडिया' नामक पुस्तक में यशोवर्धन के संबंध में उल्लिखित विवरण, वत्सभट्ट के प्रशस्ति पत्र से मेल खाता है।[1]

मंदसौर के लेख में विष्णुवर्धन के लिए [redacted] नराधिपति, राजाधिराज और परमेश्वर की उपाधियाँ भी आती हैं। उसने पूर्व उत्तर के बहुत से नरेशों को परास्त किया था। -

" प्राचो नृपान्सुबृहतश्च बहूनुदीच:
साम्ना युधा च वशगान्प्रविधाय येन।"[2]

एलेन[3] तथा फ्लीट[4] ने यशोवर्धन और विष्णुवर्धन को दो भिन्न व्यक्ति माना है। इन विद्वानों के अनुसार यशोवर्धन का सामंत था विष्णुवर्धन। परन्तु यह मत स्वीकार कर लेना ठीक न होगा, क्यों कि इसी अभिलेख में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि यशोधर्मन, विष्णुवर्धन का ही दूसरा नाम है।[5]

सबसे पहले हर्नले ने दोनों की एकता की ओर इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित किया, जैसे - -

'श्री विष्णुवर्धन - नराधिपति स एव।'[6]

---

1. Ancient India, R.C. Majumdar, H.C.R. Choudari, Kalkinkar Datta, p.154.
2. सरकार - सेलेक्टड इंस्क्रिप्शंस - पृ. 388
3. Journal of Asciatic Society, pp.89-93.
4. Decline of Kingdom of Magad, p.118.
5. ibid p.118.
6. सेलेक्टड इंस्क्रिप्शंस - सरकार - पृ. 388

तदुपरान्त डा॰ जयसवाल [1] और डा॰ सरकार [2] ने दोनों को एक ही सिद्ध करने के निमित्त निम्नलिखित तर्क को प्रस्तुत किया। (1) दोनों की उपलब्धियाँ एक सी है - यशोधर्मा जनेन्द्र - विष्णुवर्धन नराधिपति । मन्दसोर के स्तम्भ लेख में यशोधर्मन के विषय में जिन कृतियों का निरूपण किया गया है, वे इस स्थान के शिलालेख में वर्णित विष्णुवर्धन की कृतियों से मेल खाती हैं । एक ही लेख में यशोधर्मन और विष्णुवर्धन का नामोल्लेख और उनकी प्रशंसा की गई है। अतः वे विभिन्न नहीं हो सकते। दोनों एक ही काल में एक ही क्षेत्र में स्वामी नहीं हो सकते थे। इससे इन दोनों की एकता प्रमाणित होती है।

मंदसोर से प्राप्त लेखों के आधार पर उदयनारायण राय ने "यशोधर्मन की लौहित्य की विजययात्रा मगध में गुप्तों के विरुद्ध भी हुई होगी, ऐसा माना है।" [3] आर॰आर॰दिवाकर[4] और बी॰जी॰ गोखले[5] ने यशोधर्मन को गुप्त साम्राज्य पर प्रहार करते हुए चित्रित किया है।

विष्णुवर्धन के मन में एक सम्राट बनने की इच्छा नहीं थी। अतः उन्होंने अपने मित्रों से कहा - - " मैं मालव भूमि के लिए उस दिन को अभिशाप समझूँगा जब यहाँ के एक भी हृदय में सम्राट बनने की दुराशा जन्म लेगी। मालवों के हृदय में साम्राज्य की लालसा नहीं, स्वाधीनता की इच्छा होनी चाहिए जो कि मैं समझता हूँ हम में है और यही इच्छा हमें सारे भारत में जाग्रत करनी है।" [6] नाटक का उपर्युक्त प्रसंग बी॰जी॰ गोखले

---

1. इंडियन एंटिक्विटी - पृ॰ 148
2. सरकार - सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस - पृ॰ 386
3. गुप्त सम्राट और उनका काल - उदयनारायण राय - पृ॰324 - प्रथम सं॰ 1971
4. Bihar through the Ages, R.R. Diwakar, p.260.
5. प्राचीन भारत, इतिहास और संस्कृति - बी॰जी॰ गोखले - पृ॰73
6. शपथ - प्रथम अंक - सातवाँ दृश्य - पृ॰ 59-60

के विवरण से मेल खाता है। " [1]

यशोधर्मन द्वारा मिहिरकुल की पराजय ऐतिहासिक सत्य है। हूणों के साथ हुए युद्ध में जनेन्द्र के साथ मालव योद्धा एवं उत्तरापथ और दक्षिणापथ के सभी राजाओं, गणतंत्रों का लड़ना भी ऐतिहासिक संभाव्यता लिए हुए है। [2]

बन्धुविष्णु को नाटककार ने मालव प्रदेश के हूणों के अधीन राजा बताया है। इतिहासकार के लिए भी यह मान्य है। [3]

विष्णुवर्धन की प्रेयसी

बन्धुविष्णु की बहन सुहासिनी को विष्णुवर्धन की प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है। देश के प्रति विश्वासघात करनेवाले अपने अग्रज के कार्य से क्रुद्ध होकर सुहासिनी का, अपने ही कुल के विनाश के लिए यशोधर्मन के पास आकर रहने लगना, काल्पनिक घटना है। युद्ध में सुहासिनी के धनुष से छूटे हुए शर ने उसके भाई के प्राण लिए। यह प्रेमी की की निजी उद्भावना है। इस काल्पनिक घटना को डा॰धनंजय नितान्त अस्वाभाविक एवं असंगत मानते है। [4] धनंजय के उपर्युक्त विचार से सहमत होना कठिन लगता है। सुहासिनी अपने कुल के विनाश की कामना क्यों लेती है, इसका उत्तर हमें मिलता है - "जब मेरा अग्रज ही शत्रु का दास बनकर मेरे सतीत्व नाश का

---

1. प्राचीन भारत - इतिहास और संस्कृति - बी॰जी॰गोखले - पृ॰ 73
2. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ - केशवकुमार ठाकुर - पृ॰ 81
3. गुप्त सम्राट और उनका काल - उदयनारायण राय - पृ॰ 303 (अ)
   प्राचीन भारत का इतिहास - रमाशंकर त्रिपाठी - पृ॰212 - प्रथम सं॰1968(आ)
4. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहासतत्व - डा॰धनंजय- पृ॰267

तमाशा देखने को प्रस्तुत हो गया तब मेरी चिरसंगिनी कृपाण ने मेरा साथ दिया।'[1]

एक स्त्री की सबसे मूल्यवान संपत्ति है उसका चारित्र्य।जब उसके सतीत्व के कलंकित होने की संभावना दीखती है, तब उस आपत्ति से किसी न किसी प्रकार बचने की कोशिश हर एक कुल नारी करती है। इसलिए सुहासिनी का अपनी मान रक्षा के लिए दशपुर में यशोधर्मन के भवन में शरणार्थिनी के रूप में जाना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। दूसरा है कन्यविष्णु की हत्या । इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत में विशेषकर राजस्थान की पुण्य-भूमि में अनेक ऐसी वीरांगनाएँ एवं वीर पुरुष जन्मे, जिन्होंने देशद्रोहियों का प्राण लेने से कभी भी झिझक नहीं दिखाई, चाहे वे उनके सगे भाई या बहन हो, पिता या माता हो, पति, पत्नी या कन्या हो। सुहासिनी ने अपने अग्रज की हत्या नहीं की, बल्कि एक देशद्रोही नरेश का वध किया।

मिहिरकुल एवं तोरमाण दोनों ऐतिहासिक पात्र हैं जिनका अस्तित्व इतिहास में प्राप्त है।[2]

एरण पर मिहिरकुल की विजय ऐतिहासिक है। एरणविजय के बाद अपना स्वागत न होते देख मिहिरकुल का एरण में आग लगा देना, नागरिकों को जीवित ही जला देना, आग में झोंक देना कल्पित है। मिहिरकुल की नीचता की पराकाष्ठा स्पष्ट करने के लिए ही प्रेमी ने ऐसी कल्पना की जो अस्वाभाविक नहीं है। जलते हुए घरों से बाहर निकले एरणवासियों को जब बर्बर हूण पकड़कर जीवित ही लपटों में फेंकने लगे तब उनका अपनी मर्यादा

---

1. शपथ - प्रथम अंक - आठवाँ दृश्य - पृ.99
2. (अ) गुप्त साम्राज्य का इतिहास - वसुदेव उपाध्याय - पृ.138-तृतीय सं.1969
   (आ) The History and Culture of Indian People, Vol III, The Classical Age, p.37.

की रक्षा के लिए खड्ग लेकर हूणों का सामना करते हुए दिखाना आत्मसम्मान की भावना को मुखरित करने के लिए रखा ब गया है। नाटक के प्रथम अंक के आठवें दृश्य में चार हूण सैनिकों का एक चण्डाल स्त्री को बाँधकर ले आना माल् नामक भील का हूणों का सामना करके उन्हें मारना, सुहासिनी एवं उमा का वहाँ पहुँचकर विरोध करना काल्पनिक प्रसंग है जिसकी योजना का उ-द्देश्य पिछले अध्याय (प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में समसामयिक सामाजिक विचार) में स्पष्ट किया गया है।

नाटक के छोटे छोटे प्रसंग जैसे अभयदत्त, जयदेव एवं धर्मदास का मिलकर यशोधर्मन के पास आना, हूणों से लोहा लेने की प्रतिज्ञा लेना, उसके द्वारा एक राष्ट्र के निर्माण पर बल देना स्पष्टतः प्रेमी की अपनी कल्पना है। मंदाकिनी का अपनी शिष्याओं को एकत्रित कर बाण संचालन की शिक्षा देना, नगर श्रेष्ठी हेमचन्द्र की कन्या का मंदाकिनी की सेना में भर्ती होना ऐतिहासिक नहीं । इन घटनाओं से नाटकीय सौंदर्य में कोई उत्कृष्टता नहीं आती। फिर भी ऐतिहासिक तत्वों की इनसे कोई हानि न पहुँचती या ये प्रसंग असंभाव्य भी प्रतीत न होते। द्वितीय अंक के पाँचवें दृश्य में धर्मदास, जयदेव आदि के अनर्गल वार्तालाप, मधुबाला के वेष में उमा का वहाँ आना, छठे दृश्य में हेमचन्द्र और युवती का प्रलाप मूल कथानक से कोई संबंध न रखते।

प्रेमी ने एक विरोधी कल्पना द्वारा इतिहास के साथ न्याय नहीं किया। नाटक में दिखाया गया है कि बौद्ध यशोधर्मन के विरुद्ध हूणों की सहायता करते हैं । लेकिन इतिहास तो साक्षी है कि मिहिरकुल बौद्धों

- -

का घोर विरोधी था। ' [1]

नाटक के द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में विष्णुवर्धन एवं बौद्धभिक्षु महाज्ञान के बीच मगध के शुंग सम्राट पुष्यमित्र की बौद्ध धर्म विरोधी भावना को लेकर विवाद चलता है। पुष्यमित्र को बौद्ध धर्मानुयायी एवं बौद्ध धर्म के कट्टर विरोधी के रूपों में चित्रित किया। यह भी इतिहास के अनुसार है। पुष्यमित्र बौद्धों का शत्रु था या नहीं, उसके बारे में इतिहासकारों में मतभेद है। आर०आर०दिवाकर [2] ने पुष्यमित्र को बौद्धों का अनुभावी एवं भिक्षु धर्म रक्षित [3] ने उसे बौद्ध धर्म का विरोधी माना है।

बौद्ध भिक्षु महाज्ञान का यह समर्थन करना कि पुष्यमित्र ने बौद्ध विहारों को भस्मसात कर डाला था, एवं उसने घोषणा की थी कि जो उसे श्रमण का मस्तक देगा उसे मैं सौ दीनार दूंगा भी ऐतिहासिक सत्य लिए हुए है। [4]

मिहिरकुल को कश्मीर नरेश के रूप में भी हम देखते हैं। यह भी एक प्रामाणिक तथ्य है। [5]

ऐतिहासिक दृष्टिकोण :-

इतिहास को लोकोपयोगी शिक्षा का माध्यम माना गया है।

---

1. भारत की प्रसिद्ध लडाइयाँ - केशवकुमार ठाकुर - पृ० 80, तीसरा सं० 1967
   भारत का इतिहास - क्षितीश्वर प्रसाद सिंह - पृ० 158, अष्टम सं० 1964
   The Wonder that was India, A.L. Basham, (1963) p.67.
2. Bihar through Ages, R.R. Diwakar, p.202.
3. सारनाथ का इतिहास - भिक्षु धर्म रक्षित - पृ० 58-59, प्रथम सं० 1961
4. हिन्दू भारत - रतिभानुसिंह नाहर - पृ० 138
5. यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरी दुर्ग शब्दाभिमानम् ।
   'Selected Inscriptions', Sarkar, p.394.
   Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.177.

शपथ में हरिकृष्ण प्रेमी का ऐतिहासिक चिन्तन भी इसी स्तर का है। इस तथ्य का पता 'शपथ' की लेखकीय भूमिका से मिलता है- 'हमें अपने देश के इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिए । इतिहास के अध्ययन का अर्थ तिथियों, घटनाओं और राजाओं के नामों को याद कर लेना नहीं , इतिहास तो हमें बताता है कि हमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं , - किस तरफ जाने में पतन है, किधर जाने में उत्थान, कहाँ मरण है, कहाँ जीवन।" [1]

वातावरण :-

अन्य नाटकों की अपेक्षा प्रेमी के इस नाटक में ऐतिहासिक वातावरण का अंकन विस्तृत रूप में नहीं हुआ है। प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में चार शस्त्रास्त्र सज्जित हूण सैनिकों को एक भारतीय महिला पर अत्याचार करते हुए दिखाकर प्रेमी ने हूणों की नृशंसता का परिचय दिया है। हूणों के अत्याचार , बौद्धों के असंतोष एवं धार्मिक विद्रोह के द्वारा वातावरण में एक क्षीण झलक मात्र मिलती है।

=X=X=X=X=X=X=X=X =X =

प्र का श स्त म्भ

राजस्थान की पुण्यभूमि ने अनेक वीर पुरुषों को जन्म दिया जिनमें बाप्पा रावल का नाम भी स्मरणीय है। प्रेमी ने बाप्पा रावल के प्रारंभिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए 'प्रकाशस्तम्भ' को खड़ा किया। बाप्पा रावल के जीवन के साथ अनेक ऐतिहासिक और चमत्कारिक घटनाएँ जुटी है जिन्हें इस

1• शपथ - स्पष्टीकरण - पृ• 6

बुद्धिवादी युग में कोई मानने को तैयार न होगा। प्रेमी ने उन घटनाओं को नाटक में न आने दिया है।

बाप्पा एवं पद्मा में विवाह का खेल

नागदा के सोलंकी नरेश की कन्या पद्मा जलझूलनी ग्यारस के दिन सखियों के साथ सरोवर में स्नान करने आयी। उस आठ वर्षीय बालिका को झूला झूलने की इच्छा हुई। बारह वर्षीय लड़के बाप्पा से जब रस्सी माँगी गई तो बाप्पा ने कहा था कि राजकुमारी पहले उसके साथ विवाह का खेल खेलेगी तब वे झूला डालेंगे। तब राजकुमारी ने सब सहेलियों के कहने से बाप्पा के साथ विवाह का खेल खेला था। बाप्पा के मोटे सूत के मैले अँगोछे से राजकुमारी की महीन इन्द्रधनुषी चुनरी का छोर बाँध दिया गया और सात फेरे भी डाले गये। 'राजस्थान का इतिहास' में इस घटना का उल्लेख किया।[1] प्रेमी को यह घटना नाटकीय लगी। और उसी घटना से उन्होंने नाटक का प्रारंभ कर डाला।

बाप्पा एवं पद्मा विवाह के संबंध में वादविवाद

बचपन का खेल बाप्पा के लिए जीवन का लक्ष्य बन गया। वह पद्मा से कहता है - - " जीवन की अन्तिम साँस तक बाप्पा के अलगोजे के स्वरों में पद्मा का राग गूँजेगा।"[2] पद्मा के मन में भी बाप्पा के प्रति प्रेम छिपा पड़ा था। वह अपना प्रेम प्रकट करती है - - 'नित्य ही तुम्हारे स्वरों को सुनने के लिए जल विहार के बहाने सहेलियों सहित आती

- -

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 133 - दूसरा सं. 1965

2. प्रकाशस्तम्भ - प्रथम अंक प्रथम दृश्य - पृ. 20

आती हूँ। कितनी बार मेरा हृदय वीणा की तान से खींचे मृग की भाँति तुम्हारी ओर भागा। [1]लेकिन उसे लोकलाज का भय था, कुल की परंपरा से वह डरती थी, जाति और पद की सीमाएँ पाँवों की बेडियाँ बन गई थीं। अपने राजमहल को छोडकर, गायें चरानेवाले एवं अलगोजा बजानेवाले बाप्पा की कुटी में जा बसने के लिए तैयार न थी। दोनों में वाद-विवाद चलता है। यह प्रसंग काल्पनिक है जिससे प्रेमी ने [illegible] अपने उद्देश्य की पूर्ति की। समाज के पतन का एक कारण यह है कि लोग मनुष्यता और प्रेम की अपेक्षा वैभव और प्रभुता को महत्व देते है। पद्मा इन असंख्य लोगों का प्रतीक मात्र है। बाप्पा और पद्मा मिलन मार्ग में खडी रहनेवाली प्राचीर है जाति। प्रेमी चाहते हैं कि समाज में वैषम्य को परिपुष्ट करनेवाली परंपराओं का अन्त करना मानव का कर्तव्य है। बाप्पा और पद्मा के वार्तालाप का प्रसंग रखकर प्रेमी ने अपने आदर्श की स्थापना की।

सोलंकी नरेश का बाप्पा के प्रति विरोध

किसी बडे भूपाल के साथ राजकुमारी के विवाह का प्रबंध होना, नागदा नरेश को अपने बेटी का बाप्पा के साथ हुए विवाह के खेल की जानकारी प्राप्त होना और उसका ज्वालामुखी की भाँति भभक उठना - ये प्रसंग पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है। [2] लेकिन इतिहासकार ने आगे चलकर नागदा नरेश और उनकी कन्या के संबंध में कुछ भी नहीं लिखा है। प्रेमी ने इतिहास के रिक्तस्थान को भरने का प्रयत्न किया है। नाटक का यह प्रसंग कि राजा का अपनी बेटी पर तलवार उठाना, उस समय बाप्पा का वहाँ प्रवेश करके नागदा नरेश की तलवार को रोकना, तलवार के एक ही वार से नरेश

---

1. प्रकाशस्तम्भ - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ.20

2. टाड कृत राजस्थान का इतिहास

की तलवार को भूमि पर गिरा देना, पद्मा का अपने पिता के हाथ से छूटी हुई तलवार उठाकर सशस्त्र युवतियों के दल सहित बाप्पा से लडने के लिए तैयार होना, प्रेमी की कल्पना है जो संभाव्य भी है। नागदा नरेश जातिगत और वंशगत परंपराओं और संस्कारों के ऊपर कभी न उठ सकता था। अपनी पुत्री को एक अवंशी, अजाति ग्वाले के साथ विवाह का खेल खेलते हुए जानकर उसका क्रोध से आग बबूला होना, पुत्री को तलवार के घाट उतारने के लिए उद्यत होना स्वाभाविक है।

टाड ने लिखा है -- " बाप्पा के साथ सोलंकी राजकुमारी के विवाह की बात उसके पिता से छिपी न रही। -- इस बात को बाप्पा ने अपने साथियों के द्वारा सुना। उसको आनेवाली विपत्ति की आशंका होने लगी। इसलिए वह पर्वत के एक गुप्त स्थान में जाकर रहने लगा। " [1] लेकिन नाटक प्रेमी ने परिवर्तन किया। नाटक के प्रारंभ में ही बाप्पा के वाक्यों से पता चलता है कि वह दो सो साथियों को लेकर गुहाओं में शस्त्र साधन करता रहता है। टाड के विवरण से ऐसा लगता है कि बाप्पा एक कायर आदमी था, इसलिए नागदा नरेश से डरकर वह गुहा में जाकर रहने लगा। नाटककार जो परिवर्तन लाया उससे लाभ यह हुआ कि बाप्पा एक कायर बनने से बच गया।

पहले अंक के पहले दृश्य में बाप्पा और एक ब्राह्मण के वार्तालाप द्वारा नाटककार ने समाज को छिन्न भिन्न करनेवाली जातिप्रथाओं एवं मनुष्य मनुष्य में भेदभाव की दीवारें खडी करनेवाली रूढियों, परंपराओं की ओर इशारा किया है। तीखा व्यंग्य भी किया है।

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास

गुरु हारीत का बाप्पा को नायक चुन लेना:-

एक दिन हारीत ने देखा कि एक तेजस्वी एवं बलिष्ठ बालक एक शिला पर राजसी मुद्रा में बैठा था। एक भील बालक ने उसके मस्तक पर स्वनिर्मित राजमुकुट रखा एवं एक अन्य भील बालक ने अपने अँगूठे को तीर से छेदा और शिला सिंहासन पर अवस्थित बालक का अपने रक्त से राजतिलक किया। हारीत ने तीनों बालकों को अपने स्वप्नों का साथी बना लिया। देवा और बाल्या ही वे दोनों अन्य बालक थे। नाटक के इस प्रसंग के समान एक घटना इतिहास में भी मिलती है, अन्तर केवल इतना है कि इतिहास में प्राप्त घटना बाप्पा की जीवनी से संबंधित नहीं, उसके पूर्वज गोह नामक एक बालक से संबंधित है। इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि गोह की आठवीं पीढ़ी में बाप्पा का जन्म हुआ।" 1

बाप्पा के माता - पिता

बाप्पा चित्तौड़ नरेश मानसिंह मौर्य का भांजा था। जब अरब आक्रमणकारियों ने बाप्पा के पिता के राज्य पर आक्रमण किया तब मानसिंह अपने बहनोई की सहायता के लिए दौड़ न आया। वह अपनी जान की खैर मनाते हुए चित्तौड़ में दुबके बैठे हो रहे। अरबों के आक्रमण से बाप्पा के पिता की राज्यलक्ष्मी रूठ गई और उन्हें भी वीरगति प्राप्त हुई। बाप्पा की माँ जो उस समय दो प्राणों से थी, (अर्थात् बाप्पा गर्भस्थ शिशु था) राजधानी में नहीं थी। वह भवानी के दर्शनार्थ चित्तौड़ आ रही थी कि मार्ग में उसने अपने सर्वनाश का समाचार सुना। अपने भाई की निर्लज्जता, कायरता और स्वार्थपरता के कारण ज्वाला(बाप्पा की माँ) चित्तौड़ न

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 132

लौट आयो। उसने अपने पुत्र को किसी के टुकड़ों पर पालना पसन्द नहीं किया। उसके शरीर में बल था। दया का दान लेने की अपेक्षा अपने श्रम के उपहार पर अपने बालक को पालना अधिक पसन्द किया। हारीत बाबा ने ज्वाला की मदद की। " नाटक के इस प्रसंग का आधार टाड कृत राजस्थान का इतिहास है, अंतर यह है कि टाड के अनुसार उपर्युक्त घटना बाप्पा के पूर्वज गोह के जीवन से संबंधित है। " ।

बाप्पा के जन्मकाल के संबंध में इतिहासकारों में मत-भेद है। टाड ने लिखा है कि राजा शिलादित्य के शासनकाल में संवत् 105 में वल्लभीपुर का विनाश हुआ और उसकी नवीं पीढ़ी में बाप्पा का जन्म हुआ। राजबली पांडेय लिखते हैं - - "इस वंश (गहलौत) का आठवाँ राजा बाप्पा रावल (734-753) बड़ा वीर विजयी और प्रतापी हुआ। उसने मेवाड़ पर अपना अधिकार जमाया और सिन्ध के अरबों को दबा रखा।"[2]

लेकिन राणा के महलों में जो ग्रंथ पाये जाते हैं, उनसे जाहिर होता है कि संवत् 191 में और 135 ईस्वी में बाप्पा रावल ने जन्म लिया था। एक शिलालेख से मालूम होता है कि संवत् 770 और सन् 714 में चित्तौड़ का राजा मानसिंह मौर्यवंशी था और बाप्पा रावल उस वंश का भांजा था। राजा मानसिंह ने बाप्पा रावल को पंद्रह वर्ष की अवस्था में अपने राज्य का सामंत बनाया था। उसके बाद चित्तौड़ राज्य के सामंतों की सहायता से बाप्पा ने वहाँ का राज्य अपने अधिकार में कर लिया। इस

- -

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 131

2. भारतीय इतिहास का परिचय - राजबली पांडेय - अध्याय 22, पृ. 215

मतभेद में सही बात का निर्णय करना बहुत कठिन मालूम होता है। लेकिन इसका निर्णय करने में सौराष्ट्र के सोमनाथ मंदिर में मिले हुए एक शिलालेख से सहायता मिलती है। उसमें वल्लभीपुर नाम के एक संवत् का उल्लेख है जो विक्रम संवत् के 375 वर्ष बाद आरंभ होता है। ऊपर संवत् 205 वल्लभीपुर के विनाश का संवत् लिखा गया है। यह संवत् विक्रम संवत् के 375 के बाद आरंभ होता है। संवत् 375 में संवत् 205 जोड़ देने से 580 विक्रम संवत् आता है। इसी संवत् और सन् 524 ईस्वी में म्लेच्छों ने वल्लभीपुर का विध्वंस किया था।

मौर्य राजाओं के समय के शिलालेख से जाहिर होता है कि बाप्पा का जन्म संवत् 770 में हुआ। अगर इस 770 में 580 घटा दिए जाएं तो 190 बाकी रहते हैं। इस 190 में एक वर्ष जोड़ देने से भट्ट कवियों का उल्लेख सही हो जाता है और एक वर्ष के अन्तर को भुलाकर इस बात को सही मान लेना पड़ता है। इस हिसाब से चित्तौड़ का राज्याधिकार प्राप्त करने के समय बाप्पा की अवस्था पंद्रह वर्ष की थी। इससे यह भी जाहिर है कि बाप्पा ने सन् 728 ई॰ में चित्तौड़ का राज्य प्राप्त किया था। " [1]

बाप्पा का अरबी शासक को पराजित करना

चित्तौड़ाधिपति मानसिंह मौर्य का सिन्ध का विदेशी शासक जुनैद की अधीनता स्वीकार करना बाप्पा के सेनापति के रूप में नियुक्त करना, मित्रता की सन्धि के बाद भी जुनैद की, चित्तौड़ पर आक्रमण करने की कोे

- -

1• टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ॰135 - 136

योजना बनाना, बाप्पा का अपने गुरु हारीत की सहायता पाकर जुनैद को पराजित करके भगा देना पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है। " [1]

उपर्युक्त घटनाओं की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालते हुए हुए प्रेमी ने नाटक की भूमिका में लिखा है - - 'हिन्दी भवन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित "हमारा राजस्थान' ग्रंथ में उल्लेख है - 'चित्तौड पर हुए एक अरब आक्रमण में इसी मान मौर्य ने राज्य की रक्षा करने में कमजोरी दिखाई जिसपर उसके सरदार नागदा के गुहिल पुत्र बाप्पा (कालभोज) ने 728 ई. के करीब चित्तौड का दुर्ग उससे छीन लिया था। अपने कथानक को आगे बढाने के लिए मुझे इसी घटना से सहारा प्राप्त हुआ। इसी पुस्तक में आगे लिखा है - सिन्ध पर अरबों का अधिकार होने पर, राजस्थान के राज्यों का अरबों से सीधा संसर्ग पडने लगा, पर राजस्थान के छोटे छोटे राज्य उस बाढ को रोकने में असमर्थ हुए। तब राजस्थानी जनता को आपने नये नेता तलाश करने पडे। मेवाड में कालभोज बाप्पा या बाप्पा रावल और गुर्जरत्रा में प्रतिहार नागभट्ट इन्हीं राजक्रान्तियों के फलस्वरूप सामने आए। इस कथन से स्पष्ट है कि बाप्पा रावल स्वयं राजा नहीं था, लेकिन अरबों की बाढ को रोकने के लिए उसे दुर्बल राजा से राज्य छीनना पडा।

<u>बाप्पा का विवाह</u>

जब अरबी सेना बाप्पा के आक्रमण से भाग निकली तब एक अरब सेनापति की इ सलीम की पुत्री हमीदा एक ऊँट पर सवार थी, वह भूमि पर गिर पडी। बाप्पा उसे अपने घोडे पर बिठाकर डेरे में लाये ।

---

1. A Comprehensive History of India, Vol V, Ch. 10 p.784, by Dr. G.N. Sharma.

बाप्पा ने कहा कि वे उसे पिता के पास पहुँचाएँगे। लेकिन वह जाना नहीं चाहती थी। बाप्पा ने उस विदेशी बाला को अपनी जीवन संगिनी बना ली। टाड ने इस घटना का स्पष्ट उल्लेख किया है।' ' [1] जिसका प्रेमी ने नाटक में उपयोग कर लिया। इस प्रसंग की योजना नाटक में दो भिन्न संस्कृतियों के सम्मिलन का प्रतीक बनकर आती है।

बाप्पा के चरित्र को उत्कृष्टता प्रदान करने में प्रेमी ने सफलता पाई है। बाप्पा सौंदर्य या प्रभुता का लोभी नहीं । नागदा नरेश की कन्या ने बाप्पा से कहा था कि राजकुमारी से विवाह करने के लिए उन्हें राजा बनाना होगा। बाप्पा की दृष्टि में राजकुमारी पद्मा की शर्त मानवता का अपमान था। हमीदा तो विदेशिनी थी, विजातीय थी, विधर्मिणी थी, फिर भी बाप्पा ने उसे अपनी अर्धांगिनी बनाई। क्योंकि बाप्पा कहते हैं - "मेरे लिए तो संसार में केवल एक धर्म है और वह है मानवता। " अतः इस नाटक में मानवतावाद की स्थापना है।

<u>वातावरण</u> ;- बाप्पा रावल के जीवन की 'नागदा के सोलंकी राजा की पुत्री से विवाह का खेल खेलने की घटना से ही प्रेमी ने नाटक का प्रारंभ कर डाला। यह प्रसंग हमें उस समय की सामाजिक परिस्थिति का बोध कराता है। यह स्पष्ट होता है कि उस समय जातिगत विवाद उग्र था। तीसरे अंक के पहले दृश्य में मानसिंह बाप्पा एवं हारीत के वार्तालाप से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का परिचय अवश्य मिलता है कि राजाओं की स्थिति ऐसी थी कि एक पर आक्रमण होने पर दूसरा आनंद की बंसी बजाता था, यहाँ तक कि प्रजा में भी शत्रु से लड़ने के लिए कोई उत्साह नहीं था। राजा मानसिंह तो अपने राजमुकुट की रक्षा करने के लिए विदेशी शासक के मांडलिक बनने को तैयार हो गए।

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 134

शतरंज के खिलाड़ी

जेसलमेर के महारावल तथा अल्लाउद्दीन के युद्ध का वर्णन नाटक में मिलता है।

इतिहास के अनुसार ही नाटक में युद्ध का कारण महारावल जीतसिंह के छोटे पुत्र द्वारा अल्लाउद्दीन का खजाना लूटा जाना है।[1]

अलाउद्दीन की सेना पंचनद नदी के किनारे ठहरी हुई थी। रत्नसिंह और उनके सिपाहियों ने साहूकारों का रूप रखकर अलाउदीन की सेना के पास ही डेरा डाल दिया। फिर रात्रि के समय अचानक तलवारें लेकर शत्रु सेना पर टूट पड़ा, अलाउद्दीन के पाँच सौ सिपाहियों को उन्होंने ऐसे काट डाला जैसे बाजरे का खेत काटा जाता है। सारा खजाना लूटकर चलते बने।

नाटक के आरंभ से ही अलाउद्दीन के सेनापति महबूब खाँ और जेसलमेर के रत्नसिंह की मित्रता की सूचना मिलती है। लेकिन इतिहास में ऐसा संकेत नहीं। प्रेमी ने इतिहास के साथ राजपुताने की ख्यातों का आधार भी ग्रहण किया है। ख्यात के अनुसार अलाउद्दीन के सेनापति का नाम कमालुद्दीन था, और मूलराज एवं कमालुद्दीन की मित्रता की चर्चा भी मिलती है।

युद्ध के लिए आए हुए दिल्ली के सेनापति महबूब खाँ एवं रत्नसिंह का आरंभ में गले मिलना और तीडवी का भैयादूज का टीका

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 565

करना भी इतिहास से मेल नहीं खाता। फिर भी प्रेमी की उद्देश्यसिद्धि ने इसे सम्मानित घटना बना दिया। रत्नसिंह और महबूबखां की मित्रता के द्वारा प्रेमी ने यही दिखाया है कि युद्धभूमि में तलवारें मिलानेवाले एकांत में हृदय भी मिला सकते हैं। संसार में केवल हिंसा की आग ही होती, स्नेह का जल न होता तो यह कभी का भस्म हो जाता। तांडवी यद्यपि काल्पनिक पात्र है, फिर भी उसका चरित्र चारणी की भांति [illegible] प्रेरक है। तांडवी का अपने भाइयों का टीका लगाना स्वाभाविक है क्यों कि राजस्थान में भैयादूज के दिन में बहनें रोली चंदन से भाइयों का अभिषेक करती हैं। महाकाल काल्पनिक पात्र होते हुए भी उन लाखों राजपूत सैनिकों का प्रतिनिधि है जिन्होंने केवल एक ही बात सीखी है कि मौत से न डरना और प्राणों में केवल एक ही लालसा पाली है कि अपने देश के मान के लिए प्राण देना।

युद्ध का आरंभ होने पर किसी विश्वासघाती राजपूत द्वारा महारावल जीतसिंह को तीर से मारना राजपूत चरित्र की ऐतिहासिक सच्चाई है।

महबूबखां के भाई रहमानखां का प्रभा तथा गिरिसिंह द्वारा बंदी होना और मूलराज की पत्नी किरणमयी द्वारा कैद, सुरजानसिंह द्वारा विश्वासघात, रहमान को कैद से छुडाने का षडयन्त्र, महारावल द्वारा सुरजानसिंह को बंदी करना- ये घटनाएं ऐतिहासिक भावधारा की सच्चाई है। लेकिन कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। सुरजानसिंह एवं रहमानखां का बन्धन से छूट भागना, सुरजानसिंह का प्रभा के तीर का शिकार बनना, प्रभा का सुरजानसिंह का सिर काटकर गिरिसिंह के पास आना भी काल्पनिक घटनाएं है।

महबूब की पुत्री अख्तरी और रत्नसिंह के पुत्र गिरिसिंह

के प्रणय प्रसंग प्रेमी की अपनी कल्पना है, फिर भी युद्ध के भयानक वातावरण में लीन पाठकों की नीरसता दूर करने में सहायक है। घमासान युद्ध के पश्चात् बहुत धन और सैनिकों को नष्ट करने के पश्चात् भी जैसलमेर दुर्ग जीता न जा सका। तो अलाउद्दीन राजपूतों से मित्रता करने का विचार करते हैं, लेकिन रहमान अलाउद्दीन से यह कहकर युद्ध के लिए उत्तेजित करते हैं कि जैसलमेर तो बुझता हुआ चिराग है, उसकी अंतिम लौ देखकर विस्मित होने की कोई बात नहीं। रहमान खां द्वारा युद्ध की ज्वाला प्रज्वलित करना इतिहास सम्मत है। टाड के अनुसार महबूब का भाई रहमान ने रत्नसिंह से किले की सारी बातें समझ ली थीं।" [1]

रत्नसिंह का अपने पुत्र गिरिसिंह के प्राण की रक्षा के लिए महबूब खां को सौंपना इतिहास के अनुसार रखा गया है। [2] अन्तर यह है कि जहाँ इतिहासकार रत्नसिंह और महबूब खां की मित्रता की पवित्रता पर अधिक ध्यान न देता वहाँ नाटककार अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करता है। नाटक के अन्तिम दृश्य में महबूब खां की पुत्री अख्तरी आकर गिरिसिंह का हाथ पकड़ती है। इस प्रसंग के द्वारा प्रेमी ने मनुष्यता का सजीव चित्र खींचा है जहाँ राष्ट्रीयता, देशप्रेम, धर्मान्धता, संस्कृतियों का अभिमान, सभ्यताओं का गर्व सब कुछ समाप्त हो जाता है। प्रेमी उस दिन की प्रतीक्षा करते हैं जब संसार भर की सारी जातियाँ, सारे राष्ट्र, सरिताओं की भाँति अलग अलग मार्ग से बहते हुए आकर मनुष्यता के महासमुद्र में समा जाएँगी। रत्नसिंह ने अपने वंश गौरव से भी ऊपर मित्रता को महत्व दिया। ऐसे व्यक्ति के हाथ में ही उसने अपनी आत्मा के अंश - पुत्र - को सौंपा जो उनके देश की स्वाधीनता का शत्रु है।

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 567
2. - - - ' ' - - - - पृ. 570

नाटक की एक विशेषता यह भी है कि नाटककार ने यथार्थवादी दृष्टिकोण से पात्रों का चरित्रचित्रण करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। और उनको मानवीय भावनाओं से सन्निविष्ट कर उनके परिस्थितिजन्य चारित्रिक उत्कर्षापकर्ष को प्रदर्शित किया। प्रेमी ने दिखाया है कि किस परिस्थिति में पड़कर स्वामिभक्त सुरजानसिंह विश्वासघाती बनता है। जैसलमेर के राजा बनने के मोह में पड़कर वह रहमान का साथ देता है। देश के साथ विश्वासघात करने का मूल्य उसे अन्त में चुकाना पड़ता है।

प्रेमी ने महबूब खाँ एवं रत्नसिंह के अन्तर्मन के द्वंद्वों एवं संघर्षों को मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया है। महबूब अपने मित्र रत्नसिंह को अपने प्राणों से अधिक प्यार करता था। एक तरफ उसे मित्रता है, दूसरी तरफ अपने सम्राट के प्रति कर्तव्य पालन की भावना। दो तलवारें उसे दो तरफ से छेद रही थीं। महबूब की तलवार पर अलाउद्दीन का शासन था। वह उसके इशारे पर ही नाचती थी, इसलिए वह अपने मित्र के विरुद्ध तलवार पकड़ता है, उसके दुर्ग पर भयंकर आक्रमण करता है।

<u>वातावरण</u> :- देशकाल और वातावरण के चित्रण की दृष्टि से भी प्रेमी को इस नाटक में पर्याप्त सफलता मिली। जैसलमेर से कुछ दूर मरुस्थल में एक रेतीले रास्ते पर दो मुसलमान सैनिकों को वार्तालाप करते हुए दिखाया गया है। इनकी बातचीत द्वारा नाटककार ने राजस्थान के प्राकृतिक वातावरण की सूचना दी है कि राजस्थानवासियों को पीने भर को भी पानी नहीं।

नाटक में जीतसिंह, मूलराज, अलाउद्दीन, महबूबखाँ रत्नसिंह, रहमानखाँ, गिरिसिंह, बनवारी, अख्तरी, किरणमयी, प्रभा, इन सब पात्रों के लिए ऐतिहासिक आधार है। अन्तर केवल इतना है कि नाटक में

जीतसिंह नाम मिलता है तो इतिहास में जैतसी रखा गया है।" [1] रत्न-सिंह के पुत्र का नाम नाटक में गिरिसिंह बताया गया है । पर इतिहास में बहसी और कामड लिखा गया है। [2]

X=X=X=X=X=X=X=X=X=X =X =X=X=X

आ हु ति

[illegible] रणथंभौर के महाराजा वीर हम्मीरसिंह और दिल्ली सम्राट अलाउद्दीन के युद्ध का वर्णन ही नाटक का प्रतिपाद्य है।

अलाउद्दीन द्वारा उसके सेनापति मीर महिमा का निष्कासन, राणा हम्मीर द्वारा शरण प्रदान करना :-

अलाउद्दीन अपने सेनापति मीरमहिमा के साथ नाल-[illegible] सारणी गढ के पास शिकार खेलने के लिए गये। सुलतान की भूखी आँखें कुछ राजपूत रमणियाँ, जो घडे में पानी भरकर जा रही थीं, पर लग गयीं । उन्हें पकड लाने के लिए अपने सेनापति मीरमहिमा को आज्ञा दी । लेकिन मीरमहिमा ने, जो किसी औरत की इज्जत और शान के खिलाफ कुछ भी सुनना तक पसन्द नहीं करता था, बादशाह की आज्ञा का पालन नहीं किया। अलाउद्दीन के गुस्से का नतीजा था मीर महिमा का निष्कासन। अलाउद्दीन जानते थे कि राजपूती चमेनु में कोई न कोई राजा मीर महिमा को जगह देगा और उनको राजपूती राजा का मुल्क हकूमत में शामिल करने का मौका मिलेगा।

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 567
2. - - ' ' - - - पृ.570

अलाउद्दीन का निशाना नहीं चूका। रणथंभौर के राणा हम्मीर ने उसे शरण दिया और अलाउद्दीन का कोप पात्र बन गया। नाटक के इस प्रसंग में ऐतिहासिक सत्य के साथ कल्पना को भी मिलाया गया है। प्रेमी ने एक तीर में दो निशाने मारे है। एक ओर मीर महिमा के चरित्र का की उत्कृष्टता को प्रमाणित किया। उसने एक मुसलमान होते हुए भी एक राजपूत नारी की इज्जत की रक्षा के लिए मौत की परवाह तक नहीं की। दूसरी ओर हम्मीर के चारित्रिक गुणों पर भी प्रकाश पडता है। वे एक हिन्दू होते हुए भी एक मुसलमान को शरण देकर स्वयं बडी मुसीबत में जा फँसे। राणा हम्मीर इस बात से अवगत था कि कि मीर महिमा के साथ उनकी मित्रता बडी परीक्षा लेनेवाली है, फिर भी वे उस शरणागत के लिए सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार थे। अलाउद्दीन ने हम्मीर सिंह को एक पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि यदि हंम्मीर मीर महिमा को अपनी रियासत की सीमा से न निकाल दें तो दिल्ली की ताकत रणथंभौर के घमंड को चकनाचूर करने में कुछ उठा न रखेगी। उनका दरबारी सुरजानसिंह, मीर म महिमा को आश्रय देने के पक्ष में नहीं था। लेकिन हम्मीर ने किसी की परवाह नहीं की। अलाउद्दीन और हम्मीर का युद्ध ऐतिहासिक है, अन्तर केवल इतना है कि इतिहास में शरणागतों के रूप में कुछ नये मुसलमान आते हैं [1] जब कि नाटक में मीर महिमा ने उसका स्थान लिया।

नाटक में आगे की कुछ घटनाएँ है जैसे मीर महिमा के चले जाने के बाद उसके भाई मीर गभरू अस्वस्थ होता है। किसी काम में उसका मन नहीं लगता- ये सब काल्पनिक हैं। मीर गभरू का अस्तित्व इतिहास में

---

1. A Comprehensive History of India, Vol V, The Delhi Sultanate, Chapter I, G.N. Sharma, pp.828-829.

2. दिल्ली सल्तनत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ. 159

नहीं मिलता। नाटक का यह प्रसंग कि अलाउद्दीन ने मीर महिमा को गिरफ्तार करके लाने के लिए का काम मीर गभरु को सौंपा, भी इतिहास विरुद्ध है। वास्तव में हम्मीरसिंह से लड़ाई करने के लिए एवं मीरमहिमा को गिरफ्तार करके लाने के लिए अलाउद्दीन ने उलुग खाँ एवं नसरत खाँ को भेजा था।' [1]

रणथंभोर पर चढ़ाई करने के पहले अलाउद्दीन की सेना नलहारणीगढ़ में रक्त की होली खेली जा रही थी। गढ़ समाप्त हो गया। पुरवासी जो विध्वंस से बचे, भागकर दूसरे स्थान पर चले गए। इतिहास में मुसलमान द्वारा जीते गए किले का नाम भादुव मिलता है। नसरत खाँ इसी किले के घेरे के समय मारा गया।" [2]

चपला एक काल्पनिक पात्र है। काल्पनिक होते हुए भी नाटक में इस पात्र का होना, कथानक के सूत्रों को मिलाने के लिए सहायक सिद्ध होता है। नालहरणी गढ़ पर हुई चढ़ाई में चपला के पिता, भाई, पति, सब का सैनिकों का शिकार बनना, काल्पनिक होते हुए ऐतिहासिक संभाव्यता लिए हुए है। यह चपला जो घूम घूम कर देश के आबाल वृद्ध में देश प्रेम की भावना जगाती हैनाटककार की नारी जागरण संबंधी भावनाओं का प्रतिरूप बनकर आयी है। रणथंभोर की राजकुमारी चन्द्रकला भी ऐसा एक पात्र है, यद्यपि इसकी ऐतिहासिकता का प्रमाण नहीं।

भैयादूज का त्योहार मनाते समय महारानी मीर महिमा को टीका करती है। यह भी प्रेमी की एक आदर्शवादी कल्पना है। भैयादूज के

---

1. दिल्ली सल्तनत - श्रीवास्तव - पृ.159

2. भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस.आर. शर्मा -पृ.96, यतुथ सं. 1971

दिन राजपूत नारियाँ को अपने भाइयों को टीका करना है। मीर महिमा उस समय राणा का मेहमान है, हिन्दू मेहमान को देवता के तुल्य मानते आया है, इसलिए रानी सबसे पहले मीर महिमा के मस्तक पर टीका करती है।

अलाउद्दीन को जब समाचार मिला कि अपने सेनापति रणथंभौर पर सफलता न पा सके तब तो वे खुद दिल्ली से चल पड़े। यह ऐतिहासिक सत्य है। (1)

महाराणा हम्मीर का, अपने चाचा रणवीरसिंह जी को किले के बाहर से आक्रमण करने का कार्य सौंपना, रणवीरसिंह का शत्रु की सेना में तीर की तरह घुसकर, दाँतों में घोड़े की लगाम पकड़े, दोनों हाथों से तलवार घुमाते हुए आगे बढ़ना, हजारों लाशों को सिरहाने रखकर अन्त में सदा के लिए सो जाना, काल्पनिक होते हुए तनिक भी अस्वाभाविक या असंगत नहीं लगता।

हम्मीरसिंह में कमाल की फुर्ती और बला की हिम्मत इतनी थी कि अपने चाचा की मृत्यु का समाचार सुनकर भी वे विचलित न हुए। सुरजानसिंह ने उनसे निवेदन किया कि वे देश और मीर महिमा शाह में से एक को चुन लें, मीर महिमा जैसे नाचीज के लिए इतनी बरबादी और तबाही न्यौतना मूर्खता है। हम्मीर उसकी भर्त्सना करते हैं। इस प्रसंग को रखकर प्रेमी ने हम्मीर जैसे राजपूत वीर की दृढ़ता तथा चारित्रिक विशिष्टता का परिचय दिया है। हम्मीर का विचार था कि जिस दिन शरणागत क्षत्रिय के द्वार

---

1. The Delhi Sultanate, Chapter II, The Khalji Dynasty, by S. Roy, p.21,
भारतीय इतिहास का परिचय - राजबली पाँडेय - पृ. 177, द्वितीय सं. संवत् 2020 वि.

से लौटने लगेगा, उस दिन क्षत्रियत्व रसातल को चला जाएगा।

हम्मीर ने मीर महिमा को अपनी फौज का सिपहसालार बनाकर भेजा, अपने दोनों कुमारों जय विजय को भी मीर महिमा के मातहत लड़ने भेजा। हम्मीर ने अपने जिगर के टुकड़ों को मौत के मुँह में डालते हुए जरा भी हिचकिचाहट नहीं की। महारानी भी अपने जिगर के टुकड़ों, अपनी आँखों के तारों और अपने मुल्क की उम्मीदों को युद्ध क्षेत्र में भेजने में संकोच नहीं करती थी। महारानी ने अपने बेटों का हाथ महा महिमा के हाथों में देकर कहा - "इनकी जिन्दगी तुम्हारे काम आवे तो मैं अपने को निहाल समझूँगी। सबसे छोटा कुमार अभी बालक है। नहीं तो उसे भी कुरबान करने में मुझे झिझक नहीं।" ।

प्रेमी महारानी का उदाहरण प्रस्तुत करके क्षत्राणियों की चारित्रिक विशेषता पर प्रकाश डालते हैं जो अपना मातृत्व उसी दिन धन्य समझती है जिस दिन उनका पुत्र युद्ध भूमि को प्रस्तुत होता है।

युद्ध में दोनों राजकुमारों ने वीर गति पाई। उन्होंने चौहान वंश की आन रख ली। राजकुमारों की मृत्यु के बाद मीर महिमा पागल हो गया। वह अंधाधुन्ध तलवार चलाते हुए दुश्मन की फौज में घुस गया। उसका भाई मीर गभरू सामने आया। दोनों मस्त हाथियों की तरह उलझ गए। लड़ते लड़ते दोनों भाई एक दूसरे पर लुढ़क गए। और पास ही पास दोनों भाई चिर निद्रा में सो गए। इतिहास में मीर महिमा के स्थान पर आने-

---

1. आहुति - तीसरा अंक - पहला दृश्य - पृ.7।

वाले शरणागत का नाम है मुहम्मदशाह। महाराव हम्मीर का अपना सब कुछ शरणागत की खातिर खो देना, मुहम्मदशाह का महाराव के प्रति अपनी मुहब्बत की कीमत अपनी जान देकर चुका देना इतिहास सम्मत है। [1]

सुरजानसिंह का अलाउद्दीन के साथ मिलकर राणा हम्मीर के विरुद्ध षड्यन्त्र करना, सुरजानसिंह को रात के अन्धकार में चोर की तरह अलाउद्दीन के डेरे में आते देखकर चपला का उसका पीछा करना, उसकी छाती में छुरी भोंककर उसका वध करना, सुरजानसिंह की लाश को कुत्तों के आगे डाल देना प्रेमी की कल्पना है। इतिहास के अनुसार हम्मीर के विरुद्ध उसके मंत्री रणमल ने षड्यन्त्र किया था। बाद में अलाउद्दीन ने ख इनका वध करवा दिया। [2]

- -

1. "When Sultan entered the fort on 10 July 1301, he found Muhammad Sha lying wounded. "If I have your wounds treated and you recover, how will you behave towards me? , the Sultan asked. ' If I recover', the wounded Moghul replied, 'I will kill you and raise the son of Hamir Deva to the throne". The Sultan in anger ordered Muhammed Sha to be trampled under the feet of an elephant, but afterwards on recollecting the courage and loyalty of the deadman, he ordered to him to be buried decently". - A Comprehensive History of India, Vol.V, the Delhi Sultanate. Prof. Banarasi Prasad Saxena, p.347.

2. Ranmal and other Rajputs, who had fled to the Sultan from the Rai, were put to death. They had been disloyal to their own chief and Alauddin said that he did not expect them to be loyal to him." A Comprehensive History of India, Vol. V, The Delhi Sultanate, Prof. Banarasi Prasad Saxena, p. 347.

सर वूल्जले हेग लिखते है, 'अलाउद्दीन की नीति की यह विशेषता थी कि वह पहले विश्वासघातकों की सेवाओं से लाभ उठा लेता था, फिर उसी विश्वासघात के अपराध में, जिससे वह अपना बनाता, उन्हें मृत्यु दण्ड देता था। '[1]

यदि प्रेमी सुरजानसिंह की हत्यावाली घटना को इतिहास के अनुरूप प्रस्तुत करते तो, इतिहास को विकृत बनाने से बच सकते थे। साथ ही अलाउद्दीन की नीति की विशेषता के द्वारा नाटक में वातावरण की सृष्टि भी कर सकते थे।

नाटक के अन्त में आनेवाली घटनाएं काल्पनिक एवं व्यर्थ सी है। प्रेमी ने इतिहास के साथ यहाँ अन्याय किया है। नाटक में दिखाया गया है कि दस मास की लंबी, कटतर और भयंकर लडाई के बाद राजपूत सेना ने अलाउद्दीन पर विजय पाई। राजपूतों की विजय की आशा न देखकर, महारानी एवं अन्य वीरांगनाओं ने, महाराणा और उनकी सेनाओं के आगमन के पहले जौहर व्रत का पालन किया। जब महाराणा को मालूम हुआ कि उनकी विजय अब किसी उपयोग की नहीं संसार में वे बिलकुल अकेले है तो शत्रु से लोहा लेते हुए उस महायज्ञ में आहुति डालने के लिए निकल पडे। वहीं नाटक की समाप्ति होती है।

ऐतिहासिक तथ्य यह है कि युद्ध में अलाउद्दीन की विजय हुई थी, और युद्धक्षेत्र में राणा की मृत्यु भी हो गई थी। क्षत्राणियों ~~का जौहर व्रत का पालन करना ऐतिहासिक घटना है।~~"

- -

1. भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस.आर.शर्मा - पृ. 96 से उद्धृत

का जौहर व्रत का पालन करना ऐतिहासिक घटना है। ' ¹

हम्मीरसिंह के चरित्र को इतिहासकारों ने जिस ढंग में प्रस्तुत किया, उससे भी बढ़कर प्रेमी ने अपने नायक के चारित्रिक उत्कर्ष को प्रदर्शित किया है। प्रेमी का नायक शरणागत-वत्सल, आन का पक्का एवं शूरवीर है। हम्मीर हठ तो प्रसिद्ध है। 'तिरिया तेल, हमीर हठ चढ़े न दूजी बार।' प्रेमी ने उनका हठ वीरता में परिवर्तित किया। उनका असाधारण व्यक्तित्व नाटक में जितना उभर आया उतना इतिहास में नहीं ।

मीर महिमा अपने मित्र के लिए अन्तिम क्षण तक अपने सगे भाई से भी लड़ता है। और वीर मृत्यु प्राप्त करता है। मुहम्मदशाह इतिहास में एक गौण पात्र है, लेकिन नाटक में इसको मुख्य स्थान दिया गया है।

वातावरण

नाटककार ने , अलाउद्दीन के शासनकाल की सामाजिक

- -

1. "Hamir Deva and his men, whose provisions were also exhausted died fighting at the head of the Pasheb after the Rajput ladies had committed their bodies to the flames according to sacred rite of Jauhar. It is difficult to guess at the sources of Hamir's strength but all the best fighting men and all the resources of the Delhi Empire under its most capable ruler were needed for the reduction of Ranthambhor". A Comprehensive History of India, Vol V, Chapter X, by G.N. Sharma, pp.820-829.

व्यवस्थाएँ स्पष्ट करते , वातावरण की जितनी स्पष्ट अनुभूति कराई है वह नाटक की सफलता है। मोर गभरू और जमालखाँ के वार्तालाप द्वारा प्रेमी ने जिस काल्पनिक प्रसंग की योजना की, उससे अलाउद्दीन की चालों का परिचय देना ही उनका लक्ष्य है। अलाउद्दीन अपने आप को कायम रखने के लिए सभी सरदारों , रईसों और अमीरों को मिटा डालना चाहते थे। वे कभी अमीरों को ताकतवार बनने देना नहीं चाहते थे। क्यों कि वे डरते थे कि अमीर राज्य की हुकूमत में गड़बड़ डालेंगे, इसी कारण उन्होंने जमालखाँ की लड़की की शादी महम्मदखाँ के लड़के से करने की इजाजत नहीं दी। यह सब अलाउद्दीन के शासनकाल की नीति का स्पष्ट प्रमाण है। व्यक्तिगत समृद्धि को रोकने के लिए सुलतान ने लोगों की संपत्ति के अपहरण की नीति अपनाई थी। यह नीति केवल हिन्दुओं तक सीमित न थी। मुसलमान भी इससे आक्रान्त थे ।

राजपूतों का केसरिया बाना रक्त से रंगी तलवारें आदि उस युग का चित्र खींच देते हैं । मुसलमान सैनिकों का कोर्निश करना, मसनद के सहारे मोर गभरू का लेटना, पान से भरी तश्तरी का बाँदी द्वारा रखकर खिसक जाना, आदि मुसलमानी वातावरण की सृष्टि करता है।

साँपों की सृष्टि

=X=X=X=X=X=X=

खिलजी वंश के सुलतानों में सबसे शूर वीर साथ ही अत्यंत कठोर एवं निर्मम सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के जीवन के आखिरी दिनों की घटनाओं का चित्रण 'साँपों की सृष्टि ' में मिलता है। यही

नहीं , इसमें अलाउद्दीन के असफल दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन की झाँकियाँ भी आ गई हैं , जिसके संबंध में अधिकांश इतिहासकार मौन हैं ।

ऐतिहासिक घटनाएँ
============

1. जलालुद्दीन खिलजी का वध

जलालुद्दीन खिलजी ने अलाउद्दीन को अपने बेटे से भी ज्यादा प्यार किया था, उस पर पूर्ण रूप से विश्वास करते थे, और उसे आँखों का तारा समझते थे। लेकिन भतीजे ने तख्त पाने के लिए अपने चाचा को बलपूर्वक मार डाला। इतिहास में इसका साक्ष्य मिलता है।[1]

2. अलाउद्दीन की क्रान्तिकारी शासन-व्यवस्था

अलाउद्दीन ने हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक हिमालय से सुदूर दक्षिण तक अपनी विजय पताका फहराई। तलवार चलाने में अलाउद्दीन को कभी एतराज नहीं रहा। उसने औरतों और बच्चों पर भी दया नहीं की। मेवाड़ में एक दिन में उनकी आज्ञा से 30000 इंसानों का जिनमें बूढ़े, बच्चे, स्त्रियाँ सभी थे, वध किया गया। केवल भारतवासी ही नहीं , दुनिया में विध्वंस का खेल खेलनेवाले चंगेजखान के वंशज भी अलाउद्दीन की तलवार के आगे पानी माँगते रहे। । सीरीमहल की गर्वोन्नत बुर्ज में पत्थरों की जगह 5000

- -

1. **The Oxford History of India - Vincent A. Smith, p.244. A Comprehensive History of India, Vol.V. The Delhi Sultanate, Ch.IV. Jalaluddin Khalji, Prof. Habibullah p.324.**

भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस.आर. शर्मा - पृ.92

मुगलों की झोपड़ियाँ चुनी गई है। नाटक में अलाउद्दीन की शासन व्यवस्था का जीताजागता चित्रण प्रेमी ने इतिहास के अनुसार ही किया है। " [1] अलाउद्दीन के हाथों में चंगेजखाँ के पोतों की पराजय भी इतिहास सम्मत घटना है। " [2]

अलाउद्दीन का मंदिर विध्वंस

अलाउद्दीन के धार्मिक उन्माद ने सोमनाथ का मन्दिर जिसे महमूद गजनवी द्वारा विध्वंस किए जाने के बाद भारतीय श्रद्धा ने पुनः बनवा लिया था, फिर से तोड़ दिया, दक्षिण के चिदम्बरम का मंदिर मिट्टी में मिला दिया और भी सैकड़ों मंदिरों को उसने नष्टभ्रष्ट कर उनका धन लूटा, कुछ मंदिरों का विध्वंस कर उनमें से शताब्दियों से एकत्रित धन को ले लिया था। इन मंदिरों में इतना धन मिला कि सैकड़ों हाथियों और हजारों गाड़ियों की उन्हें लाने की जरूरत पड़ी। इस घटना का स्पष्ट साक्ष्य इतिहास में मिलता है। [3]

अलाउद्दीन का गुजरात पर आक्रमण और रानी कमलावती को हरम में लाया जाना

जब अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने गुजरात पर आक्रमण किया था तब वहाँ की राजधानी अन्हिलवाड़ में रक्त की बाढ़ आई थी। रक्त

- -

1. The Oxford History of India, Vincent A. Smith, pp.245, 247.

2. The History and Culture of Indian Peoplo, Vol.VI. The Delhi Sultanate, Ch. II, S. Roy, p.29.

3. The Delhi Sultanate, Gen. Editor, R.C. Majumdar, Ch. II, pp. 19, 36.

के समुद्र में तुर्क और राजपूत राजाओं के शव मगरों की तरह तैर रहे थे। गुजरात में हिंसा का जो तांडव हुआ था उसका प्रेमी के शब्दों में प्रस्तुत करेंगे। -- " गुजरात की धरती पर खेला हुआ हिंसा का वह भयानक खेल इतिहास के पन्नों पर आग के अक्षरों में लिखा रहेगा। वे अक्षर मानवों के अन्तप्रदेशों में नभ के नक्षत्रों की भांति चमक चमक उठेंगे।" 1 गुजरात के मंत्री माधव के आमंत्रण पर ही तुर्की सेना गुजरात पर आक्रमण करने गयी थी। माधव की परम सुंदरी पत्नी के रूप के जाल में गुजरात के राजा कर्णसिंह का मन फँस गया, उसने माधव की पत्नी को बलपूर्वक हस्तगत कर लिया। माधव चतुर, विश्वस्त और साहसी मंत्री था, किन्तु महाराज के वासना के उद्दाम वेग के आवेग में उसकी भावनाओं और सेवाओं को भूल गए। उन्होंने स्वामिभक्त अनुचर को घोर शत्रु बना लिया। जब रानी कमलावती ने समझ लिया कि अपना पति नयी नवेली प्रेयसी के साथ सुख भोगने की आशा में जिंदा रहने की लालसा लिए गुजरात से भागकर देवगिरी जा पहुँचे थे, तो रानी को पति के स्थान पर युद्धभूमि में उतरना पड़ा था। अपने देश की रक्षा करने के प्रयत्न में कमलावती शत्रु के हाथों पड़ गयी। और कई वर्ष उसे अलाउद्दीन के हरम में सूना जीवन गुजारना पड़ा। नाटक का यह प्रसंग प्रो॰ बनारसी प्रसाद सक्सेना के विवरण से मेल खाता है। " 2

प्रेमी इतिहास की अपेक्षा कमलावती के चरित्र की उत्कृष्टता को प्रकाश में लाए हैं। उसने चित्तौड़ की पद्मिनी या रणथंबोर की रंगदेवी की परंपरा का पालन नहीं किया। जौहर की जाज्वल्यमान लपटों

---

1. सांपों की सृष्टि - प्रेमी, पहला अंक - पहला दृश्य - पृ॰ 10

2. A Comprehensive History of India, Vol. V, Delhi Sultanate, Chapter IV, Alauddin Khalji, p.334 by Banarasi Prasad Saxena.

में समा जाना वह कायरता समझती थी। वह परिस्थितियों से भागी नहीं। उनसे लड़ी, क्यों कि उसके अनुसार स्वयं मरण का आलिंगन करने का अर्थ जीवन के उत्तरदायित्व से भागना है।

नाटक में यह दिखाना कि कमलावती सुलतान के हरम में रहकर दिल्ली के तख्त के नीचे साँपों की सृष्टि कर रही है, कल्पित है। इतिहास में इसका कोई संकेत नहीं मिलता।

कमलावती की पुत्री देवल देवी का हरम में लाया जाना

कमलादेवी ने सुलतान से प्रार्थना की कि अपनी बेटी को उसके पास लाने का कष्ट उठावें। देवल का हरम में आकर कमलावती से मिलना ऐतिहासिक घटना है।

अलाउद्दीन के राजकवि अमीर खुसरो ने 'देवल रानी' नामक एक कविता लिखी है जिसका उद्देश्य प्रो. बनारसी प्रसाद सक्सेना ने एक लेख में किया है।"[1] देवल देवी के हरम में पहुँचने की घटना का संकेत एस.राय[2] ने भी एक लेख में दिया है।

देवल देवी का यादव महाराजा रामचन्द्रदेव के पुत्र शंकर देव के साथ विवाह न संपन्न होने की घटना भी तथ्यपूर्ण है। देवल देवी के पिता के विवाह के लिए अनुमति न देने का कारण था कि यादव बघेलों

- -

1. A Comprehensive history of India - The Delhi Sultanate, Chapter IV, Alauddin Khalji, Prof. Banarasi Prasad Saxena, p. 402.
2. The Delhi Sultanate, S. Roy, Ch. 2, pp.31-32.

से हीन समझे जाते थे। नाटक के इस प्रसंग की ऐतिहासिकता के लिए एस॰राय[1], प्रो॰ बनारसी प्रसाद सक्सेना[2] आदि इतिहासकारों का विवरण पर्याप्त प्रमाण है। अतः डा॰धनंजय का इस प्रसंग को काल्पनिक एवं इतिहास विरोध मानना[3] ठीक नहीं।

देवल देवी एवं अलाउद्दीन के पुत्र खिजरखाँ का परिणय

देवल देवी खिजरखाँ की नस नस में समा गई है। खिजरखाँ संगीत के प्रेमी थे। देवल देवी संगीत की साधक थी। संगीत प्रेम उन्हें एक दूसरे के पास लाया। देवल जानती थी कि शाहजादे हुजूर उसके बिना जीवित नहीं रह सकते। अन्त में दोनों विवाह के सूत्र में बंध गए। खिजरखाँ को देवल अपने प्राणों से भी बढ़कर प्यार करती थी। जब एक बार दिल्ली से उसे पैगाम लेजाने के लिए पहुँचा तो उसका दृढ़ उत्तर है - " मुझे दिल्ली तो क्या, स्वर्ग का सिंहासन भी नहीं चाहिए। जिसके साथ सुख के दिन काटे है दुख के दिन भी उसी के साथ काटूँगी।"[4]

देवल देवी और खिजरखाँ की प्रेम कहानी के संबंध में इतिहासकारों में मतभेद है।

---

1. Singhana the crown prince of Devagiri had asked for the hand of Karna's daughter in marriage, but the Vaghela king, out of his Rajput pride, had declined it.

2. 'The Delhi Sultanate, Ch. 2, R.S. Roy, p.32.
The Comprehensive History of India, Vol. V.
The Delhi Sultanate, Ch. IV Prof. Benarasi Prasad, p.402.

3. ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा॰धनंजय - पृ॰296

4. साँपों की सृष्टि - तीसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ॰110, तृतीय सं॰ 1966

प्रो॰ बनारसी प्रसाद शर्मा [1] के अनुसार दोनों का परिणय ऐतिहासिक तथ्य है। राय [2] ने इस घटना को कवि की कल्पना से उद्भूत होते हुए दिखाया है।

मलिक नायब काफूर की विजय

नाटक में दिखाया है कि अलाउद्दीन का सबसे [illegible] विश्वस्त सेनापति गुजरात का एक शूद्र दास था जो अपनी योग्यता और गुणों से सुलतान का प्रमुख सेनापति और वजीर बन बैठा। वह अलाउद्दीन के हाथ लूट की [illegible] संपत्ति के रूप में पड़ा। दक्षिण भारत की राजशक्तियों और धर्माभिमान को उसने तीन बार पदमर्दित किया। दक्षिण में उसने देवगिरी के यादव, द्वारसमुद्र के होयसाल, वारंगल के काकतीयों पर जो विजय प्राप्त की उसके उपलक्ष्य में सुलतान ने उसका सार्वजनिक सम्मान किया। काफूर ने दक्षिण भारत के प्रत्येक राजमहल, मंदिर और धन कुबेरों से अपार धनसंपत्ति, जिसमें कोहनूर हीरा भी था, लूटकर सुलतान के राजकोष को समृद्ध बनाया। हजारों भारतीय नारियों को तुर्क सैनिकों की सेवा करने के लिए वितरित कर दिया। हजारों बच्चों के सिर धड़ से अलग कर दिए। इस प्रसंग में एक इतिहास विरोधी कल्पना आ गई है। काफूर को शूद्र कुल में उत्पन्न बताया गया है। भारतीयों से काफूर ने सदा तिरस्कार ही प्राप्त किया। इसलिए भारतवासियों के प्रति उसके मन में किसी प्रकार की ममता नहीं थी। लेकिन इतिहास से ज्ञात होता है कि मलिक काफूर हिजड़ा था जो नसरत खाँ को दिल्ली में प्राप्त हुआ। [illegible]
[illegible] =

1. A Comprehensive History of India, Delhi Sultanate, Ch. IV, Alauddin Khalji, Prof. Banarasi Prasad Saxena, p.419.

2. ". . . . but the whole of the romantic episode of love between Khizr Khan and Devala Devi seems to be a mere poetical fancy", Delhi Sultanate, Ch. II, S. Roy, p.32,

मे प्राप्त था।" [1] वारंगल और द्वारसमुद्र मे काफूर द्वारा किए गए अत्याचार भी पूर्ण रूप से ऐतिहासिक हैं। [2]

मलिक काफूर को शूद्र कुल मे उत्पन्न बताकर प्रेमी जी इतिहास के तथ्य मे परिवर्तन लाया है। लेकिन नाटककार का यह परिवर्तन उनके एक महत्वपूर्ण उद्देश्य की सर्जना करता है। प्रेमी का लक्ष्य था - भारत की उन ऊँची जातियों के विरुद्ध आवाज उठाना जो शूद्र जैसी निम्न जातियों मे जन्म लेनेवाले के स्पर्श मात्र से अपनी उच्चता और पवित्रता को नष्ट होते अनुभव करती है।

अलाउद्दीन का अपना मकबरा स्वयं बनवाना

अलाउद्दीन पहले ही अनुमान करते थे कि वे स्वाभाविक मृत्यु नहीं मरेंगे। और मारनेवाला उनका मकबरा भी नहीं बनवाएगा। वे अपनी बेगम तथा बेटों पर भी भरोसा न करते थे। अलाउद्दीन का अपना

---

1. Nusart Khan plundered the rich port of Cambay and obtained an immense booty. He also secured there the handsome young Hindu slave named Kafur who was known as Hazardinari as his master had originally bought him for one thousand dinars" - The Delhi Sultanate, Ch. II, S. Roy, p.19.

2. - किन्तु सबसे बड़ा जगलाभ 'हजार दिनारी' गुलाम मलिक काफूर था जो हिजड़ा था - भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास' - एस.आर.शर्मा पृ. 94-95

मकबरा स्वयं बनवाने का कारण यही बताया जाता है। यह प्रसंग ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुकूल है। " [1]

अलाउद्दीन की मृत्यु

नाटक में प्रेमी ने स्पष्ट रूप से नहीं बताया कि काफूर ने सुलतान को विष देकर उनका अन्त कर दिया। जब देवल ऐसी आशंका प्रकट करती है तब काफूर का यह स्वगत कथन कि 'जिसने अपने उपकारी सुलतान अलाउद्दीन पर दया नहीं की, वह खिजरखां पर क्या दया करेगा', इस बात का साक्षी है कि वही अलाउद्दीन का खूनी है।

अलाउद्दीन की मृत्यु के संबंध में इतिहासकारों में मतभेद है। एस०आर०शर्मा [2] की राय में काफूर ने ही अलाउद्दीन को विष देकर मार दिया था। लेकिन प्रो० बनारसी प्रसाद सक्सेना [3] एवं विन्सेंट स्मिथ [4]

---

1. . . . Kafur shed more showy tears, brought the body of Sultan towards the end of the night out of the Siri Palace and buried it in his mausoleum, outside the Juma Mosque, which had already been constructed", A Comprehensive History of India, Ch. IV, p. 425.

2. भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस०आर०शर्मा - पृ० 108

3. While the discussions were going on the emperor had physically collapsed and his tongue had became redowing to illness. He could not say a word during the meeting owing to his unconsciousness and weakness. . .. Alauddin died late at night on 4 January 1316 (6 Shaval 715) - A Comprehensive Hsitory of India, Delhi Sultanate, Prof. Banarasi Prasad Saxena.

4. . . . . His health failed, dropsy developed and in January 1316 he died', The Oxford History of India , V.A. Smith p.247.

ऐसा नहीं मानते।

मलिक काफूर का विद्रोह

अल्पखाँ को राजद्रोह का दण्ड दिया जाना, मलिक ए जहाँ को गिरफ्तार करना, काफूर द्वारा अलाउद्दीन के पुत्रों को बन्दी बनाया जाना तथा उसकी आँखों को निकलवा लेना इतिहास के साक्ष्यों पर आधारित है।" [1]

अन्तिम दिनों में काफूर के ऊपर अलाउद्दीन का इतना विश्वास हो गया था कि उसने अपने अन्य बेटों के अधिकार की उपेक्षा करके छः वर्ष के छोटे शाहजादे को गद्दी पर बैठाने की अन्तिम इच्छा पूरी करने का भार काफूर पर डाला। यह भी इतिहास सम्मत है। " [2]

मलिक काफूर का अन्त

अलाउद्दीन के पुत्र मुबारकशाह की आँखें निकालने के लिए काफूर द्वारा भेजे गए चार आदमियों को रिश्वत देकर मुबारक ने काफूर के विरुद्ध भड़काया। उन्हें काफूर पर इतना क्रोध आया कि काफूर को जीवन से मुक्त कर दिया। अपने सरदारों के हाथों ही काफूर का मारा जाना इतिहास के साक्ष्यों पर आधारित है।" [3]

---

1. " . . . . He imprisoned, blinded, or killed most of the other members of the Royal family", The Oxford History of India, p.247.

2. The Oxford History of India, V.A. Smith, p.247.

3. .... moved by gold and sentiment they came back, four of them rushed to the apartment of Malik Kafur and slew him just thirty five days after the dealth of Alauddin", Delhi Sultanate', The Khalji Dynasty, pp.40-41, S. Roy.

अलाउद्दीन के पारिवारिक जीवन का चित्रण

रानी कमलावती से अलाउद्दीन तथा उसकी प्रधान बेगम माहरू का जो वार्तालाप चलता है उसके द्वारा प्रेमी ने अलाउद्दीन के असफल दाम्पत्य जीवन एवं दुखी पारिवारिक जीवन की सुंदर झाँकी दी है। अलाउद्दीन की बड़ी रानी, सुलतान जलालुद्दीन खिलजी की शाहजादी थी। वह औरत नहीं, सिंहनी थी। वह अलाउद्दीन पर इस प्रकार हावी थी जैसे चूहे पर बिल्ली। वह अपने पति को क्रीतदास बनाकर रखना चाहती थी। उसके भय के कारण अलाउद्दीन अपनी छोटी बेगम माहरू से मिलने तक का साहस न कर पाते थे। एक दिन अलाउद्दीन और बेगम माहरू बगीचे बैठे बातें कर रहे थे। अचानक माहरू के सिर पर तड़ातड़ जूती की बरसात होने लगी। उस दिन पहली बार अलाउद्दीन को अपनी बड़ी बेगम के विरुद्ध खड़े होने का साहस हुआ। उन्होंने उसके हाथ से जूती छीनकर तड़ातड़ उसके सर पर बरसानी शुरू की। वह शिकायत लेकर दिल्ली चली गई। इसी कारण से अपनी भयानक बीबी से बचने के लिए अलाउद्दीन ने दक्षिण की तरफ कूच कर दिया और सुलतान से पूछे बिना ही देवगिरी पर आक्रमण भी कर दिया। अलाउद्दीन अपनी छोटी बेगम को केवल इसलिए प्यार करता था कि वह अपनी बड़ी बेगम की कर्कशता पर परेशान था। जब वे सुलतान बने माहरू भी उसकी नजर से उतर गई। उनके महल में नित्य नई माशूकाओं का आगमन होने लगा।

नाटक में प्रेमी ने स्पष्ट दिखाया है कि एक विजेता के रूप में जितना वह सफल था गृहस्थ के रूप में उतना ही असफल। इस असफलता ने उसके मस्तिष्क को विकृत कर दिया। अलाउद्दीन के पारिवारिक जीवन का

का संकेत मात्र इतिहासकार[1] देता है। जहाँ इतिहास केवल संकेत मात्र रहकर चुप रहे वहाँ प्रेमी ने पूरा विवरण प्रस्तुत किया।

कमलावती वीरांगना, इरादे की दृढ़, कूटनीतिज्ञ और प्रतिशोध की ज्वाला से पूर्ण है। इतिहासकार राय ने कमलावती को अलाउद्दीन की प्रिय बेगम[2] लिखा है, लेकिन प्रेमी ने कमलावती के चरित्र को उदात्त बनाने के लिए उसे अलाउद्दीन के हरम में रहते हुए भी अपनी संस्कृति और पातिव्रत्य की रक्षा की भावना लिए हुए दिखाया है। लेकिन अलाउद्दीन का कमलवती से यह कहना कि - मैं ने अपनी आकांक्षाओं को चरितार्थ करने में सदा ही विजय प्राप्त की। हारा तो एक पद्मिनी से, एक तुमसे महारानी ' -[3] कोरी भावुकतावादी कल्पना है।

वातावरण :- वातावरण निर्मित करने का सफल प्रयास प्रेमी ने इस नाटक में किया है। प्रेमी ने लिखा है - भारत की उस समय राजनैतिक स्थिति भारतीय समाज की वे दुर्बलताएँ जिनके कारण विदेशी यहाँ सफलता पा सके, और विदेशियों द्वारा किए गए नृशंस अत्याचारों की झाँकियाँ कहीं न कहीं आ ही गई हैं।'[4]

- -

1. Ala-ud-din's unhappy relations with his wife, the daughter of Firus, also prompted him to undertake a profitable, though perilous, undertaking with a view to taming her who was a veritable shrew" - The Delhi Sultanate - The Khalji Dynasty, p.15.

2. The Delhi Sultanate, Ch. II, S. Roy, pp.31-32.

3. साँपों की सृष्टि - पहला दृश्य - दूसरा अंक - पृ. 59

4. साँपों की सृष्टि - भूमिका - पृ. (ख)

पहले अंक के तीसरे दृश्य में काफूर का यह कहना कि मैं ने भारत की शूद्र जाति में जन्म लिया है जिसके स्पर्श से उच्चता और पवित्रता के अभिमानियों की पवित्रता नष्ट होती है, उस समय समाज में प्रचलित जातिपांति के भेदभाव का स्पष्ट परिचय देता है। इसी तरह काफूर एवं कमलावती का वार्तालाप तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति की ओर संकेत करता है कि अभिमान के ऊंचे बने भारतीय भाई भाई के बीच दीवारें खड़े कर रहे थे, विदेशियों द्वारा अपनी मातृभूमि को पदमर्दित होने अवसर दे रहे थे। अलाउद्दीन खिलजी के नृशंस अत्याचारों एवं उच्छृंखल कामुकता के निदर्शक दुष्परिणामों एवं उनकी उच्छृंखल मनोवृत्तियों के माध्यम से तत्कालीन सुलतानों के अत्याचारों एवं उनकी निम्न लालसाओं को दिखाने का प्रयास लेखक ने किया है। इससे भी वातावरण निर्माण में सहायता मिली है।

=X=X=X=X=X=X=X==X=X=

उद्धार

सिसोदिया सामन्त अरिसिंह के पुत्र हम्मीर ने किस प्रकार 'जननायक' बनकर मेवाड का उद्धार किया यही नाटक का विषय है।

हम्मीर का प्रारंभिक जीवन

सुधीरा अपने पुत्र हम्मीर के साथ जन्मस्थान को छोडकर गांवों की कडी भूमि को अपनाती है। वह अपने पुत्र से यह बात छिपाना चाहती है कि वह मेवाड के सिसोदिया राजवंश का अंश है। माता चाहती है कि उसका पुत्र राजकुमार बनकर भी बाल बन्धुओं का हृदय सम्राट बन जाए। प्रेमी ने ऐतिहासिक तथ्य के साथ कल्पना को मिलाकर इस प्रसंग की योजना की है। इति-

हास से ज्ञात होता है कि अरिसिंह की मृत्यु के पश्चात् हम्मीर अपने ननिहाल में रहने लगा।'[1] इतिहास विरुद्ध कल्पना में, सुधीरा का चरित्रांकन ही नाटककार का लक्ष्य है। सुधीरा जानती थी कि मेवाड का उद्धार और उसकी रक्षा करने में वही व्यक्ति समर्थ हो सकता है जो राजमहलों की सुमन शय्या पर नहीं, बल्कि अभावों की ज्वाला पर सोने को अभ्यस्त रहा है। जो गरीबों में रहा और उन्हें 'अपना समझने में गौरव समझता है।

पहाड़ी प्रदेश में माता के संरक्षण में हमीर का पालन-पोषण एवं प्रारंभ से ही जननायक होने की बलवती आकांक्षा रखना - इसका समर्थन ओझा [2] ने भी किया है।

मालदेव का विश्वासघात

दिल्ली के बादशाह द्वारा नियुक्त मेवाड का महाराज मालदेव ने धन और प्रभुता की लालसा के वशीभूत होकर अपने स्वामी मेवाड के महाराणा से विश्वासघात किया। नाटक के दूसरे दृश्य में मालदेव और उसकी पुत्री कमला का वार्तालाप है। पिता के विश्वासघात; पुत्री को अच्छा न लगता। वह पिता से क्षुब्ध है। वह पिता को याद दिलाती है कि उसकी स्वार्थपरता मनुष्यता की सीमा पार कर जाती है। इस काल्पनिक प्रसंग की योजना करके नाटककार ने कमला के शब्दों द्वारा यह बताया है कि भारत की स्वाधीनता प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य है। मालदेव का विश्वासघात ऐतिहासिक है।'[3]

1• टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ• 156

2• राजपूताने का इतिहास - उदयपुर राज्य का इतिहास - पृ•413-414

3• टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ• 157

मालदेव का समर्थक सामन्त मुंजबलीचने अपने निकटतम साथी भूपति को अजयसिंह के पुत्र सुजानसिंह का सखा बना दिया। भूपति ने सुजानसिंह को सखा बना दिया जो उसे विलास के पथ पर ले जाता है। इससे पिता पुत्र में कलह होता है। सुरजानसिंह को शराबी एवं विलासी चित्रित कर तथा इसके पीछे भूपति की चाल बताकर संघर्ष की योजना की गई है।

अजयसिंह का हमीर से भेंट

महाराणा अजयसिंह का हम्मीर एवं उनकी माँ से भेंट इतिहास के अनुसार रखा गया है।[1] अजयसिंह अपने कायर एवं विलासी पुत्र सुजानसिंह को मेवाड की भंवर ग्रस्त नौका का खेवट बनाना नहीं चाहता। उसकी धारणा थी कि मेवाड जैसे देश के उत्थान के लिए ऐसे एक नेता की आवश्यकता थी जिसकी भुजाओं बल हो, आत्मा में विश्वास हो, मन में धैर्य हो, हृदय में उत्साह हो, आँखों में तेज और मस्तिष्क में विवेक हो। ये सारे गुण अजयसिंह अपने भाई अरिसिंह के पुत्र में देखते हैं। अजयसिंह ने अपने पिता को वचन दिया था कि वह अपने भैया के पुत्र को मेवाड का अधिपति बनाएगा।[2] अजयसिंह का हम्मीर को उत्तराधिकारी बनाना ऐतिहासिक सत्य है।[3] हम्मीर का मुंजबला का मस्तक काटकर भरे दरबार में लाना भी इतिहास सम्मत है।[4]

नाटक के दूसरे अंक में कमला एवं जाल के बीच वार्तालाप

- -

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 156
2. - - ' ' - - - पृ. 155
3. - - - - '' - - - - - पृ. 157
4. - - - ' ' - - - - - पृ. 157

चलता है उससे हम्मीर के माता-पिता के विवाह के संबंध में बातें व्यक्त होती हैं। युवराज अरिसिंह मित्रों सहित शिकार खेलने गए थे। एक जंगली सुअर का उन्होंने पीछा किया। जो एक खेत में घुस गया। सुधीरा जो खेत की रखवाली कर रही थी, उस सुअर को खदेड़ती हुई बाहर आयी। उसके साहस पर मुग्ध होकर युवराज ने उस किसान कन्या से विवाह किया। यह प्रसंग टाड के इतिहास के अनुसार रखा गया है। [1]

हम्मीर के युवराज बनने पर भूपति सुजानसिंह से यह कहकर भड़काने का प्रयत्न करता है कि युवराज बनने का हक तुम्हारा है, और अजयसिंह ने उसके प्रति अन्याय किया। लेकिन सुजानसिंह राज्य सिंहासन के लिए लालायित न था। यद्‌यपि यह प्रसंग इतिहास से मेल नहीं खाता - फिर भी इसकी योजना नाटकीयता पैदा करने के लिए की गई है। इतिहास के अनुसार अजयसिंह के पुत्रों को अपने पिता का कार्य अच्छा न लगा, - - - सुजानसिंह अपने पिता से असंतुष्ट होकर दक्षिण की तरफ चला गया। [2]

हम्मीर का विवाह

मालदेव अपनी पुत्री कमला के विवाह का प्रस्ताव हम्मीर के पास भेजता है। हम्मीर एक राजपूत कन्या का अपमान करना पसन्द नहीं करता, इसलिए विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा न सका। मालदेव की पुत्री के साथ हम्मीर का विवाह हुआ, यह पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है। [3] मतभेद केवल

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ० 152-153
2. वही - पृ० 157
3. वही - पृ० 159-160

इस बात से है कि हमीर का विवाह मालदेव की विधवा पुत्री कमला से हुआ था। पहले भी उसका विवाह जैसलमेर के रावल से हुआ था।[1]

हरिकृष्ण प्रेमी ने टाड के मत का आधार लेते हुए नाटक में कमला को विधवा ही माना है। इस प्रसंग के द्वारा प्रेमी ने बाल विधवा की समस्या पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।

हमीर ने पैतृक राज्य को चौहानों से लेने का निश्चय किया। कमला ने उस योजना में उसे सहयोग दिया। उसने शत्रु पर भीतर और बाहर दोनों ओर से आक्रमण करने का उपाय सोचा। पुत्र के साथ कुल देवता की प्रार्थना के बहाने वह पिता के पास चितोड गई और किले के दरबानों को अपने वश में कर लिया।[2] इस मूल घटना को नाटक में थोडे परिवर्तन के साथ रखा गया है। पहला परिवर्तन है कि भूपति मालदेव को कमला की ओर से विमुख करना चाहता है। उसी समय वह प्रवेश करती है और भूपति को मारने के लिए तलवार उठाती। मालदेव उसे रोकता। नाटकीय संरचना में तीव्रता लाने के लिए नाटककार एक मुकाबलात्मक स्थिति उत्पन्न करना चाहता है। मालदेव और हमीर के बीच हुए युद्ध में मालदेव की पराजय और हम्मीर की विजय भी ऐतिहासिक तथ्य है।[3] मालदेव वर्णित इतिहास के अनुसार ही हुआ था।

हम्मीर का वीर और साहसी चरित्र इतिहास के अनुसार

- -

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ॰ 159-160

2. वही - पृ॰ 160

3 वही -- पृ॰ 160

ही रखा गया है। नीति, धर्म और सच्चरित्रता का प्रतीक सुधीरा का एवं देश-भक्त, वीर नारी कमला का चरित्र, देश प्रेम एवं नव जागृति के संदेशवाहक के रूप में प्रस्तुत किए गए है ।

नाटक का दोष यह है कि इसमें जो भी कथावस्तु एवं चरित्र लिए गए है वे इतने महत्वपूर्ण नहीं कि सामयिक संदर्भ में कोई प्रभाव डाल सकें । [redacted] विशिष्ट आदर्श भी इसमें लक्षित नहीं होता। ' 1

वातावरण

नाटक में वातावरण की क्षीण झलक ही मिलती है। मेवाड की जनता पर दिल्ली के विदेशी पदाधिकारी और सैनिक मनमाने अत्याचार कर रहे थे । कमला एवं जाल के वार्तालाप [2] दवारा इसकी सूचना मिलती है कि विदेशी अतिथि यहाँ के नैतिक जीवन को विषाक्त कर रहे है, किसी सुंदरी युवती का घर से बाहर निकलना असंभव हो गया।

=X=X=X=X=X=X=X=X=X=X=

की र्ति स्त म्भ

यह नाटक राजस्थान के गृहकलह के ऐतिहासिक घटनाचक्र को लेकर लिखा गया है। मुकुट मोह में पडकर एक दूसरे के खून के प्यासे बन गए राजकुल के व्यक्तियों को इसमें हम देख सकते है ।

---

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा०धनंजय - पृ०298
2. उद्धार - पहला अंक - चौथा दृश्य - पृ०25

महाराणा कुम्भा का वध

मेवाड के इतिहास में महाराणा कुम्भा के काल में मेवाड राज्य की कीर्ति और शक्ति उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। कुम्भा केवल केवल तलवार के धनी नहीं थे, अपितु उन्होंने अपने राज्यकाल में साहित्य एवं ललित कलाओं की अभिवृद्धि की। मुकुट के मोह में कुम्भा का ज्येष्ठ पुत्र ऊदा जी ने अपने पिता का मस्तक काट डाला। ऊदाजी ने पिता की हत्या करके मनुष्यता को लज्जित करनेवाला नृशंस कार्य किया।" [1]

ऊदा की मृत्यु

ऊदाजी अपने पिता की हत्या से भी अधिक घृणित कार्य करना चाहता था। उसने दिल्ली के लोदी बादशाह से सहायता पाने के लिए अपनी पुत्री ज्वाला का-सिसोदिया शाखा की एक राजकुमारी का विवाह, बादशाह से कराना स्वीकार किया।" [2] ऊदा के पुत्र सूरजमल ने बहन ज्वाला की रक्षा के लिए पिता के विरुद्ध शस्त्र धारण किए। बेटी अपने पिता की मृत्यु का कारण बन गई। युद्ध क्षेत्र में उसने ऊदाजी को सदा के लिए धरती पर सुला दिया। यह तो प्रेमी की अपनी कल्पना है जिससे सूरजमल और ज्वाला के चरित्रों पर कुछ प्रौढता आती है। ऊदाजी की मृत्यु के संबंध में टाड लिखते क है - "दिल्ली के बादशाह से मिलकर जब ऊदा दीवानखाने से बाहर आ रहा था उसके मस्तक पर अचानक बिजली गिरी जिससे वह जमीन पर गिर गया और उसका प्राणान्त हो गया। बाप्पा रावल के वंश के सम्मान की रक्षा भगवान ने की और हत्यारे ऊदा को जो फल मिलना चाहिए था वह

---

1. राजस्थान का इतिहास - टाड - पृ. 168
2. वही पृ. 166

मिल गया। ' [1]

सूरजमल को कर्नल टाड ने अपनी पुस्तक में एक स्थान पर संग्रामसिंह का चाचा(काका) लिखा है। दूसरे स्थान पर ऊदा जी का पुत्र। प्रेमी ने नाटकीय सुविधा के लिए उसे ऊदाजी का पुत्र मान लिया।

महाराणा रायमल के पुत्रों एवं सूरजमल में कलह

सूरजमल के जीवन का संकल्प यही था कि महाराणा रायमल के पश्चात् संग्रामसिंह, पृथ्वीराज अथवा जयमल तीनों में से कोई भी राज्य सिंहासन पर नहीं बैठ सकेगा। वह अपने स्वप्न की प्राप्ति के लिए रायमल के पुत्रों से प्रतिद्वन्द्विता करने का निश्चय करता है। पृथ्वीराज भी अपने बड़े भाई को राजगद्दी का स्वामी बनना नहीं चाहता है। उसकी राय में यह सरासर अन्याय है कि बड़ा भाई ही राजगद्दी का स्वामी बने। राजमुकुट धारण करने की पात्रता तो योग्यता पर निर्भर होनी चाहिए। सूरजमल, पृथ्वीराज और ज्वाला ने राज्यलालसा की तृप्ति के लिए तलवार का तर्क देना अनिवार्य समझा। लेकिन संग्रामसिंह की दृष्टि में मेवाड़ की भूमि को अजस्र रक्त वर्षा से प्लावित करते रहना उचित न माना। उसने इस प्रश्न का स्नेहपूर्वक समाधान करना चाहा। महाराणा की आज्ञा से चारों राजकुमार राजयोगी से युवराज पद का निर्णय करने के हेतु एकत्र हुए। राजयोगी ने जब यह निर्णय सुनाया कि महाराणा रायमल के पश्चात् संग्रामसिंह के मस्तक पर मेवाड़ का राजमुकुट शोभित हो जाएगा तो संग्रामसिंह पर पृथ्वीराज ने तलवार का प्रहार किया। पुत्र की इस करतूत पर क्रुद्ध होकर रायमल ने उसे मेवाड़ राज्य की सीमा से निकल

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 169

जाने की आज्ञा दी। कुल कलह की सर्व भक्षी ज्वाला को शान्त करने के लिए संग्रामसिंह युवराज पद परित्याग करने का संकल्प करता है। संग्रामसिंह ने स्वेच्छा से युवराज पद परित्याग करने का संकल्प किया। पिता की आज्ञा मानकर पृथ्वीराज सिंह ने मेवाड से बिदा लेते समय यह भी प्रण किया कि सूरजमल मेवाड की गद्दी को अपवित्र नहीं करने पाएगा। सूरजमल के शरीर पर पृथ्वीराज आघात किया। इस आघात ने सूरजमल को एक नए ही मार्ग पर आरूढ कर दिया। मेवाड के राजसिंहासन को प्राप्त करना उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रह गया। ' [1]

सिंहासन प्राप्ति के लिए राजकुमारों में होनेवाला संघर्ष, संग्रामसिंह के युवराज घोषित होने पर पृथ्वीराज द्वारा तलवार निकालना, - इन घटनाओं का विवरण टाड कृत राजस्थान के इतिहास में भी मिलता है। ' [2]

इतिहास की अपेक्षा प्रेमी ने संग्रामसिंह के चरित्र को और भी उज्वल बना दिया है। टाड के निम्नलिखित विवरण से सांगा के चरित्र का स्तर नीचे गिरता है। - अपने पिता का मैं बडा लडका हूं और न्याय से मैं ही अपने पिता का उत्तराधिकारी हूं। ' [3]

लेकिन प्रेमी ने अपने पात्र के मुंह से ऐसा कोई शब्द

- -

1. कीर्तिस्तम्भ - पृ. 43-66

2. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 170-171

3. वही पृ. 170

नहीं आने दिया है। वह केवल यही कहता है - " कुल कलह की सर्वभक्षी ज्वाला को शान्त करने के लिए संग्रामसिंह युवराज पद परित्याग करने का संकल्प करता है। " [1] टोडा दुर्ग के स्वामी राव सुरतान से टोडा दुर्ग छीन लेना, राव सुरतान की सुंदरी पुत्री तारा के मोहक रूप की ख्याति सब जगह फैल जाना, राव सुरतान का यह प्रतिज्ञा करना कि जो व्यक्ति लाल पठान से उनकी बपौती टोडा दुर्ग जीत कर देगा वह उनकी पुत्री तारा का पति बनेगा, राजकुमार जयमल का, तारा की पवित्रता पर आक्रमण करने का प्रयत्न करना, इससे क्रुद्ध होकर राव सुरतान का अपने बाण से राजकुमार का प्राण लेना, राज कुमार पृथ्वीराज का लाल पठान के रक्त से तारा की सूनी माँग को रंगकर उसे गहलोत राजवंश की कुलवधू बनाना, इस प्रकार राव सुरतान की शर्त को पूरा करना पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है। [2]

महाराणा रायमल का पृथ्वीराज से प्रसन्न होकर उसे युवराज पद सौंप कर मेवाड़ राज्य की बागडोर उसके हाथ में देना, पृथ्वीराज के युवराज घोषित करने पर सूरजमल का असन्तुष्ट होना, दोनों भाइयों का दो बलवान हाथियों की भाँति एक दूसरे पर टूट पड़ना, रायमल के बुढ़ापे की अवस्था में भी युद्ध करने के लिए रणक्षेत्र में उपस्थित होना, उसे आहत एवं मूर्छित देखकर रणभूमि से बाहर ले जाना, पृथ्वीराज द्वारा सूरजमल का परास्त होना, पृथ्वीराज का विजयी होकर चितोड़ लौट आना ये सभी घटनाएँ इतिहास के अनुसार ही रखी गई हैं। " [3]

---

1. कीर्तिस्तम्भ - पहला अंक - सातवाँ दृश्य - पृ. 59
2. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 172
3. वही पृ. 173

संग्रामसिंह के प्राणों में एक अखण्ड और सबल भारत का स्वप्न था जिसे अवसर पाकर पूर्ण करना चाहता था। संग्रामसिंह ने वन-पुत्र भीलों का मन जीतकर उन्हें एक संगठन में बांध लिया। सांगा के संकेत पर सहस्रों धनुर्धारी भील एवं अन्य वनपुत्र प्राणों की बाजी लगाने को तैयार थे। नाटक का यह प्रसंग भी पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है।[1]

पृथ्वीराज की मृत्यु :-

पृथ्वीराज के बहनोई सिरोही नरेश ने उसे विष देकर छलपूर्वक मार डाला था। इस प्रसंग के लिए भी ऐतिहासिक आधार है।[2]

पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद सूरजमल का मालव के सुल-तान की सहायता से मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए तैयार होना, इस कार्य में सिरोही नरेश का भी सूरजमल को साथ देना, सुअवसर पाकर संग्रामसिंह का प्रकट होना, सूरजमल और संग्रामसिंह की तलवारें टकराना, संग्रामसिंह का मालवा के सुलतान की सेना को पराजित कर कुल और देश से द्रोह करनेवाले सूरजमल और ज्वाला को बन्दी बनाना, अंत में बरसों से बिछुड़े हुए पिता और पुत्र प्रेमालिंगन में बंध जाना ये सभी घटनाएं ऐतिहासिक हैं।

- -

1. Heroes who made History, V.B. Kulkarni, p.3.

2. टाड कृत राजस्थान का इतिहास
Heroes who made History, V.B. Kulkarni, p.3.

भ ग्न प्रा ची र
=x=x=x=x=x=x=x=x=x=

नाटककार ने मेवाड के इतिहास प्रसिद्ध महाराणा संग्रामसिंह के यशस्वी जीवन के उस अंतिम परिच्छेद को चित्रित किया है जिसमें वे राजपूत शक्तियों का संगठन कर बाबर से संघर्ष करते हैं ।

इब्राहीम लोदी की पराजय

नाटक के प्रारंभ में हम महाराणा सांगा को दिल्ली के विदेशी पठान शासक इब्राहीम लोदी का गर्व खर्व करके चितौडगढ के सभा-गृह की ओर पधारते हुए देखते हैं । महाराणा संग्राम द्वारा इब्राहीम लोदी की पराजय की पुष्टि इतिहास से होती है।[1] साथ ही महाराणा द्वारा लोदी के पुत्र मुहम्मदखाँ को बन्दी बनाना कुछ समय स्नेह पूर्व रख कर बिदा करना भी इतिहास के अनुसार[2] प्रेमी ने चित्रित किया है। इब्राहीम लोदी के विरुद्ध लाहौर के सूबेदार दौलतखाँ लोदी तथा इब्राहीम लोदी के चाचा अलाउद्दीन लोदी का बाबर का सहायक होना इतिहास सम्मत है।[3] बाबर के हाथों इब्राहीम लोदी एवं उनकी विशाल सेना की पराजय भी ऐतिहासिक सत्य है।[4] मुहम्मद लोदी द्वारा मेवाड में शरण, राणा संग्रामसिंह द्वारा रक्षा का आश्वासन, बाबर का मेवाड पर आक्रमण भी प्रामाणिक घटनाएँ हैं ।[5]

---

1. A Comprehensive History of India, Vol V. Ch. 10, p.800 by G.N. Sharma.
   टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 175
2. वीर विनोद - भाग 1 - पृ. 354
3. मुगल कालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ.18-19, पंचम सं.1965
4. बाबरनामा - रूपान्तर - केशवकुमार ठाकुर - पृ.396-397
   मुगल कालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ.21
5. Mewar and Mughal Emperors, G.N. Sharma, pp.25-26,
   The Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.321.

बाबर का संग्रामसिंह के समीप सन्धि प्रस्ताव भेजना कि जमुना के दक्षिण प्रदेश में वे अपने राज्य का विस्तार नहीं करेंगे, शिलादित्य का महाराणा को किसी तरह भी संधि की स्वीकृति के लिए उलझाए रखना, उज्वलसिंह का संधि प्रस्ताव के प्रति असहमति प्रकट करना एवं युद्ध के लिए कटिबद्ध होनाभीइतिहास के साथ मेल खानेवाली घटनाएँ है । [1]

युद्ध के प्रारंभ में राणा सांगा की सेना के आगे बाबर की पराजय एवं बाबर की सैन्य टुकड़ी को समाप्त कर ध्वज का अपहरण भी इतिहास के अनुसार रखे गये है । [2]

<u>बाबर की प्रतिज्ञा</u>

खानवा के रणशिविर के सामने खुले मैदान में खड़े होकर बाबर ने कुरान शरीफ की कसम खाकर प्रण किया कि शराब को भविष्य में छूएंगे नहीं । खेमे में जितनी भी शराब थी उसे जमीन में मिला देने की तथा शराब पीने के जो सोने चाँदी के थाले थे उन्हें तोड़कर सैनिकों में बाँट देने की आज्ञा भी दो गई। सभी इतिहासकार इस घटना से सहमत है । [3]

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 179

2. Mewar and Mughal Emperors, G.N. Sharma, pp.25-26.

3. India since 1526, V.D. Mahajan, Seventh Edition, p.9.
   Heroes who made history, V.D. Kulkarni, Second Edition, 1965, p.6.
   Cambridge History of India, Vol IV, Ch. I, p.17, by Sir Denison Ross.

बाबरनामा - X व्याख्ता - केशवकुमार ठाकुर - पृ.396-397

खानवा युद्ध

खानवा युद्ध क्षेत्र में महाराणा सांगा और बाबर के बीच हुए घमासान लड़ाई का चित्रण भी इतिहास के अनुसार ही किया गया है।[1] बाबर के तोपखाने से राणा की सैन्य स्थिति का विशृंखलित होना एवं राणा द्वारा तोपखाने पर अधिकार करनेवाली घटनाएँ ऐतिहासिक हैं।[2]

महाराणा सांगा का तीर खाकर हाथी पर से गिर पड़ना, एवं मूर्छित होना, किसी के द्वारा यह झूठी खबर फैला देना कि महाराणा जी वीरगति पा गए, यह सुनकर योद्धाओं का भाग चलना, उस समय उज्वलसिंह झाला का राजमुकुट अपने मस्तक पर धारण करके हाथी पर बैठकर शत्रु दल में घुस जाना शत्रु दल का संहार करते समय कहीं से आकर एक तीर उनके मस्तक को बेधता हुआ पार हो जाना, शत्रु की लाशों की सेज पर उसका स्वयं सो जाना, विश्वस्त सैनिकों द्वारा राणा को बासवा ग्राम लेजाना - ये सभी घटनाएँ इतिहासकार को मान्य हैं।[3]

महाराणा ने प्रतिज्ञा की कि युद्ध में जीते बिना चितौड़-गढ नहीं लौटूंगा। जब पुनः युद्ध करने की बात उन्होंने अपने सामंतों से कही तो युद्ध से ऊबे हुए सामंतों ने राणा को विष देकर उनकी हत्या की।

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 179
2. Mewar and Mughal Emperors, G.N. Sharma, p.37.
3. Rise and Fall of Mughal Empire, R.P. Tripathy, p.43.

टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 179

भारत का सैन्य इतिहास - अनु. सुशील कुमार त्रिवेदी - पृ. 68

A Comprehensive History of India, Vol. V, Ch. 10, p.800, G.N. Sharma.

यह ऐतिहासिक सत्य है। [1]

नाटक में काल्पनिक घटनाओं का समावेश है। प्रेमी ने ऐतिहासिक तथ्यों के साथ काल्पनिक घटनाओं को इस प्रकार रखा है कि ऐतिहासिक तथ्यों का क्रम न बिगड़जाए।

इतिहास के अनुसार महाराणा संग्रामसिंह ने बाबर को दिल्ली के पठान बादशाह पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रित किया। लेकिन प्रेमी ने इस तथ्य को छिपाया है। इससे वे संग्रामसिंह के आदर्श को प्रस्तुत कर सके। शिलादित्य के हाथों उज्वलसिंह झाला का प्राणान्त होना, प्रेमी की अपनी कल्पना है। राजपूत सरदारों के पारस्परिक वैमनस्य और उसके दुष्परिणाम को प्रकट करने के लिए उनके पास पर्याप्त आधार भी है। क्यों कि इतिहास कहता है कि उज्वलसिंह झाला बाबर और संग्रामसिंह के बीच हुए युद्ध में मारे गए थे।

र क्षा ब न्ध न

=X=X=X=X=X=X=X=X=

इस नाटक में मुगल सम्राट हुमायूं और उदयपुर के स्वर्गीय महाराणा सांगा की पत्नी कर्मवती के भाई-बहन के पवित्र संबंध की रक्षा का वर्णन है।

- -

1. The Comprehensive History of India, Ch. 10, G.N. Sharma, p.802.
टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 179
Rise and Fall of Mughal Empire, R.P. Tripathi, 3rd Edition, 1963, p.44.

कर्मवती का हुमायूं को राखी भेजना :-

गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चितौड पर आक्रमण किया। राजपूतों की सैन्य शक्ति कम होते देख चितौड की रानी कर्मवती हुमायूं को राखी भेजकर अपना भाई बनाती है। भ्रातृत्व और मनुष्यत्व पर विश्वास करके हुमायूं की परीक्षा करने का वह निश्चय करती है। कर्मवती द्वारा हुमायूं को राखी भेजना इतिहास सम्मत घटना है। यही घटना नाटक का केन्द्रबिन्दु है। टाड [1], आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव [2], आर० पी० त्रिपाठी [3], और वी०डी०महाजन [4], आदि इतिहासकारों ने इस घटना का उल्लेख किया है। अंतर केवल इतना है कि जहाँ नाटक में कर्मवती नाम मिलता है, वहाँ त्रिपाठी ने पद्मावती ही बनाया, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने एवं वी०डी०महाजन ने कर्मवती ही लिखा है।

डा०धनंजय ने कर्म वती द्वारा हुमायूं को राखी भेजने की घटना असंगत एवं इतिहास विरोधी चित्रित किया है। [5] धनंजय का प्रेमी के ऊपर यह आरोप लगाना कि 'इस तरह की अस्वाभाविक कल्पना दुराग्रह से उद्भूत है', उपर्युक्त ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर अन्याय सिद्ध होता है।

कर्मवती की राखी स्वीकार करने के बाद हुमायूं उसकी

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ० 183
2. मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ० 56
3. Rise and Fall of Mughal Empire, R.P. Tripathi, p.72.
4. India since 1526, V.D. Mahajan, pp.21-22.
5. ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा०धनंजय - पृ० 309

सहायता के लिए चितौड पहुंच गया या नहीं , इसे लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। प्रेमी ने इस घटना के लिए टाड के इतिहास का आधार ग्रहण किया है। आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव,[1] त्रिपाठी और महाजन[2] की राय है कि हुमायूं ने राखी स्वीकार की और अपनी बहन की रक्षा के लिए चितौड की ओर अग्रसर हुए। किन्तु रास्ते में ही वह रुक गया। हुमायूं ने बहादुरशाह को एक गैर मुस्लिम के साथ युद्ध करते समय उनका आक्रमण करना अधर्म ही समझा। यह सचमुच हुमायूं की एक भूल थी।

प्रेमी हुमायूं की भूल को छिपाना चाहता है। नाटक में दिखाया गया है कि हुमायूं ने राखी के बदले में बादशाह से बहादुर से चितौड की रक्षा करके रानी कर्मवती की सहायता करने का निश्चय किया। इसी इसी आधार पर वे अपनी फौज लेकर दिल्ली से रवाना हुए और जैसे ही चितौड के निकट पहुंचा, बहादुरशाह चितौड छोडकर चला गया। बहुत कोशिश करने पर भी हुमायूं अपनी बहन को बचा न सके। उनके आने में देर हो गई, इसलिए कर्मवती की राखी का कर्ज न चुका पाया।

कर्मवती का हजार क्षत्राणियों के साथ चिता पर चढ जाना ऐतिहासिक है।[3]

मेवाडों एवं बहादुरशाह की सेना में हुए युद्ध में महाराणा सांगा की बडी रानी जवाहरबाई का सहस्रों शत्रुओं के अभिमान का

---

1. मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ.55-56
2. India since 1526, V.D. Mahajan, pp.21-22.
3. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 162

मस्तक चूर्ण कर वीर मृत्यु प्राप्त करना भी इतिहास सम्मत है।'[1]

काल्पनिक पात्र चारणी के माध्यम से देश को सर्वोपरि मानने का उपदेश दिलाया गया है। गुजरात के बागी का विक्रमाजित के यहाँ शरण लेना, बहादुरशाह का विक्रम के पास पत्र भेजना कि बागी को लौटा दें अन्यथा मेवाड़ पर चढ़ाई की जाएगी, विक्रम का इसके लिए तैयार न होना और यह कहना कि धर्म के नाम पर मनुष्यता के टुकड़े नहीं किए जा सकते, कल्पित प्रसंग है। ऐतिहासिक साक्ष्य केवल इतना है कि बहादुरशाह ने चितौड़ पर आक्रमण किया था। विक्रमजीत के समय उसने जो चढ़ाई की वह उसकी दूसरी चढ़ाई थी। एक बार पहले भी वह संधि कर चुका था।[2] बहादुरशाह के दूसरे आक्रमण के समय पुर्तगाली के गवर्नर यूरोपियन तोपखाने के होने के [illegible] का उल्लेख ऐतिहासिक है।[3]

बहादुरशाह के गुरु शाहशेख औलिया का उसे यह समझा देना कि हिन्दुओं के मन्दिरों को, गरीब इन्सानों की इबादतगाहों को तुड़वाकर बादशाहत न बँटाना चाहिए, एक हिन्दू और मुसलमान को समान समझना चाहिए, कल्पित प्रसंग है जिसके द्वारा नाटककार ने अपनी लक्ष्यसिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

वातावरण

अतीत युग में वर्णाश्रम तथा जातिव्यवस्था में विश्वास होने के कारण समाज में ऊँच-नीच की विषमता की ओर संकेत करके प्रेमी ने

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 182

2. राजपुताने का इतिहास - गहलौत - भाग 1 - पृ. 224

3. लाइफ एण्ड टाइम्स आफ हुमायूँ - ईश्वरी प्रसाद - पृ. 7।

ने वातावरण का सृजन किया है। महाराणा रत्नसिंह के ज्येष्ठ पुत्र का विवाह श्यामा भीलनी के साथ हुआ था। श्यामा भीलनी का यह कथन कि मेरा बेटा विजयसिंह सिसोदिया वंश में उत्पन्न होकर भी मेवाड़ के राजमहलों को छोड़कर जंगल में रह रहा है, थोथे वंशाभिमान और समाज के अन्याय के कारण ऊँच नीच की भावना की निरर्थकता सिद्ध करता है।

X=X=X=X=X=X=XX=X=X=X

अ म र आ न

इस नाटक में जोधपुर के नरेश महाराजा गजसिंह राठौर के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह राठौर का प्रचण्ड उत्साही, स्वाभिमानी और आनके लिए प्राण देनेवाले चरित्र अधिक उजागर है।

अमरसिंह का निष्कासन :-

जोधपुर नरेश गजसिंह ने अपने पुत्र और पत्नी को देश से निर्वासित कर अमरसिंह के छोटे भाई जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। यह ऐतिहासिक है।[1]

बिकानेर और नागौर के बीच युद्ध:-

बिकानेर और नागौर के बीच एक मतीरे के लिए हुआ था। नागौर की जाखणियाँ गाँव की सीमा बिकानेर के सीलवाँ गाँव से लगती थी। सीलवाँ के एक खेत में बोई हुई मतीरे की बेल जाखणियाँ की

- -

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 379

सीमा में आ गई। सीलवा वाले जब नागोर ॥ की सीमा में लगा फल तोड़ने आए तो जारवणियांवालों ने रोका । वे बोले फल अपनी सीमा में लगा है, इसलिए अपना है। किन्तु सीलवावाले बोले कि बीज उन्होंने बोया है, अतः फल उनका है। दोनों ओर के लोग अपने हठ पर अड़े रहे। तब ■ तलवारें तन गई । दोनों की सेनाएं आ पहुंचीं । मतीरे ने दोनों तरफ के अनेक मनुष्यों के मस्तक को चबा डाला। अंत में बिकानेरवाले मतीरा ले गए। [1]

सलामतखाँ का वध

अमरसिंह जहाँगीर की सेना में अधिकारी था। अमरसिंह दरबार में सात दिनों से अनुपस्थित रहा। शाहजहाँ के मीर बख्शी सलावतखाँ ने अमरसिंह के दरबार में आकर उन्हें यह आज्ञा सुनायी कि अमरसिंह को शाही ■ ड्योढी में पहरा देना होगा। अमरसिंह बादशाह से मिलने के लिए दरबार से निकले। नियमानुसार उन्हें सलामतखाँ के द्वारा बादशाह के पास जाना चाहिए था। किन्तु वह महाराव को बादशाह के पास पहुंचने नहीं ■ देना चाहता था। उस समय बादशाह दारा के महल में ■ ■ था। क्योंकि जहाँनारा जो भयानक रूप में जल गई थी वहीं थी । अमरसिंह सीधा वहाँ पहुंचे। अमरसिंह ने देखा कि सलावतखाँ पहले ही वहाँ उपस्थित होकर सम्राट के कान उनके विरुद्ध भर रहा था। उसने अमरसिंह को गँवार कहा और यह सुनते ही उनके तन बदन में आग लग गई । बिजली की भाँति अमरसिंह की तलवार म्यान से निकली और क्षणभर बाद ही सलावतखाँ का मस्तक भूमि पर लोटने लगा। यह समाचार आग की तरह फैल गया।

---

1. राजपुताने का इतिहास - गहलोत - भाग - 1 पृ. 409

अमरसिंह के सामने जो भी आए उन्हें घासों पर सुलाते हुए किले की दीवार से पीछे से कूदकर साफ निकल गए तो बादशाह के क्रोध का ठिकाना न रहा । बादशाह ने सारे मनसबदारों को बुलाकर कहा - , जो अमरसिंह जीवित या मृत मेरे पास लाएगा मैं उसे एक लाख रुपये सालाना आय के अतिरिक्त जागीर दूँगा। अर्जुन अर्जुन गौड ने छल किया। वह अमरसिंह को खिड़की के रास्ते से किले में ले चला और जब वह खिड़की से अन्दर जाने लगे तो असावधान पाकर उनकी गरदन पर तलवार का वार कर दिया। ' [1]

शाहबाज नामक एक पठान सैनिक को महाराजा अमरसिंह ने पगड़ी बदल मित्र बनाया था। एक बार शाहबाजखाँ मारवाड के मरुथल में भटक गया था। गरमी और लू ने उसे बेसुध सा कर दिया। कंठ एकदम सूख गया। अकस्मात् अमरसिंह उधर निकल आए। उन्होंने शाहबाज को उठाया, पानी पिलाया, उसे नया जीवन दिया । शाहबाज के लिए वे फरिश्ते थे । उन्हें अपना मित्र बनाकर शाहबाज ने वादा किया - जहाँ आपका पसीना गिरेगा वहाँ मैं अपना खून बहाऊँगा। तब अमरसिंह ने अपनी पगड़ी शाहबाज के सिर पर रख दी और शाहबाज को पगड़ी अपने सिर पर।

बल्लूजी के नेतृत्व में राजपूत सेना का किले पर आक्रमण करना, शाहबाज खाँ की सहायता से रानी का अपने पति की लाश प्राप्त करना, मुगल और राजपूत सेना के बीच घोर युद्ध होना, रानी का पति के साथ सती हो जाना, ये सभी प्रसंग इतिहास के अनुसार ही रखे गए हैं । [2]

- -

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 381

2. वही पृ. 382

पात्रों में अमरसिंह राठोर, अहाडी रानी, दारा शिकोह, सलावतखां, बल्लूजी, शाहबाजखां, कुंवर जगतसिंह, अर्जुन गोड ये सभी ऐतिहासिक पात्र है ।

नाटक के तीसरे अंक मे अहाडी रानी और उसकी दासी गुलाब में जो वार्तालाप चलता है यह प्रसंग प्रेमी की अपनी कल्पना है । जिससे वे समाज में प्रचलित ऊँच नीच की भावना एवं सामाजिक असमानता पर प्रकाश डालते है । रानी और दारा शिकोह के बीच का वार्तालाप भी काल्पनिक है, जिसकी उपयोगिता दो दृष्टियों से है। एक तो यह कि इसके द्वारा दारा शिकोह के चरित्र की उत्कृष्टता का परिचय मिलता है कि शाही घराने में दारा ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसके दिल में भारतवासियों के लिए दर्द है, और वे उन लोगों से है जो महल में रहकर भी झोपडी की पुकार सुनते। दूसरे अहाडी रानी के चारित्रिक गुणों का आभास मिलता है। नाटक में दिखाया गया है कि अहाडी रानी मुगल सेनाओं द्वारा अपने पति की जीवनलीला के समाप्त होने पर भी प्रतिहिंसा की ज्वाला में जलकर अपने मस्तिष्क का संतुलन नहीं खो देती। क्रोध के आवेश में युद्ध करने के लिए ~~युद्ध करने के लिए~~ तत्पर राठोर योद्धाओं से रानी शान्त चित्त से सोचने का उपदेश देती है। जब दारा रानी से उसके पुत्र को नागोर की गद्दी का स्वामी बनाने की बात कहता है तो वह उस प्रस्ताव को अस्वीकार करती है। वह अपने पति की बडी रानी से उत्पन्न पुत्र कुंवर रामसिंह जी को गद्दी का स्वामी बनाना चाहती है। यह प्रसंग रखने से एक लाभ यह भी हुआ कि अहाडी रानी का आदर्श नारीत्व स्पष्ट [redacted] होता है। पुत्र गद्दी का स्वामी बने, माँ के लिए यह बहुत बडा प्रलोभन है। लेकिन रानी इस प्रलोभन में नहीं पडती।

नाटक के पहले अंक में प्रेमी ने अमरसिंह राठौर को शराब पीते हुए दिखाया है। इसके संबंध में प्रेमी ने लिखा है - 'वीर पूजक भावुक हृदयवाले व्यक्ति कदाचित् इस बात को पसन्द न करें, किन्तु सचाई यह है कि वह शराब पीने के बहुत शौकीन थे। --- हमें उन दुर्बलताओं को प्रकाश में लाने में संकोच नहीं करना चाहिए जिनके कारण महान पुरुष भी अपने जीवन में असफल रहे।" [1]

अमरसिंह राठौर के चरित्र पर आधारित अन्य नाटक है चतुरसेन शास्त्री का 'अमरसिंह राठौर' तथा राधाचरण गोस्वामी कृत 'अमरसिंह राठौर'। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि हिन्दी भाषी प्रदेशों में अमरसिंह राठौर के चरित्र पर आधारित एकांकियाँ खेली गई है। नाटक की भूमिका में प्रेमी ने नाटक की ऐतिहासिकता की तुलना अन्य नौटंकियों की तथा चतुरसेन के नाटक की ऐतिहासिकता से करते हुए लिखा है - ' किन्तु एक तो वे (नौटंकियाँ) संगीतात्मक है, दूसरे उनमें ऐतिहासिक तथ्य कम और कल्पना अधिक है। और तीसरे उनका साहित्यिक स्तर निम्न कोटि का है। इस कारण मुझे इस नाटक को लिखना उचित जान पड़ा। हिन्दी भाषा के एक दिग्गज साहित्यकार ने अमरसिंह राठौर पर नाटक लिखा, उन्होंने नौटंकियों अनेक कल्पित घटनाओं को एवं मनगढ़न्त पात्रों पात्रों को नहीं लिया, फिर भी नौटंकी में आनेवाला पात्र रामसिंह, अमरसिंह राठौर के भतीजे के रूप में वर्तमान है जो अमरसिंह राठौर के शव को प्राप्त करने के लिए लिए मुगल सम्राट की सेना से युद्ध करता है। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि उस समय अमरसिंह राठौर का कोई भतीजा इतनी आयु का नहीं कि युद्ध कर सके। इस घटना के समय उनकी आयु केवल 32 वर्ष की थी।

- -

1. अमर आन - प्रवेश - पृ. 8

वेह अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनके छोटे भाई अचलसिंह बचपन में मर गया। उसके अतिरिक्त जसवन्तसिंह के तीसरे भाई थे जिनकी आयु इस घटना के समय 19 वर्ष की थी। इस जसवन्तसिंह का पुत्र तो इतनी आयु का उस समय हो ही कैसे सकता था जो रणभूमि में शत्रुओं के छक्के छुड़ा दे। नौटंकीवालों को इतिहास विरुद्ध घटनाओं और पात्रों के सृजन के लिए क्षमा किया भी जा सकता है। लेकिन माने हुए साहित्यकार का इस प्रकार का स्वेच्छाचार शोभजनक नहीं कहा जा सकता। - - नौटंकियों से अलग जाकर भी उक्त नाटक के यशस्वी नाटककार ने कुछ कल्पनाएँ की है। ऐतिहासिक नाटकों में लेखक कल्पना करे ही नहीं ऐसा तो मैं नहीं मानता, - लेकिन कल्पनाएँ ऐसी होनी चाहिए जो ऐतिहासिक तथ्यों को उभारने में सहायक हो। उनका रूप बिगाड़ने का साधन न बने। उन्होंने अमरसिंह राठौर की एक विवाहयोग्य पुत्री की कल्पना की है। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि अमरसिंह मृत्यु के समय दो पुत्र और तीन पुत्रियों के पिता थे। किन्तु उनकी संतान दस वर्ष से अधिक आयु की नहीं थी। इस कल्पना के प्रबंध में सबसे आपत्तिजनक बात यह है कि यशस्वी लोग चित्रित करते है कि शाहजहाँ का सबसे बड़ा पुत्र दारा शिकोह उसके सौंदर्य पर मोहित होकर उसे हस्तगत करने का उपाय करते है। सबसे बड़ी आपत्तिजनक बात तो दाराशिकोह के चरित्र को गिराना है।[1]

वातावरण

वातावरण के निर्माण में प्रेमी ने सतर्कता बरती है। बिकानेर और नागोर के बीच एक छोटी सी बात पर - एक मतीरे के लिए -

---

1. अमर आन - प्रवेश - पृ. ज

युद्ध होना, राजपूतों के झूठे अहंकार का द्योतक है। राजपूतों के पद-दलित होने के प्रमुख कारणों में उनका झूठा अहंकार एवं अदूरदर्शी प्रवृत्ति भी रही।

X=X=X=X=X=X=X=X=X

स्व प्न भं ग

स्वप्नभंग में हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षपाती दारा के अन्तिम दिनों में औरंगजेब के साथ हुए संघर्ष एवं उनकी शोकपूर्ण मृत्यु का वर्णन है।

शाहजहाँ के पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए युद्ध का प्रारंभ :-

शाहजहाँ बीमार पडते हैं। उनकी बीमारी का समाचार पाकर शुजा बंगाल से सेना लेकर चल पडता है। औरंगजेब और मुराद मिलकर दक्षिण से आते हैं। रोशनआरा औरंगजेब को संदेश भेजती है कि राजपुत राजा जयसिंह, जसवंतसिंह और छत्रसाल हाडा सब दारा के साथ हैं। अगर औरंगजेब मुगल साम्राज्य को हिन्दुओं के हाथ में जाने से रोकना चाहते हैं तो उनका आगरा पहुंचना जरुरी है। इस प्रसंग के लिए पर्याप्त ऐतिहासिक आधार है। [1]

उत्तराधिकारी युद्ध की पहली झपट :-

शाहजहाँ ने महाराज जसवंतसिंह और जयसिंह से कह दिया था कि वे औरंगजेब, मुराद एवं शुजा को कभी न दंड दें, उनसे न

- -

1. History of Shahjahan of Delhi, Banarasi Prasad Saxena, pp.324, 327.

दारा शिकोह - कानूनगो - पृ. 106

युद्ध करें, बल्कि उन्हें समझाबुझाकर वापस दक्षिण भेज दिया जाए। यह प्रसंग जो शाहजहाँ के पुत्र प्रेम का स्पष्ट प्रमाण है, इतिहास सम्मत है।[1]

उत्तराधिकारी युद्ध की पहली झपट :-

धर्मत का युद्ध

महाराणा जसवंतसिंह ने अपनी सेना को जिस स्थान पर खड़ा किया, वह अत्यन्त तंग था, तिसपर सेना को फैलने के लिए कोई स्थान न था। जब औरंगजेब के योरोपियन तोपखाने ने अग्निवर्षा की तो राजपूत सेना को न फैलने की जगह मिली, न आक्रमण करने की सुविधा। फिर भी राजपूत राजपूत ही थे। मुकुन्दसिंह हाडा के नेतृत्व में वे सेना के नियम और सेनापति की आज्ञा की प्रतीक्षा किए बिना शत्रु पर टूट पड़े। गोलियाँ बरसाती हुई तोपों के सामने ये गाजी दौड़े, तलवारें घुमाते आगे बढ़ चले। फिर कासिमखाँ ने धोखा दिया। वे राजपूत, बिना यह देखे कि कोई हमारी सहायता को आता है कि नहीं, बढ़ते ही गए। सैकड़ों को मारते हुए खप गए। मुकुन्दसिंह हाडा, रत्नसिंह राठौर, दयालसिंह झाला, अर्जुनसिंह गौड़, सुजानसिंह सीसोदिया आदि सभी राजपूत इस युद्ध में मारे गए। कोटा का तो सारा राज परिवार, वहाँ के भाई युद्ध में बलि हो गए। अकेला हाडा ही नहीं, गौड़, राठौर, सीसोदिया सभी ने अपना अपना भाग इस बलियज्ञ में दिया। जसवन्तसिंह ने भी शत्रुदल में घुसकर प्राण समर्पित करने की इच्छा की। परन्तु उनके साथियों ने उनके घोड़े की लगाम पकड़ी। उसे युद्ध क्षेत्र से बलपूर्वक खींच ले गए।

धर्मट युद्ध का उपर्युक्त बयान इतिहास से पूर्ण रूप से मेल खाता है।[2]

- -

1. औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 44 - नया संस्करण - 1970
2. वही पृ.56-60
मुगल साम्राज्य क्षय और उसके कारण - इन्द्र विद्या वाचस्पति - द्वितीय सं. 1957
पृ. 138-141

युद्ध का जो विवरण नाटक में प्राप्त है, उसमें केवल राजपूतों की वीरता ही गूंजती है। औरंगजेब की सफलता कैसी हुई थी, उनकी सेना ने किस ढंग से युद्ध का संचालन किया था आदि के संबंध में प्रेमी मौन है। नाटक का यह प्रसंग कि जसवंतसिंह के हारकरजोधपुर पहुंचने पर उनकी रानी महामाया का किले में न घुसने देना, कोट के सारे द्वार बन्द कराकर महाराजा को यह कहला भेजना कि संग्रामभूमि में हारे हुए पति को राजपुतानी के घर में स्थान नहीं, प्रामाणिक है।[1] इस प्रसंग के द्वारा प्रेमी भारतीय नारी के मन की दृढता, आत्माभिमान आदि को स्पष्ट करते है।

सामूगढ का युद्ध

उज्जैन की विजय से उत्साहित होकर औरंगजेब ग्वालियर आ पहुंचा। चम्पतराय बुंदेला भी औरंगजेब से आ मिला। दारा ने चंबल तट के सारे रास्ते रोक लिए। ताकि औरंगजेब उस पार न आ सके। लेकिन चम्पराय ने दूसरा मार्ग बना लिया। छत्रसाल राजपूत सेना का नेतृत्व करता था। औरंगजेब की सेना को चंबल के ऊबड-खाबड कगारों में धूप और थकावट के शिकार बनते हुए देखकर छत्रसाल ने उसी समय ही उनपर आक्रमण करने की बात सोची। लेकिन दारा ने और एक दिन की प्रतीक्षा करने के लिए छत्रपाल से कहा। लेकिन एक दिन आराम करने से औरंगजेब की सेना में नया बल आ गया। औरंगजेब के यूरोपियन तोपखाने की अग्नि-वर्षा के आगे रामसिंह राठौर, छत्रसाल हाडा, भीमसिंह गौड, सभी का अस्तित्व समाप्त हो गया। अपने साथियों की मदद करने के लिए दारा हाथी से उतरकर घोडे पर सवार होकर बढे, उस समय खालीलुल्लाह खाँ ने खबर

---

1 मुगल साम्राज्य के क्षय और उनके कारण - इन्द्र विद्या वाचस्पति- पृ.142

फैला दी कि ' दारा मारा गया', हाथी खाली है। यह सुनकर दारा की प्रेम सेना भाग खड़ी हुई। अन्त में दारा की पराजय हुई।" सामूगढ के युद्ध का उपर्युक्त विवरण इतिहास के साक्ष्यों के आधार पर है।[1] एक स्थान पर प्रेमी ने थोड़ा परिवर्तन किया। जब दारा को मालूम हुआ कि छत्रसाल हाड़ा, भीमसिंह गौड़, आदि औरंगजेब की सेना में घुस गए तो उसने उनकी मदद करने के लिए हाथी से उतरकर घोड़े पर सवारी की और आगे बढ़ा। लेकिन सरकार एवं स्मिथ के अनुसार दारा का हाथी गोलियों का शिकार बना, इसलिए उसे हाथी को छोड़कर घोड़े पर बैठना अनिवार्य था। इस परिवर्तन से जब लाभ यह हुआ है कि दारा की चारित्रिक विशेषता और भी निखर उठी है।

सामूगढ के युद्ध के पश्चात् औरंगजेब का शाहजहाँ को बन्दी बनाना, किले में पानी का प्रवेश रोकनेवाली घटनाएँ इतिहासकारों के लिए भी मान्य है।[2]

जहाँनारा की औरंगजेब से मुलाकात :-

जहाँनारा ने शाहजहाँ के अनुरोध पर औरंगजेब के पास जाकर उसे विश्वास दिलाया कि बाबा, शुजा को बंगाल और दारा को पंजाब देकर शेष देश मुराद और औरंगजेब में बाँट देने की इच्छा करते है। औरंगजेब बाबा से मिलकर बातें करने के लिए राजी हो गए। लेकिन आते वक्त रोशनआरा ने विश्वास दिलाया कि यह तो औरंगजेब को गिरफ्तार कराने के लिए जहाँनारा का एक षड्यन्त्र है। यह सुनकर औरंगजेब ने अपनी यात्रा

1. The Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.394.
औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 63-69

2. The Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.394.
The Rise and Fall of the Mughal Empire, R.P. Tripathi, p.491.

बन्द की। नाटक का यह प्रसंग पूर्णरूप से ऐतिहासिक नहीं । जहाँनारा की औरंगजेब से हुई मुलाकात इतिहास सम्मत है। लेकिन औरंगजेब का शाहजहाँ से मिलने के लिए न [redacted] आने का जो कारण बताया है वह ऐतिहासिक सत्य के विरुद्ध है। इतिहासकारों ने लिखा है कि औरंगजेब पिता से मिलने के लिए निकल पड़े, लेकिन रास्ते में शाहजहाँ का दारा के नाम लिखे गए एक पत्र औरंगजेब के हाथ में पड गया जिससे क्रुद्ध होकर [redacted] वह मार्ग से ही लौट गया।[1] प्रेमी ने रौशनारा की कुटिलता का परिचय देने के लिए इस काल्पनिक प्रसंग की सृष्टि की होगी।

दारा के नाम लिखा गया पत्र औरंगजेब के हाथ में पड जाने की घटना का उल्लेख प्रेमी ने इस नाटक में किया है। लेकिन प्रेमी ने नाटक में घटनाओं का उलट-फेर करके कालक्रम दोष उत्पन्न किया है।

समूगढ के युद्ध में पराजित होकर वापस आने पर दारा और शाहजहाँ के मिलन का जो प्रसंग है यह भी इतिहास सम्मत नहीं । इतिहासकारों के अनुसार दारा युद्ध में पराजित होने से शाहजहाँ को मुँह दिखाना न चाहता था।"[2]

---

1. मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ. 368
The Cambridge History of India, Vol.IV, Ch.VII, by Sir Richard Burn, p.214.
औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ.71
History of Shahjahan of Delhi, Banarasi Prasad Saxena, pp.332-333.

2. The Cambridge History of India, Ch.VII. Richard Burn, p.214.
औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ.69

औरंगजेब के षडयन्त्र में पड़कर दारा का अपने सशक्त सेनापति दाऊदखाँ का गँवा देना , औरंगजेब का दामाद शाहनवाज खाँ के आग्रह पर जामनगर के महाराणा के दारा का स्वागत करना, दारा के पुत्र सिपर शिकोह के साथ अपनी लड़की की शादी करके दारा से अपना संबंध चिरस्थायी बनाना, ये सभी घटनाएँ ऐतिहासिक साक्ष्य लिए हुए हैं ।[1]

दारा का भागना, अन्त में पकड़ा जाना, नादिरा की मृत्यु

औरंगजेब से सम्मान पाकर जसवंतसिंह दारा की सहायता करने से विरत हो गए। दारा को बिना राजपूतों की सहायता से औरंगजेब की सशक्त सेना से लड़ना पड़ा। दारा के ही आदमियों के विश्वासघात ने उसे भागने के लिए मजबूर किया। बोलन दर्रे के पास दादर के जागीरदार मलिक जीवन ने दारा को सपरिवार अपने घर ले जाकर रखा था। नादिरा की मृत्यु वहाँ हुई। उसकी इच्छा के अनुसार दारा ने उसका जनाजा लाहौर के लिए भेज दिया। कृतघ्न मालिक जीवन ने जिन्हें दारा ने एक बार मृत्यु दण्ड से बचाया था , दारा और सिपर शिकोह को गिरफ्तार करके महाराजा जयसिंह के पास भेज दिया। अन्त में वह पकड़ा गया। यह प्रसंग पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है।[2]

दारा का अपमान और उसकी मृत्यु

दारा को एक मैली कुचैली छोटी सी हथिनी पर झूले

---

1. Rise and Fall of the Mughal Empire, R.P. Tripathi, p.496.
The Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.396.

2. The Oxford Hisoty of India, V.A. Smith, p.396-397.
Rise and Fall of Mughal Empire, R.P. Tripathi, pp.497-98.

हुए होदे में बिठाया था। उसके पीछे उसका छोटा बेटा शिपर शिकोह था। उसके पीछे नंगी तलवार ताने जल्लाद नजरबेग बैठा था। मैले हुए फटे चीथड़ों में , सिर पर मोटी पगड़ी रखे दारा को गुजरना पड़ा। सारा नगर शोक के समुद्र में डूब गया। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी रो रहे थे। सारे शहर में हाहाकार मच गया। प्रत्येक नागरिक यह अनुभव करता था कि जैसे स्वयं उसके साथ कोई भयंकर घटना घटी हो। अपमान और वेदना के कारण दारा ने अपना सिर ऊंचा नहीं किया। केवल एक बार उन्होंने आँखें उठाकर देखा था जब कि एक भिखारी ने कहा -' युवराज, तुम जब जब पहले यहाँ से गुजरते थे तब कुछ न कुछ देते थे। आज तो तुम्हारे पास कुछ नहीं"। दारा ने कंधे से चादर उठाकर उसे दे दी। जुलूस के बाद फिर न्याय का खेल हुआ। बड़े बड़े मोलवी और काजी बैठे। सबने दारा को धर्म का दुश्मन बताकर मौत की सजा दी। बिना कोई रस्म अदा किए हुमायूँ शाह के मकबरे के पास उसे दफना दिया गया।" उपर्युक्त प्रसंग ऐतिहासिक आधार पर ही प्रस्तुत किया गया है।[1]

नाटक के तीसरे अंक के छठे दृश्य में रोशनआरा को पश्चात्ताप की आग में जलकर शाहजहाँ के सम्मुख अपने अपराधों के लिए माफ माँगते हुए दिखाया गया है। प्रेमी की यह कल्पना बिलकुल असंभाव्य भी है , क्यों कि औरंगजेब के न्यायालयमें दारा को दण्ड देने की बात पर विचार-विमर्श चलते समय रोशनआरा ने मृत्यु दण्ड को ही दारा के लिए उपयुक्त ठहराया है।

पात्रों के चरित्रांकन में ~~अधिकांशतः~~ भी प्रेमी ने

- -

1. औरंगजेब यदुनाथ सरकार - पृ. 79-80
Delhi - History and Places of Interest, Dr. Prabha Chopra pp.26-27
मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण - इन्द्र विद्या वाचस्पति- पृ.174-175

इतिहास का पर्याप्त आधार लिया। दारा का चरित्र एवं धार्मिक विचार-धारा का जो चित्रण प्रेमी ने अपने नाटक में किया है,[1] वह इतिहास के अनुरूप ही है।[2] प्रेमी ने औरंगजेब के जिस असली स्वरूप का पर्दाफाश उनके स्वागत भाषण द्वारा[3] किया वह भी इतिहासकार के लिए मान्य है।[4]

शाहजहाँ की दोनों पुत्रियों का चरित्र चित्रण भी इतिहास के अनुकूल है। जहाँनारा का गीत लिख लिखकर अपने दिल का दर्द हल्का कर लेना, अपने पिता के प्रति अगाध श्रद्धा एवं प्रेम प्रकट करना आदि पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है।[5] जहाँनारा के चरित्र की विशिष्टता के संबंध में बील के विचार महत्वपूर्ण हैं।[6]

- -

1. स्वप्न भंग - तीसरा अंक - पाँचवाँ दृश्य, सातवाँ दृश्य, पृ. 117, 128
2. औरंगजेब यदुनाथ सरकार - पृ.40-41
   Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.392.

2. मुगल साम्राज्य के क्षय और उसका कारण - इन्द्र विद्या वाचस्पति - पृ. 103-104

3. स्वप्न भंग - प्रथम अंक - तीसरा दृश्य - पृ.
4. मुगल का क्षय और उसके कारण - इन्द्र विद्या वाचस्पति - पृ.105, 108
5. वही —''— पृ.115 - 116
6. Her name will ever adorn the pages of history as a bright example of filial attachment and heroic self devotion to the dictates of duty. She not only supported her father in adversity, but voluntarily resigned her liberty and resided with him during his imprisonment in the fort of Agra", Beale, Dictionary of Oriental Biography, p.190.

प्रेमी ने रोशनआरा के संबंध में लिखा है कि उसने मनुष्यता, स्नेह, दया, ममता और विश्वास को भस्मसात् कर दिया। उसने मुगल साम्राज्य को विध्वंस के गढ में डाल दिया। उसका चरित्र भी इतिहास साक्ष्यों के आधार पर है।[1]

नाटक के सभी पात्र अपने प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के साथ नाटक में आए हैं।

वातावरण

इस नाटक में प्रेमी ने वातावरण सृजन में अपूर्व सफलता पाई है। मुगलकालीन सामाजिक जीवन एवं राजनीतिक उथलपुथल का, अत्यन्त ही यथार्थ, सजीव और हृदयग्राही चित्रण मिलता है।

=X=X=X=X=X=X=X=X=

शि व सा ध ना

देश की स्वतन्त्रता की आग में जीवन पर्यन्त जलते रहनेवाले वीरवर शिवाजी के उज्वल व्यक्तित्व पर नाटककार प्रकाश डालते हैं।

शिवाजी के पिता को बन्दी बनाना :-

शिवाजी ने तोरण, कोंढाना, पुरन्धर, तिकोना, लोहगढ, राजमाची, रायरी आदि दुर्ग कब्जे में कर लिए। उसने शाही खजाने को लूट लिया। इन खबरों से तिलमिला उठकर बीजापुर के राजा अलिशाह ने शिवाजी के पिता शाहजी को बाजीराव घोरपडे और जसवंत-

1. मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण - इन्द्र विद्या वाचस्पति-पृ.117
द्वितीय सं.1957

राव की सहायता से कैद कर लिया। उसे काली कोठरी में बन्दी के रूप में रखा गया। यह घटना इतिहास सम्मत है।[1]

<u>कोंडदेव की मृत्यु</u>

दादाजी कोंडदेव द्वारा शिवाजी को स्वराज्य साधना की प्रेरणा न मिलना, और दादाजी का विष खाने की घटनाओं का समर्थन ग्राण्ड डफ ने किया है।'[2] प्रेमी ने कोंडदेव के विष खाने की घटना की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिए नाटक की भूमिका में यदुनाथ सरकार के शब्दों को उद्धृत किया है।'[3]

इतिहास की साधारण पाठ्य पुस्तकों में बताया जाता है कि शिवाजी ने स्वराज्य की प्रेरणा दादाजी कोंडदेव से प्राप्त की थी। प्रेमी की राय में शिवाजी पर दादाजी कोंडदेव से भी बढ़कर जीजाबाई का प्रभाव दीख पड़ता है। कुलकर्णी,[4] जस्टिस रानडे[5] जैसे

- -

1. ग्राण्ड डफ लिखित मराठों का इतिहास- अनु: कमलाकर तिवारी- पृ.9।

2. वही -'- पृ.86-87

3. Tarikh-i-Shivaji (Persian) says that in utter disgust at Shivaji's waywardness, Dadaji took poison when Shivaji was 17 year's old" - Shivaji and his times", Jadunath Sarkar, p.31.

4. It is impossible to exaggerate the influence exercised by Jijabai on young Shivaji . . . . He (Dadaji) was honest, able, and industrious and evinced deep interest in his ward. It was of course impossible for this astute Brahmin to guide his ward deliberately along the path of revolt against the prevailing orders". - Heroes who made History, V.B. Kulkarni pp.68-69.

5. Rise of the Maratha Power, Mahadeo Govinda Ranade, pp.28-29.

इतिहासकारों ने भी लिखा है कि शिवाजी पर उनकी माँ का प्रभाव ही अधिक था।

आबाजी सोनदेव द्वारा कोंकण के सूबेदार मौलाना अहमद की रूपवती पुत्र वधू को शिवाजी के सामने प्रस्तुत करना, शिवाजी का, आबाजी को इस कृत्य पर प्रताडना, उस स्त्री को माता का सम्मान देकर वापस भेजने की व्यवस्था करना - इन घटनाओं में इतिहासतत्व का पूरा समावेश है।[1] जीजाबाई ने शिवाजी की परीक्षा लेने के लिए सोनदेव से ऐसा करने को कहा था, यह लेखक की अपनी कल्पना है, जिससे शिवाजी के चरित्रांकन में सहायता मिलती है।

अफजलखाँ का वध:-

अफजलखाँ तथा शिवाजी की भेंट, अफजलखाँ द्वारा विवाद बढ़ाकर शिवाजी को उत्तेजित करना, शिवाजी द्वारा अफजलखाँ के पेट में कृपाण भोंकना, शम्भुजी कावजी का अफजलखाँ का सिर लेकर आना इन घटनाओं का विवरण इतिहासकारों[2] ने जिस ढंग से प्रस्तुत किया है, उसी ढंग से, कहीं तो और भी कुछ मनोरंजक रूप में प्रेमी ने अपने नाटक में उपस्थित किया है।[3]

शिवाजी का पन्हालगढ़ से निष्क्रमण, फजलखाँ द्वारा

1. Heroes who made History, V.B. Kulkarni, p.73.

2. औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ० 191-192
India since 1526, V.D. Mahajan, p.174.
मुगलकालीन भारत - डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - पृ० 43।

3. शिवासाधना - दूसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ० 57-60

शिवाजी का पीछा किया जाना, बाजी देशपाण्डे द्वारा फजल मोहम्मद का मार्ग अवरुद्ध करना, बाजी देशपाण्डे की मृत्यु आदि घटनाएँ इतिहास से मेल खाती है। [1]

शिवाजी पर हमला करने के लिए शाइस्तखाँ को भेजना, उसका पूना के लाल किले में ठहरना, शिवाजी और उनकी सेना का बारात बनाकर पूना में प्रवेश तथा शाइस्तखाँ पर रात्रि में आक्रमण, शाइस्तखाँ का अँगूठा काटना, बाद में भागना, शाइस्तखाँ के पुत्र की मृत्यु, किसी बन्दिनी द्वारा दीपक बुझाना आदि घटनाएँ इतिहास के अनुसार है। [2]

शिवाजी का सूरत लूटना, [3] औरंगजेब की, जयसिंह को जीवित पकड़कर लेने की, आज्ञा देना, [4] जयसिंह द्वारा सन्धि प्रस्ताव स्वीकार करना [5] आदि घटनाएँ प्रामाणिक है। जयसिंह के अनुरोध पर

---

1. ग्राण्ड डफ लिखित मराठों का इतिहास - पृ॰ 109'110
2. मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ॰ 433-434
   India since 1526, V.D. Mahajan, p.175.

   औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ॰ 195-196
   The Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.406.
3. India since 1526, V.D. Mahajan, p.175.
   औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ॰ 197-198
   मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ॰ 434-435
4. वही पृ॰ 435-436
   औरंगजेब - सरकार पृ॰ 199-202
5. वही पृ॰ 202-203
   मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ॰ 437-438

शिवाजी का आगरा में औरंगजेब से मिलने के लिए जाना निम्न पदाधिकारियों के बीच औरंगजेब द्वारा खड़ा करने की व्यवस्था से शिवाजी का क्रुद्ध होना, रामसिंह का शिवाजी को दरबार से बाहर ले जाना भी ऐतिहासिक है।[1] हीरोजी का शिवाजी की चारपाई पर सो जाना तथा शिवाजी का पुत्र सहित मिठाई के टोकरे में बैठकर बंदीगृह से निकल जाना,[2] औरंगजेब का रामसिंह पर संदेह होना, तथा उसे पदमुक्त करना,[3] माता जीजाबाई के अनुरोध पर तानाजी का अपने पुत्र के ब्याह की तैयारियाँ छोड़कर सिंहगढ़ हस्तगत करने का प्रस्थान, उदयभानु तथा उनके सभी लड़कों को तलवार से शिकार बनाकर स्वयं वीरगति प्राप्त होना,[4] ये घटनाएँ भी इतिहास के साक्ष्यों के आधार पर है। महावतखाँ के नेतृत्व में मुगल सेना का शिवाजी पर आक्रमण, जीत की कोई आशा न देखकर युद्धभूमि से औरंगाबाद के लिए कूच करना,[5] शिवाजी का सिंहासनारूढ़ होना,[6] इतिहास से मेल खानेवाली घटनाएँ है।

---

1. औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 204-206
   India since 1526, V.D. Mahajan, p.176.
   मुगलकालीन भारत - श्रीवास्तव - पृ. 440-441
2. ग्राण्ड डफ लिखित मराठों का इतिहास - पृ. 128
3. मुगलकालीन भारत - श्रीवास्तव - पृ. 443
   औरंगजेब - सरकार - पृ. 209
4. Heroes who made history, V.B. Kulkarni, pp.81-85.
   मुगलकालीन भारत - श्रीवास्तव - पृ. 444
5. औरंगजेब - सरकार - पृ. 216-217
6. India since 1526, V.D. Mahajan, p.177.

नाटक में प्रेमी ने औरंगजेब की पुत्री जेबुन्नीसा को शिवाजी की ओर आकृष्ट होते हुए दिखाया है। इस विषय के संबंध में इतिहासकारों के बीच मतभेद है। मराठा इतिहासकार श्री केलुसकर की मराठी पुस्तक के आधार पर एन.एस.तकाखव ने अपनी पुस्तक में लिखा - - - '' शिवाजी के दरबार में जाने पर कौतूहलवश दरबार की स्त्रियाँ उन्हें पर्दे के पीछे से देखने आयीं। उनमें औरंगजेब की अविवाहिता पुत्री जेबुन्नीसा भी थी। शिवाजी की वीरता की कहानियाँ राजकुमारी को पहले ही आकर्षित कर चुकी थीं। एक दृष्टि से वह शिवाजी को प्रेम करने लगी थी। उसने प्रण किया था कि या तो वह शिवाजी से शादी करेगी या जन्मभर अविवाहित रहेगी।(1) प्रो. सरकार ने 'स्टडीस इन मुगल इंडिया' में जेबुन्नीसा का शिवाजी के प्रति आकर्षण को गलत साबित किया है। इसके संबंध में प्रेमी को यही कहना है, " किसी बादशाह की पुत्री के मन का चित्रण करने की इतिहासकारों को प्रायः आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती, और जो बात हृदय में छिपाकर रखनी होती है वह इतिहासकारों तक पहुँचे भी कैसे? " [2]

नाटक में यमुना, अक्काबाई, सलीमा, मसीदबी, नारसिंह आदि ऐतिहासिक पात्र नहीं। अक्काबाई का गाँव गाँव में घूमकर लोगों को स्वातंत्र्य युद्ध के लिए प्रेरित करना नाटकीय अनिवार्यता के रूप में है। काल्पनिक पात्रों की उपस्थिति से ऐतिहासिक भावना को कोई हानि नहीं पहुँचती।

- -

1. शिव साधना - प्रेमी - अपनी बात - पृ.9-10

2. वही पृ.8-9

प्र ति शो ध

=X=X=X=X=X=X=X=

बुंदेलखण्ड के वीर चंपतराय का संघर्षमय जीवन, देश की स्वाधीनता रक्षा के प्रयत्न में उनका अमर बलिदान, उनके साधनहीन और दाने दाने को मुहताज अल्पवयस्क पुत्र छत्रसाल एवं बलशाली सम्राट औरंगजेब में घोर संघर्ष, छत्रसाल की विजय, बुन्देलखण्ड से विदेशी शासन का उन्मूलन, आदि घटनाएँ नाटक में प्रस्तुत की गई है ।

चंपतराय के बड़े लड़के सारवाहन की मृत्यु

नाटक के प्रारंभ में प्राणनाथ प्रभु विन्ध्यावासिनी देवी के मंदिर में अकेले विचार कर रहे है कि लालकुंवरी एक वर्ष के बालक छत्रसाल को लेकर प्रवेश करती है। उनका पति चंपतराय उस समय शत्रु के घेरे में था। लाल कुंवरी को दृढ विश्वास है कि अपना पुत्र छत्रसाल जन्मभूमि का बन्धन काटने में सफल होगा। इस बात पर विश्वास करने का कारण वह बताती है। जब कि शाहजहाँ के सरदार बाकी खाँ अपनी फौज के साथ हार कर जा रहा था उस समय चंपराय के बड़े लड़के सारवाहन से वह मिला । बाकी खाँ ने उस पर आक्रमण कर दिया । चौदह वर्ष के इस बालक ने अकेले ही बाकी खाँ की सेना से लोहा लिया। बालक होते हुए भी उसने बुंदेलों का नाम नहीं लजाया। सैकड़ों को मौत के घाट पर उतारकर उसने वीर गति पाई। (1)

हरदौल की कसम / कथा

नाटक के पहले अंक के दूसरे दृश्य में वर्णित

1अ) बुन्देलों का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृ.141, प्रथम संवत् 1990

ब) Heroes who made History, Chattrasal, V.B. Kulkarni, p.129.

हरदौल की कथा एवं बुन्देलखण्ड में उसके चबूतरों के जगह जगह बने होने का तथ्य ऐतिहासिक है। " [1] घटना इस प्रकार है - ओड़छा के महाराजा पहाड़सिंह के बड़े भाई जुझारसिंह के सौतेले छोटा भाई था हरदौल सिंह। जुझारसिंहकी पत्नी हरदौल को सगी बेटे की तरह मानती थी, हरदौल उसे सगी माँ की भाँति। राजा को अपनी पत्नी और भाई के रिश्ते में शंका हुई। महाराजा ने अपनी पत्नी के सतीत्व पर प्रहार किया और उसका प्रायश्चित्त करने के लिए हरदौल को अपने हाथ से जहर पिलाने की आज्ञा दी। महारानी ने सारी बातें हरदौल से कह दीं। हरदौल ने तत्क्षण विष की प्याली मुँह से लगा ली और अपना प्राण निछावर कर दिया। बुन्देलों के यश की रक्षा उसने की। बुन्देलों के हृदय में एक बार किसी के प्रति सन्देह हो जावे तो वह उसकी जान लेगा या अपनी दे देगा, इसी विशेषता का समर्थन करने के लिए इस घटना को रखा गया है।

भीमसिंह की मृत्यु :- बुन्देलखण्ड को विदेशी सत्ता से मुक्त कराने के चंपतराय के शुभ कार्य में साथ देने के लिए ओड़छा का महाराणा पहाड़सिंह तैयार हो जाता है। बुन्देलखण्ड में चंपतराय और उसकी पत्नी लाल कुँअरी का जो मान हो रहा था उससे पहाड़सिंह की पत्नी हीरादेवी ईर्ष्यालु है, चंपतराय और लाल कुअरी का यश ओड़छे की राजशक्ति से उच्च स्थान पावे, यह हीरादेवी सहन नहीं कर सकती है। वह चंपतराय को विषमिश्रित भी भोजन देने का षडयन्त्र करती है। लेकिन चंपतराय के भाई भीमसिंह को विजया द्वारा इस षडयन्त्र का पता मिलता है और वह विष मिला हुआ अन्न थाल स्वयं ले लेता है और देश की स्वाधीनता के रक्षक के प्राणों की रक्षा अपना प्राण देकर करता है। यह प्रसंग नाटक में तथ्यपूर्ण है। इति-

---

1. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृ० 145

हास के साथ आदर्श की स्थापना भी इससे होती है।

चंपतराय तलवार के जोर कंधार प्रदेश मुगलों को जीत लिया। जिसके बदले में शाहजहां ने उन्हें कौंच की जागीर दी । पहाड़सिंह ने अब यह जागीर चंपतराय से लेने का प्रयत्न किया था। ऐसा ही इतिहास में वर्णित है।(1) हीरादेवी ने पहाड़सिंह को यह कार्य करने के लिए प्रेरित किया, ऐसा मानना प्रेमी की कल्पना हैजिसके द्वारा हीरादेवी की महत्वाकांक्षा को प्रस्तुत करते है । पहाड़सिंह को दारा को तीन लाख देने का वचन देकर जागीर मांगी। दारा ने लालच में आकर पहाड़-सिंह को यह जागीर दे दी। उसी समय औरंगजेब ने दारा के विरुद्ध चंपत-राय से सहायता मांगी। चंपतराय दारा से बदला लेना चाहते थे, इसलिए उन्होंने औरंगजेब की सहायता करना स्वीकार किया। ये घटनाएं इतिहास सम्मत है । (2) इन घटनाओं को लेकर प्राणनाथ प्रभु और लाल कुंअरी में जो वार्तालाप हुआ वह कथानक में तीव्रता उत्पन्न करानेवाले संघर्ष के तत्वों से युक्त है। औरंगजेब और चंपतराय में फिर कुछ अनबनी हुई। औरंगजेब ने चंपतराय को कुछ हुकुम दिया कि वे इलाहाबाद में शुजा से लड़ने जाएं । चंपतराय ने जाने से इनकार कर दिया। चंपतराय का औरंगजेब के साथ बिगड़ने का असली कारण चंपतराय की स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की इच्छा थी।' 3 अन्त में चंपतराय ने औरंगजेब की दी हुई सनदें और शस्त्र वापस कर दिए और साफ तौर से औरंगजेब से उसकी अधीनता में रहने

---

1. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृ. 156

2. Heroes who made history, Chatrasal, V.B. Kulkarni, p.129.

3. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृ. 159

से इनकार कर दिया। (1)

नाटक में दिखाया गया है कि चंपतराय के [illegible] इनकार करने पर औरंगजेब उसे बन्दी बनाना चाहते हैं। पर उस समय लाल कुंवरी दरबार में प्रवेश करती है, अपने पति को निकाल लाती है। इतिहास में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। डा० धनंजय की राय में यह चित्रण जितना अनैतिहासिक है उतना ही असंभाव्य भी है।'[2] यह प्रसंग अनैतिहासिक ही सही, लेकिन इसे पूर्ण रूप से असंभाव्य नहीं कहा जा सकता। प्राणनाथ प्रभु ने लाल कुंवरी को समझाया था कि चंपतराय को परावलंबी होकर औरंगजेब की कृपा से कुछ की जागीर नहीं प्राप्त करनी है, बल्कि बाहुबल से तलवार की ताकत से स्वावलंबन के पथ पर चलकर संपूर्ण बुन्देलखण्ड को स्वतंत्र करना है। इस उपदेश से प्रभावित होकर वह दरबार की ओर प्रस्थान करती है। औरंगजेब के दरबार में निर्भय होकर आने का साहस लाल कुंवरी में नहीं है, ऐसा मानना गलत है। जैसे उसके शब्दों से ही स्पष्ट है -- "जिसने समरभूमि में आपके साथ रहकर गर्भ अवस्था में भी घोड़े की पीठ पर सवार होकर शत्रु के सिरों के साथ खेल खेला है, वह दिल्ली के दरबार में औरंगजेब के सामने आने में क्या संकोच करती है?"[3] उसके ये शब्द इतिहासकार के शब्दों से मेल खाते हैं।[4]

चंपतराय एवं लाल कुंवरी की मृत्यु :-

औरंगजेब के दरबार से चले जाने के बाद चंपतराय

---

1. Heroes who made history, Chhatrasal, V.B. Kalkarni, p.129.
2. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा० धनंजय - पृ० 337
3. प्रतिशोध - पहला अंक - छठा दृश्य - पृ० 45
4. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृ० 163

एवं लाल कुंअरी का शत्रुओं से घिरे रहना, उनकी यह प्रतिज्ञा लेना कि शत्रु के हाथों से मरने की अपेक्षा अपना प्राण स्वयं लेना है, आदि इतिहास सिद्ध घटनाएँ हैं।'[1] इतिहास के अनुसार दोनों ने अपने अपने पेट में कटार मार ली। लेकिन इस प्रसंग में किंचित् परिवर्तन लाए। लाल कुंअरी ने चंपतराय की प्रार्थना के अनुसार उसका मान रखने के लिए पहले उसपर तलवार का वार करती है। बाद में अपने पेट में तलवार भोंक कर गिर पड़ती है। ऐसा परिवर्तन करने से नाटक के कथानक में तीव्रता आई है।

छत्रसाल की युद्ध के लिए तैयारियाँ

माता पिता की मृत्यु के पश्चात् छत्रसाल के पास न धन था, न सेना थी। उनकी सहायता करने के लिए कोई न था। उनके काका सुजानसिंह भी दिल्ली के बादशाहों के विरुद्ध आवाज उठाने से डरते थे।'[2] लेकिन उत्साही युवक छत्रसाल ने धैर्य न छोड़ा। छत्रसाल एवं उसके भाई आनंदराय दोनों एकमत होकर मुसलमानों से युद्ध करने और देश जीत लेने का प्रयत्न करने लगे। उसने अपनी माता का जेवर बेचकर सेना एकत्रित किया। आगे वे दोनों मुगलों के सेवक बन गये। देश के साथ द्रोह करने वे शत्रु के डेरे में नहीं गए। उनके दिल्ली जाने में कुछ गुप्त अभिसंधि छिपी थी। मुगल सेना में रहकर उसने अपनी युद्ध नीति बहुत कुछ देख और समझ ली। देवगढ़ के राजा के विरुद्ध जयसिंह ने जो लड़ाई की उसमें जयसिंह का साथ दोनों ने दिया।[3] जयसिंह ने उन्हें मुगल सेना में स्थान दिया। तुरंत ही औरंगजेब ने जयसिंह को वापस बुला लिया।

---

1. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृ. 161-162
2. वही पृ. 161-162
3. मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ. 387
औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 384

और बहादुरखाँ पर उस आक्रमण का भार सौंप दिया। बहादुरखाँ चंपतराय का गाढ़ मित्र था। बहादुर को दोनों से पुत्रवत् स्नेह था। जब सेना आगे बढ़ रही थी तब एक राजपूत सरदार ने छत्रसाल के गले पर तलवार मारी। मुगल उन्हें उसी रूप में छोड़कर चले गए। उनके विश्वासी घोड़े ने उनकी रक्षा की।' [1] इन ऐतिहासिक घटनाओं को नाटक में प्रभाव के रूप में रखा गया है।

छत्रसाल की शिवाजी से भेंट

देवगढ़ के युद्ध के पश्चात् मुसलमानों के व्यवहार से छत्रसाल बहुत असंतुष्ट हो गए। उनके मन में शिवाजी की स्वतंत्रताप्रियता के प्रति पहले ही श्रद्धा थी। उसने शिवाजी की सहायता से मुगलों का साम्राज्य नष्ट करने के उद्देश्य से भीमा नदी के तट पर उनसे भेंट की थी। छत्रसाल की लगन निर्भयता और दृढ़ता से प्रसन्न होकर शिवाजी ने उन्हें बहुमूल्य उपदेश दिए, मुगलों को बुन्देलखण्ड से मार भगाने की प्रेरणा दी, जरूरत पड़ने पर सहायता देने का वचन भी दिया। उसके पश्चात् शिवाजी ने अपनी तलवार भी उसे भेंट की। यह प्रसंग ऐतिहासिक दृष्टि से सही है।' [2]

छत्रसाल एवं औरंगजेब में संघर्ष

छत्रसाल का बुन्देलखण्ड में आकर सेना एकत्रित करके स्वाधीनता की सफलता के लिए प्रयत्न करना, बुन्देलखण्ड के निवासियों का उनका साथ देना, उनके काका सुजानसिंह को पुरानी ईर्ष्या-द्वेष को छोड़कर

---

1. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृ. 169-170
2. वही पृ. 177
मुगलकालीन भारत श्रीवास्तव - पृ. 397
औरंगजेब यदुनाथ सरकार - पृ. 384

देश की स्वाधीनता के लिए प्राणोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा करना तथ्यपूर्ण घटनाएँ है। [1]

औरंगजेब ने बुन्देलों को दबाने के लिए ग्वालियर के सूबेदार फिदाखाँ को हुक्म दिया। फिदाखाँ ओड़छा के रामराजाजी मंदिर पर हमला करने के लिए आ रहे थे। बकीखाँ को इस बात का पता मिला तो उसने छत्रसाल का साथ देने का वचन दिया। उसने अपनी जान देकर भी मंदिर की रखवाली करने की प्रतिज्ञा की।

छत्रसाल और साथियों ने फिदाखाँ को हराकर धंधेरखण्ड के कुंअर सेन पर हमला करके उसे गिरफ्तार कर लिया। औरंगजेब ने फिर रणदूलखाँ को छत्रसाल का सिर कुचलने के लिए भेजा। रणदूलखाँ के आगमन के भी पहले ही छत्रसाल ने देशद्रोहियों को समाप्त किया। जब रणदूलखाँ तीस हजार की सेना और तोपों को लेकर बुन्देलखण्ड पर चढ आया तो उससे खुले मैदान में लोहा लेने का संकटमय कार्य अकेला उसने अपने हाथ में ले लिया। छत्रसाल ने शत्रु सेना पर पीछे से आक्रमण कर लिया। प्रथम बार बुन्देलखण्ड ने मुगलों की बड़ी संगठित सेना से खुले मैदान में सामना करके विजय प्राप्त की। रणदूलखाँ पराजित होकर सागर की ओर भाग गये। आगे चलकर छत्रसाल द्वारा किए गए युद्ध एवं स्वतंत्रता की प्राप्ति इतिहास के मिसाल है। बकीखाँ द्वारा छत्रसाल की सहायता दिखाकर प्रेमी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के अपने बहुचर्चित आदर्श का प्रत्यक्षीकरण कराया है।

नाटक के अन्तिम दृश्य में छत्रसाल की शादी की

---

1. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरेलाल तिवारी - पृ. 181
मुगलकालीन भारत - श्रीवास्तव - पृ. 397

तैयारियाँ दिखाई गई है । उसी अवसर पर तव्वर खाँ ने उस गाँव को घेर लिया। छत्रसाल की हत्या की तैयारी का पता बलदिवान को मिला । उसने तव्वर खाँ का रास्ता रोक दिया, विवाह की तैयारी में विघ्न न उपस्थित होने के लिए शत्रु से लोहा लिया। इस प्रयत्न में बलदिवान की प्रेमिका विजया ने अपने प्राण खो दिये। अन्त में छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड की स्वाधीनता के लिए शत्रु मुगल शासकों से अपमान का पूरा पूरा प्रतिशोध लिया । सारे बुन्देलखण्ड ने छत्रसाल को जयमाला पहनाकर उसका अभिनंदन किया।

वातावरण

बुन्देलखण्ड के जिस सामन्ती युग और जीवन का चित्र इन्होंने प्रस्तुत किया, वह अपनी संपूर्ण विशेषताओं सहित नाटक में अंकित हुआ है। जरा जरा सी बातों पर तलवारों पर खिंच जाना, भीषण युद्धों का होना, आदि सामन्तीय जीवन की विशेषता थी, उनकी योजना से नाटककार ने वातावरण उपस्थित करने में सफलता प्राप्त की है।

=X=X=X=X=X=X=X=X=X=

आन का मान

राजस्थान के मुगलकालीन इतिहास के अमर वीरवर दुर्गादास राठौर के व्यक्तित्व के उज्वलतम रूप को प्रेमी ने 'आन का मान' में चित्रित किया है। ऊँचे दर्जे के उस मनुष्य में जो मानवता थी, जो उदात्तता थी, उनके पास जो स्नेह और सहानुभूति से भरा हुआ हृदय था, उसीका परिचय प्रेमी ने दिया है।

अकबर भारत से ईरान की ओर प्रयाण करते समय अपनी नवजात पुत्री सफियतुन्नीसा और शाहजादा बुलन्द अख्तर को मारवाड मे दुर्गादास के हाथों मे सौंप गया था। दुर्गादास ने दोनों बच्चों को अपने मित्र की पवित्र धरोहर के रूप में रखा। इन बच्चों ~~को दुर्गादास ने अपने मित्र की पवित्र धरोहर के रूप में रखा~~ । उन्हें अपने बच्चे की तरह पाला, उन्हें सारे मुस्लिम धर्म ग्रंथों की शिक्षा दिलायी। ईरान जाते समय दुर्गादास ने औरंगजेब से कहा कि सफियतुन्नीसा के विवाह योग्य बनने पर उसे औरंगजेब के पास पहुंचा देना चाहिए। जब शाहंजादी की उम्र विवाह के योग्य हुई तब औरंगजेब को उसे प्राप्त करने की चिंता हुई, क्यों कि वे जानते थे कि मुगल राजवंश की इज्जत दुर्गादास के पास धरोहर है। शाहजादी सफियतुन्नीसा बच्ची नहीं रह थी और महाराजा अजीतसिंह जवान हो चुके थे। औरंगजेब का संदेहशील हृदय दो जवान हृदयों पर विश्वास करने को प्रस्तुत नहीं था। उनके सामने शाही मुगल खानदान की इज्जत का ख्याल था। उसे भय था कि अजीतसिंह के हाथों मे मुगल शाहजादी का सम्मान सुरक्षित नहीं। उसने दुर्गादास से शाहजादा बुलन्द अख्तर और सफियतुन्नीसा की माँग की। ईश्वरदास को मारवाड के मुगल सूबेदार शुजाअत खाँ के पास भेजा। शुजाअतखाँ ने ईश्वरदास को दुर्गादास के पास भेजा। दुर्गादास इस बात से अवगत थे कि अजीतसिंह सफियतुन्नीसा के प्रति आकृष्ट है। वे जानते थे कि अजीत और सफियत की घनिष्ठता को राजपूत स्वीकार नहीं करेंगे। राठौर राजवंश स्वभाव से हठी रहा था। और राजपूत सामन्त भी चिरकाल से चली आयी परंपराओं के पक्षपाती थे। परिणाम होता अंतः कलह। दुर्गादास ने अजीतसिंह को उपदेश दिया था कि राजपूती गौरव की उज्ज्वल चादर पर दाग मत पडने दो। लेकिन जो प्रेम से अंधा बना था, दुर्गादास की बातें मानने के लिए तैयार नहीं था। जिस अजीतसिंह को दुर्गादास ने अपने पुत्र से बढकर माना, जिसके लिए उसने अपने

दो पुत्रों के शीश कटवाये - जिसके लिए वे बीस साल से मुगलों से लडते लडते, एक रात भी सुख की नींद नहीं सोये, उसी अजीतसिंह से अपमानित होकर भी दुर्गादास ने शाहजादी को औरंगजेब के हाथ सौंप दिया। कुपित होकर अजीतसिंह ने उन्हें निर्वासित कर दिया। लेकिन दुर्गादास तनिक भी विचलित न हुए। प्रेम के उन्माद में अजीतसिंह राजपूती आन को भूल गए। लेकिन दुर्गादास तो आन का मान रखना नहीं भूले। यही दुर्गादास की मानवता का उज्वल रूप था। प्रेमी ने दुर्गादास के इसी उज्वलतम रूप का चित्रण किया। नाटक का मूल कथानक भी इसी पर केन्द्रित है जिसके लिए पर्याप्त ऐतिहासिक आधार है।" ।

सफियतुन्नीसा को औरंगजेब के पास न भेजने देने के अजीतसिंह के निश्चय के विरुद्ध दुर्गादास का संघर्ष कथानक में तीव्रता उत्पन्न करता है। अजीतसिंह और सफियतुन्नीसा का परस्पर आकर्षण इतिहास सम्मत है। उनमें जो वार्तालाप चलता है वह नाटक में रोमांटिक वातावरण उत्पन्न करता है।

नाटक में प्रसंगवश मारवाड़ और औरंगजेब की के दीर्घ अवधि तक चलनेवाले संघर्ष और औरंगजेब की भी जीवनव्यापी गतिविधियों की चर्चा हुई है।

औरंगजेब के पंद्रह वर्ष की उम्र में मतवाले हाथी से युद्ध करने की घटना ऐतिहासिक है। 2

संभाजी की हत्या

संभाजी की आँखों का निकाला जाना, उसका मुँह

---

1. औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 356
   भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस.आर.शर्मा - पृ.
2. औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 10

खाल काढे - उसके गले में घंटियाँ बाँधकर ऊँट के ऊपर बिठाकर उसे विशालगढ से बहादुर गढ तक लाया जाना, बहादुर गढ में मुगल सेना के डेरों में पैदल घुमाया जाना, उसके बाद उसका वध किया जाना, संभाजी का मंत्री कवि कलश की जीभ काट देना ऐतिहासिक घटनाएँ है। (1)

एक बार शाहजहाँ को औरंगजेब को चेतावनी

शाहजहाँ ने जो चेतावनी दी थी उसके संबंध में औरंगजेब का कथन है कि 'अब्बाजान ने हमें चेतावनी दी थी कि उनकी बारी आने पर हमारे बेटे भी हमसे वैसा ही व्यवहार करेंगे जैसा हमने अपने अब्बाजान से किया था। तब हमने बडे गर्व और दृढता से कहा था, - खुदा की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं होता। जिस दुर्भाग्य का आपने उल्लेख किया है वह मेरे पूर्वजों को सता चुका है। यदि यही खुदा की इच्छा होगी तो मैं किस प्रकार इससे बच सकूँगा? अपनी नीयत के अनुसार ही प्रत्येक व्यक्ति को फल मिलता है। मुझे इस बात का है पक्का विश्वास है कि मेरी नीयत पूरी तरह साफ है। इसलिए मुझे भरोसा है कि मुझे अपने लडकों से सद्व्यवहार ही मिलेगा। [2]

यदुनाथ सरकार के विवरण से हमें उपर्युक्त घटना की ऐतिहासिकता का पता मिलता है। [3] प्रेमी का विवरण ऐतिहासिक तो सही, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमी ने सरकार के वर्णन को दुहराया

---

1. The Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.421.
   औरंगजेब - सरकार पृ. 288
2. आन का मान - प्रेमी - पृ. 59-60
3. औरंगजेब - सरकार - पृ. 111

थी ।

<u>औरंगजेब की वसीयत</u>

औरंगजेब ने अपनी बेटी जीनत उन्नीसा से जो वसीयत लिखवायी उसमें सूचित ६: आदेशों का प्रेमी ने नाटक में उल्लेख किया है " [1] हामिदुद्दीन खान बहादुर कृत ' अहकाम - ई - आलमगीरी' में औरंगजेब का कहा जानेवाला एक वसीयतनामा दिया गया है । इस ग्रंथ का मूल भाग तथा अनुवाद यदुनाथ सरकार ने 'एनेकडोट्स आफ औरंगजेब ' नाम से प्रकाशित किया है। औरंगजेब ने बारह आदेशों से ही वसीयत को समाप्त किया था। ' [2]

औरंगजेब की संकीर्ण साम्प्रदायिकता एवं साम्राज्य विस्तार की नीति ने राजस्थान, दक्षिण और भारत के विभिन्न प्रदेशों में, युद्ध की जो भयानक ज्वाला भड़का दी थी, उससे देश की जनहानि के साथ ही सुख-समृद्धि , खेती-बारी, व्यापार-व्यवसाय, कला-कौशल आदि सबका किस प्रकार विनाश हुआ इसकी तस्वीर भी प्रेमी ने खींची है। औरंगजेब के शब्दों में ही सुनिए - 'हमने खुद अपनी आँखों से देखा है कि दक्षिण की लड़ाइयों में प्रतिवर्ष एक लाख मनुष्य और हाथी, घोड़े, ऊँट , बैल आदि मिलाकर तीन लाख पशु मरते रहे हैं । जब गोलकुण्डा में अकाल पड़ा तो सतहत्तर कोसों तक मुर्दों के ढेर से दीख पड़ते थे। ' [3]

नाटक के सभी पात्र - दुर्गादास, राठौर, औरंगजेब , अजीतसिंह, बुलन्द अख्तर, शुजायतखाँ, मुकुन्ददास, सेवादास ,

1. आन का मान - प्रेमी - पृ. 69-71
2. औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 349-352
3. आन का मान - पृ. 83

सफ़ियतुन्नीसा, जीनतुन्नीसा, मुहरुन्नीसा, ऐतिहासिक है । नाटक में घटनाएँ बहुत कम हो है । दुर्गादास के व्यक्तित्व के उज्वलतम रूप का चित्रण करना नाटककार का प्रमुख उद्देश्य है जिसकी पूर्ति में उसने सफलता पाई है।

इतिहासकार टाड ने दुर्गादास को राठौरों का युलीसिस कहा है। ' [1] राजपूत लोग आज भी उसको अपने शूरत्व का अवतार कहकर स्मरण करते हैं । इतिहासकारों की अपेक्षा प्रेमी ने दुर्गादास के चरित्र को अधिक सजीवता से अंकित किया। उसे एक बड़ा वीर, साहसी, विश्वसनीय कहा। दुर्गादास का दृष्टिकोण विशाल था । उनके सामने पिता और पुत्र के नाते से भी बढ़कर एक बड़ा नाता था - मानवता का। दुर्गादास ने धोखे की लड़ाई कभी नहीं लड़ी। सत्य बात कहने में वह कभी नहीं चूके, लोभ उन्हें गुलाम नहीं बना सका। मृत्यु उन्हें डरा नहीं सकी। स्वाभिमान को बेचकर जीवित रहना उनके लिए मृत्यु के समान था । इसलिए वे कहते हैं - - ' जब तक मारवाड़ को दुर्गादास की आवश्यकता थी, उसने जीवित रहने का यत्न किया। लेकिन स्वाभिमान को बेचकर नहीं । क्यों कि स्वाभिमान को बेच देना ही वास्तविक मृत्यु है। स्वाभिमान को जीवित रखते हुए मर जाना अमर हो जाना है। '[2]

दुर्गादास की वीरता और दृढ़ता का औरंगजेब भी कायल है। औरंगजेब कहते हैं - 'हमें जाननेवाला केवल एक व्यक्ति है और वह है दुर्गादास। शिवाजी से हम कभी भयभीत नहीं हुए। शंभाजी हमारे सामने बच्चा था, बेचारे का बहुत बुरा अन्त हुआ, लेकिन देखो यह दुर्गा

---

1. भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस. आर. शर्मा - पृ. 534 से उद्धृत
2. आन का मान - प्रेमी - पृ. 78

दुर्गादास हमारे सामने कैसा निर्भीक और निर्भीक और निर्भय खड़ा है। ध्रुवतारे की भाँति स्थिर। पर्वत की भाँति अडिग।'[1]

वातावरण

देशकाल तथा वातावरण के चित्रण की दृष्टि से प्रेमी ने इस नाटक में पर्याप्त सफलता पाई है। औरंगजेब के अत्याचारों, उनकी धार्मिक नीति, हिन्दू धर्म के प्रति उनकी असहिष्णुता आदि के नियोजन से तत्कालीन वातावरण उभारा है।

=x=x=x=x=x=x=

वि दा

औरंगजेब की आक्रमक नीति के कारण मुगल साम्राज्य की सीमाओं के विस्तार के साथ वह भीतर से खोखला होता जा रहा था। इस बात को औरंगजेब के सगे संबंधी भी अनुभव करने लगे थे। उनके पुत्र अकबर और पुत्री जेबुन्निसा ने औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह की आवाज उठाई। प्रस्तुत नाटक में शाहजादा अकबर के इसी प्रयास का चित्रण है।

जसवन्तसिंह राठौर, उनके पुत्र पृथ्वीसिंह की मृत्यु :-

जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह राठौर हमेशा औरंगजेब की आँखों में खटकते रहे। औरंगजेब की सेना का नेतृत्व करते हुए वे अफगानों के देश में मारे जाते हैं। औरंगजेब ने महाराजा जसवंतसिंह के राजकुमार पृथ्वीसिंह को जहरीली पोशाक पहनाकर सम्मान करने के बहाने इस

---

1. आन का मान - प्रेमी - पृ. 8।

संसार से बिदा कर दिया। ये घटनाएँ ऐतिहासिक है। [1] पृथ्वीसिंह के मर जाने के बाद जोधपुर की गद्दी का कोई अधिकारी न होने के कारण औरंगजेब का अमरसिंह के पोते को गद्दी पर बिठा देना इतिहास सिद्ध है। [2]

<u>जसवंतसिंह के पुत्र, पत्नी तथा दुर्गादास का, दिल्ली में औरंगजेब से टक्कर:-</u>

महारानी अपने पुत्र अजीतसिंह को औरंगजेब के हाथों में सौंप देने को तैयार न थी। जसवंमसिंह के मंत्री दुर्गादास ने औरंगजेब से निवेदन किया कि महारानी और राजकुमार को जोधपुर जाने की अनुमति दी जाए। लेकिन औरंगजेब माननेवाला न था। औरंगजेब ने दुर्गादास को पंचहजारी का मनसब देने का प्रलोभन दिया। लेकिन दुर्गादास धा दौलत के लिए धर्म का सौदा करनेवाला नहीं था। औरंगजेब ने एक मासूम बच्चे को पकड़ने के लिए तथा दो चार राठौर पर नजर रखने के लिए सहस्रों सैनिकों को नियुक्त किया और आज्ञा भी हुई कि एक भी हिन्दू को हवेली के बाहर न जाने दिया जाए। दुर्गादास ने राजकुमार की रक्षा का भार अपने विश्वस्त अनुचर कासिमखाँ पर सौंप दिया। कासिमखाँ ने फलों की टोकरी में रखकर राजकुमार की रक्षा की। मुगल सैना मुट्ठी भर राठौरों पर काबू न पा सके। जोधपुर के सामन्त रघुनाथ भट्टी, दुर्गादास एवं महारानी जी पुरुष वेष में थी, युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हुए। उसकी वीरता देखकर मुगल सैनापति दिलेरखाँ और तहव्वारखाँ चकित रह गए। अन्त में जोधपुरवाले बच कर निकल गए। राजपूत एवं मुगलों के बीच हुए संघर्ष नाटककार ने इतिहास के अनुसार रखे है। [3]

---

1. भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस.आर.शर्मा - पृ. 533
2. औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 155
3. वही पृ. 165-166

मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ. 391

कासिमखाँ का राजकुमार को पर्दा की टोकरी में लेकर उसकी रक्षा करने का प्रसंग काल्पनिक है, जो अस्वाभाविक नहीं लगता । लेकिन कासिमखाँ को रास्ते में मुगल सेनापतियों से अधिक समय तक बातें करते हुए दिखाया है। औरंगजेब की अन्यायपूर्ण शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालने के लिए प्रेमी ने यह वार्तालाप रखा है। प्रेमी, नाटक के अन्य किसी दृश्य में, औरंगजेब की शासन व्यवस्था का विवरण प्रस्तुत कर सकते थे। कासिम खाँ का एक कन्धे से बच्चे को शत्रुओं से बचाने के लिए ले जाते समय शत्रुओं के सेनापतियों से घंटों तक बातें बढाते हुए खड़ा रहना बिलकुल अस्वाभाविक है।

औरंगजेब की नीति

औरंगजेब द्वारा राजपूत राज्यों को मुगल साम्राज्य के सूबे बनाने का निश्चय, मुगल साम्राज्य में बसनेवाले प्रत्येक हिन्दू पर जजिया लगाया जाना, राजस्थान की सारी रियासतों में भी जजिया वसूल किया जाना इतिहास सम्मत बातें हैं। लेकिन औरंगजेब ने राजपूतों के निकल भागने का समाचार सुनने के बाद ऐसा निश्चय किया था, ऐसा मानना इतिहास विरुद्ध है। इतिहास के अनुसार औरंगजेब ने पहले ही, जसवंतसिंह की मृत्यु के तुरंत बाद ही, जजिया लगाया था।[1] जसवंतसिंह की महारानी का, राजकुमार को, मेवाड के महाराणा के शरण में रखना, एवं महाराणा का औरंगजेब को चुनौती देना प्रमाणिक घटनाएं हैं।[2]

औरंगजेब का मेवाड़ पर आक्रमण

मुगल सेना का, शाहजादा अकबर के नेतृत्व में उदयपुर, चितौड एवं अन्य सभी नगरों और दुर्गों पर अधिकार कर लेना, उदयपुर के मुख्य मंदिर, उदयसागर के तट के तीन मंदिरों, एवं चितौड के 63

---

1. The Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.417.
   औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 164-165
2. वही पृ. 167

मंदिरों का विध्वंस करना, मेवाड़ के गाँव के गाँव आग की भेंट कर देना तथ्यपूर्ण है। [1]

मेवाड़ में मुगलों की पराजय

मेवाड़ के महाराणा और परिवार आड़ावला पर्वतमाला की कठोर गोदी में भटकते हुए स्वतंत्रता यज्ञ की ज्वाला को प्रज्वलित करने लगे। राजकुमार भीमसिंह जिसने मेवाड़ से निर्वासन स्वीकार किया था विपत्ति के समय अपने देश की रक्षा के लिए सबसे पहले उपस्थित हुए। राजपूतों ने बहुत चालाकी से काम किया। मुगलों से लड़ते लड़ते वे दो पहाड़ियों के बीच के तंग मार्ग में जा घुसे, पहले ही उन्होंने दोनों ओर की पहाड़ियों पर भील सेना को छिपा रखा था जिनसे मुगल सेना पर तीरों की बौछार होने लगी। भीमसिंह अपनी सेना लिए पीछे की तरफ से मुगल सेना का मार्ग रोके खड़े थे। मुगल सेना को पूरी तरह पराजित होना पड़ा। राजकुमार भीमसिंह वीरता के साथ लड़ते हुए दुनिया से कूच कर गया। मुगलों की पराजय अवश्य ऐतिहासिक कही जा सकती है। [2]

सिक्ख गुरु सतनामी साधुओं एवं जाटों पर अत्याचार :-

सिक्खों के गुरु तेग बहादुर ने मुगलों से लोहा लेने का प्रयत्न किया, औरंगजेब ने उसे बंदी बनाकर इस्लाम स्वीकार करने की आज्ञा दी। आज्ञा का पालन न होने पर निर्दयतापूर्वक उसका वध किया गया। [3]

---

1. The Oxford History of India, Vincent A. Smith, p.418.

2. औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ.168-169

3. मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण - इन्द्र विद्या वाचस्पति - पृ.241-242

औरंगजेब ने मथुरा के मंदिरों का विध्वंस किया, सारा ब्रज विक्षुब्ध हो उठा। सतनामी साधुओं एवं जाटों के विद्रोह को निर्दयतापूर्वक दबा दिया गया। विद्रोही नेताओं को अमानुषिक कष्ट देकर वध किया गया। ये प्रसंग इतिहास के साक्ष्यों के आधार पर है। [1]

औरंगजेब का मेवाड़ पर पुनः आक्रमण

औरंगजेब ने तहव्वरखाँ और मुहम्मद अकबर के नेतृत्व में सत्तर हजार सैनिकों की सेना को मारवाड़ में, तथा मुहम्मद आजम और दिलेरखाँ के नेतृत्व में मेवाड़ में सेना को नियुक्त किया। जब मुगल सेना विश्राम करने को डेरा डालती थी राजपूत अचानक ही छापा मारकर हजारों को मौत के घाट उतारकर पहाड़ी घाटियों और जंगलों में अंतर्धान हो गये। मुगल सेना राजपूतों पर विजय न पा सकी। [2]

अकबर का विद्रोह

औरंगजेब की पुत्री जेबुन्नीसा का अपने भाई अकबर को बादशाह के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरणा देना, बेचारी का गिरफ्तार किले में रखना प्रमाणिक है। जिसका पता हमें औरंगजेब की आत्मकथा से मिलता है। [3]

1. औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 151, 157, 158
2. मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ.392
3. "Of all the slights that our children had aimed at us, none hurt us more than the conduct of our gifted daughter Zebunissa. She encouraged her brother Akbar to carry on treasonous conduct against us and with a heavy heart we were constrained to order her to be detained in Salangarh fort". . . . 'Aurangzeb Alamgir', (Article published in Illustrated Weekly of India, June 8, 1975 p.31 by Kushwant Singh.)

प्रेमी ने जेबुन्नीसा के चरित्र की उत्कृष्टता का परिचय दिया है। पिता के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए भाई को प्रेरणा देने के पीछे क्या लक्ष्य था, इसका स्पष्टीकरण जेबुन्नीसा स्वयं देती है। -- " किसी स्वार्थ के कारण नहीं, हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों के हित के लिए और इस्लाम के हित के लिए कर रही हूँ। -- " ।

अकबर का स्वयं युवराज घोषित करना

अकबर के साथ रहनेवाले चार मुल्लाओं ने फतवा दिया -- "औरंगजेब का आचरण धर्म के विरुद्ध होने के कारण उसे राज्य सिंहासन पर बने रहने का कोई भी अधिकार नहीं रह गया। बाद में अकबर को भारत का सम्राट घोषित किया गया। मेवाड़, मारवाड़ और राजस्थान की कुछ और राजपूत रियासतों ने उसे भारत का सम्राट स्वीकार किया।' [2]

तहव्वरखाँ की हत्या

तहव्वरखाँ ने अकबर का साथ दिया था। औरंगजेब ने उसे अभय देकर बुलवाया। उसे धमकी दी गई थी कि राजपूतों का साथ छोड़कर बादशाह की सेवा में न आ जाएँगे तो उनकी करतूत का बदला लिया जाएगा। तहव्वरखाँ तलवार तानकर औरंगजेब की तरफ लपक गया। लेकिन दिलेरखाँ ने अपनी तलवार पर तहव्वरखाँ का वार रोक लिया। इतने में सैनिकों ने उसे पकड़कर बाँध दिया। औरंगजेब ने फिर आज्ञा दी कि तहव्वरखाँ के शरीर के टुकड़े टुकड़े करके कुत्तों को डाल दो और उसका सिर थाल में सजाकर अकबर के पास भेज दो।' [3]

---

1. विदा - दूसरा अंक - चौथा दृश्य - पृ.77
2. भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस.आर.शर्मा - पृ.536
   औरंगजेब - यदुनाथ सरकार - पृ. 170-171
3. वही पृ. 172
   भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - पृ. 537

अकबर की विफलता

औरंगजेब ने अकबर को एक जाली पत्र भेजा और ऐसी चाल चलीकि वह राजपूतों के हाथों में पड गया। पत्र में लिखा था -- 'तुम राजपूती सेना को मुगल सेना पर आक्रमण करने के लिए आगे बढा लाओ। जिस समय मुठभेड शुरू हो जाए उस समय तुम भी पीछे से आक्रमण प्रारंभ करो। इस तरह हम राजपूतों की सारी सेना को गाजरमूली की तरह काट डालेंगे। -' अकबर के प्रति राजपूत सेना में अविश्वास उत्पन्न हुआ। दुर्गादास को छोडकर बाकी राजपूत चले गये। राजपूतों को वास्तविकता का पता लग गया, किन्तु देर में।' [1]

अकबर की विदा

अकबर ही दुर्गादास के साथ अपनी तुच्छ सेना को लेकर शंभूजी के पास गये। शंभूजी से अकबर एवं दुर्गादास ने जो आशाएँ की थीं, उन्हें वह पूरा कर सकता था। शिवाजी ने जिस मुख्य उद्देश्य से अर्थात् औरंगजेब के मदांधताविरोधी शासन को समाप्त करने के लिए तलवार पकडी थी उसे शंभूजी भूल गए। अकबर ने शंभूजी को अनेक बार समझाया था कि अपने व्यक्तित्व के सहारे हिन्दू-मुसलमान सभी एक सूत्र में बंध जाएं, और संपूर्ण भारत भी एक सूत्र में बंध जाए। लेकिन उसे अपने लक्ष्य की पूर्ति की संभावना न ही दिखाई पडी। उसने दुर्गादास से मिलकर हिन्दुस्तान के प्रायः सभी राजाओं को पत्र भेजे थे कि वे शंभूजी की शक्ति को साथ लेकर एक सर्वग्रासी आग देश के कोने कोने में प्रज्वलित कर दें जिसके प्रचण्ड ताप में दिल्ली का वर्तमान अत्याचारी शासन समाप्त हो जाए। किन्तु अकबर को किसी भी राजा से

---

1. भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस.आर.शर्मा - पृ. 538

आशाजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। उस स्थिति में वह हिन्दुस्तान में रहकर कुछ भी नहीं कर सकता था। उसने ईरान की ओर प्रस्थान किया। विदा लेते समय उसने अपने बच्चे बच्ची को जो मारवाड़ में छूट गए थे दुर्गादास को सौंप दिया। अन्त में अकबर ने दुर्गादास से विदा लिया। " [1]

नाटक में औरंगजेब, अकबर, दुर्गादास, समरदास, मुकुन्ददास, रघुनाथ भट्टी, दिलेरखाँ, तहव्वरखाँ; उदयपुरी बेगम, सभी ऐतिहासिक पात्र हैं। केवल दो पात्र कल्पित हैं, कासिमखाँ और सलोमा। दोनों अप्रधान होने के कारण इनकी ओर विशेष ध्यान नहीं जाता। प्रेमी ने नाटक पात्रों को रखते समय इस बात पर ध्यान दिया है कि ऐतिहासिक कथानकों में पात्रों को अधिक संख्या में रखा जाये तो सबका चरित्र विकास नहीं हो सकता। नाटक खेलने के लिए इतने अभिनेताओं को जुटाना भी एक असाध्य समस्या हो जाती है। नाटक में महाराणा राजसिंह, छत्रपति शंभूजी और औरंगजेब के अन्य पुत्रों जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों को छोड़ दिया गया है। - क्यों कि ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों को केवल एक दृश्य में रंगमंच में लाना उनके साथ अन्याय है। इसलिए प्रेमी ने उनके कार्यों का अन्य पात्रों के कथोपकथनों द्वारा व्यक्त करा दिया है।

प्रेमी की कुशल लेखनी ने अकबर के चरित्र को उत्कृष्ट बना दिया। इतिहासकार केवल इतना ही कहता है कि अकबर ने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया। इस विद्रोह के पीछे उनका लक्ष्य क्या था, इसका उत्तर हमें इतिहास से प्राप्त नहीं होता। प्रेमी अकबर के महान उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हैं। अकबर व्यक्तिगत सत्ता और स्वार्थ से ऊपर उठकर अपने

---

1. भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस॰आर॰ शर्मा - पृ॰
मुगलकालीन भारत - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ॰ 394, 467, 468

देश की सुख-समृद्धि के विषय में सोचते रहे। अकबर का लक्ष्य ऐसे ही हिन्दु-स्तान का निर्माण करना ही था जो न हिन्दुओं का, न मुसलमानों का, न राज-पूतों का, न मराठों का, न किसी अन्य जाति का, बल्कि सम्मिलित रूप में सबका हो। वे चाहते थे कि अपने पिता का अत्याचारी शासन समाप्त हो जाए और उसके खण्डहरों पर नए हिन्दुस्तान का निर्माण हो जाए, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति समान हो, प्रत्येक धर्म समान हो, कोई अपने आप को श्रेष्ठ न समझे।

वातावरण

नाटक के पहले अंक के चौथे दृश्य में कासिमखाँ और मुगल सेनापतियों के वार्तालाप के द्वारा नाटककार ने औरंगजेब के शासनकाल की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का संकेत देकर वातावरण का निर्माण किया है। हिन्दुओं को राज्य की नौकरियाँ न मिलती थीं। व्यापार करें तो उन्हें भारी चुंगी देनी पड़ती थी और मुसलमान व्यापारियों को बिलकुल नहीं। उन्हें अपमानित जीवन व्यतीत करना पड़ता था। घोड़े की सवारी वे नहीं कर सकते थे। होली, दशहरा, दिवाली आदि त्योहार मना नहीं सकते थे। संक्षेप में कहें तो, जैसे प्रेमी ने लिखा - हिन्दू यह अनुभव करने लगे कि औरंगजेब के राज्य में हिन्दू होकर जीवित रहना लोहे के चने चबाना है।

=x=x=x=x=x=x=x=x=

विषपान

मेवाड़ की राजकुमारी कृष्णा का विषपान या बलि-दान राजस्थान के इतिहास की अत्यन्त करुणाजनक घटना है। उसने अपनी

मातृभूमि की एकता के लिए ही आत्मबलिदान किया था। इतना बड़ा बलि-
देशभक्ति के स्वर की प्रतिष्ठा के लिए नाटकीय रूप में प्रदर्शित है।

मेवाड़ के चूड़ावतों एवं शक्तावतों में पारस्परिक
कलह चलना, दोनों का, आपसी ताकत बढ़ाने का प्रयत्न करना, एक दूसरे
को दबाने के लिए निरंतर सचेष्ट रहना, ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। [1]

महारानी और चूड़ावत सरदार अजितसिंह राजकुमारी
कृष्णा की सगाई की टीका जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के पास भेजते हैं।
टीका लेजानेवाले ब्राह्मण को रास्ते में पता मिलता है कि अभयसिंह दुनिया से
कूच कर गए, यह सुनकर वह लौट आता है। यहाँ नाटककार ने एक ऐति-
हासिक भूल की है। इतिहास से ज्ञात होता है कि टीका अभयसिंह के पास
नहीं, जोधपुर के राजा भीमसिंह के पास भेजा गया था। सगाई तक हो चुकी
थी। लेकिन विवाह के पूर्व उसकी मृत्यु हो गई थी।' [2]

बाद में कृष्णा की टीका अम्बर नरेश महाराजा
जगतसिंह के पास भेज दिया जाता है। उस समय महाराणा का औरस
पुत्र जवानसिंह मारवाड (जोधपुर के महाराजा) मानसिंह को यह बताकर
भड़काता है कि महाराजा ने अपनी कन्या की टीका, मानसिंह के पास न
भेजकर उसका अपमान किया। यहाँ प्रेमी ने ऐतिहासिक तथ्यों में एक परि-
वर्तन किया। इतिहास से ज्ञात होता है कि जवानदास ने नहीं, कोठारण
के ठाकुर सवाई सिंह ने मानसिंह के पास लिखा था कि कृष्णा की शादी

---

1. उदयपुर राज्य का इतिहास - गौरीशंकर हीराचन्द ओझा- भाग-2, पृ.672
2. वही पृ.695

जगतसिंह से होने में राठौरों की मानहानि है।" [1] डा॰ धनंजय ने लिखा है कि प्रेमी ने मूल तथ्य में अकारण परिवर्तन किया है।' [2] धनंजय का निष्कर्ष पूर्ण रूप से ठीक नहीं है। प्रेमी ने अपने अभिप्रेत को सिद्ध करने के लिए ऐसा ही एक परिवर्तन किया है। जवानदास एक दासीपुत्र होने के कारण उसे अन्य सरदार लोग व्यंग्य भरी दृष्टि से देखते थे। उसके अपना पिता भी उसके लिए जो कुछ करता था, उसमें कृपा का भाव रखता था। दया के वे टुकड़े जवानदास को जहर जान पड़ते थे। उसमें प्रतिशोध की भावना भरी हुई थी। असम्मान, कृपा और व्यंग्य के बाणों से जवानदास का हृदय छलनी हो गया था। अतः वह सर्वनाश का खेल खेलना चाहता है तो अस्वाभाविक नहीं। इसलिए वह मानसिंह को भड़काता है।

मानसिंह का सीधे उदयपुर पहुँचना, अपनी सहायता के लिए अमीर खाँ को बुलाना, अपने शत्रुओं को कुचलने के लिए अमीरखाँ (पठान सेनापति) को बीस लाख रुपये घूस देकर अपनी ओर मिला लेना ये सब घटनाएँ पूर्ण रूप से इतिहास सम्मत हैं।" [3]

जोधपुर के सरदारों के द्वारा धौंकल नामके एक बालक को स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह का पुत्र कहकर जयपुर नरेश की सहायता से मारवाड़ राज्य के अधिकारी घोषित करना, अमरखाँ का जोधपुर के सरदारों से भी बीस लाख रुपया लेकर महाराजा के विरुद्ध सरदारों की सहायता करने का वादा करना, उसका विद्रोहियों के मुखिया सवाई-

---

1. उदयपुर राज्य का इतिहास - गौरीशंकर हीराचन्द ओझा - पृ॰696
2. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व- डा॰ धनंजय-पृ॰343
3. उदयपुर राज्य का इतिहास - गौरीशंकर हीराचन्द ओझा - पृ॰697

सिंह जी से मित्रता के प्रमाण स्वरूप पगड़ी बदलना, तथा मित्रता के उपलक्ष्य में अमीरखाँ का है एक जलसा करना, उस जलसे में सवाई सिंह, चौकल, और सभी सरदारों का एकत्रित होना, नृत्यगान और मदिरा का दौर चलना, जलसे के रंग में मस्त ह राजपूतों पर अमीरखाँ के सैनिकों का आक्रमण करना, तथा उन्हें की गोद में सुला देना ऐतिहासिक घटनाएँ हैं[1] जिनसे पठान सेना पति अमीरखाँ की नीतियों का परिचय मिलता है।

राजकुमारी कृष्णा के लिए जयपुर से मेवाड़ भेजे गए पहरान को मार्ग में जोधपुर की सेना द्वारा छीन लेने की घटना काल्पनिक है। परन्तु इससे नाटकीय संघर्ष में वृद्धि होती है।

जयपुर से कछवाहों की एक बड़ी सेना ने जोधपुर पर धावा बोल दिया। महाराजा मानसिंह ने पराजित होकर किले में शरण ली, लेकिन जयपुर के सरदारों में फूट पड़ जाने के कारण जगतसिंह जी को घेरा उठाकर वापस आ जाना पड़ा। महाराजा मानसिंह की सहायता के लिए अमीरखाँ था। अजीतसिंह और जवानदास भी जोधपुर के पक्ष में थे। अजीतसिंह महाराणा से यह बताता है कि मानसिंह को मनुष्यता के नाम पर हत्याकाण्ड को रोका जा सकता है। इसके लिए महाराणा को ऐसा कार्य की चेष्टा करना है कि राजकुमारी की मृत्यु की आज्ञा लिखित रूप में प्रदान की जाए। महाराणा को वह विश्वास दिलाता है कि यह आज्ञा मानसिंह की आँखें खोलने का साधन मात्र है, इससे राजकुमारी कोई हत्या करने का अभिप्राय नहीं। महाराणा ने उसकी बातों पर विश्वास रखकर पत्र लिख दिया कि मेवाड़, अम्बर और मारवाड़ के सहस्त्रों योद्धाओं के खून से

---

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 287

मेवाड भूमि को गीली होने से रोकने का एक मात्र उपाय यही है कि युद्ध के हेतु को समाप्त कर दिया जाय। इसलिए अत्यन्त दुख के साथ मैं राजकुमारी कृष्णा की मृत्यु की आज्ञा प्रदान करता हूं। " [1]

अजितसिंह का महाराणा से कृष्णा के वध का आदेश परिस्थितियों में लिखवाकर बाद में उसका गलत उपयोग करने की घटना में प्रेमी ने इतिहास में थोड़ा परिवर्तन किया है। इतिहास में लिखा गया है - 'अमीरखाँ ने महाराणा से कहा था कि जब तक कृष्णा जीवित है तब तक संघर्ष होने की आशंका है बनी रहेगी, इसलिए जैसे भी उसे मरवा देना ही ठीक है।' [2] इतिहास में परिवर्तन करने से लाभ यह हुआ कि घटना अधिक स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक हो गई।

कृष्णा को मारने के लिए जवानदास को कटार देकर भेजा गया। वह म्यान से तलवार निकालकर कृष्णा पर पीछे से वार करना चाहता था कि कृष्णा ने सहसा मुँह फेरकर जवानदास की ओर देखा। वह चौंक उठा। उसके हाथ से तलवार छूट गई। वह लौट आया। बाद में कृष्णा को जहर मिलाया हुआ गुलाब जल पीने को दिया गया। वह जानते हुए पी गई।' [3] प्रेमी ने नाटक के अन्तिम दृश्य में कृष्णा की मृत्यु का करुणापूर्ण चित्र खींचा है। वह जानती थी कि उसीके वास्ते मेवाड में रक्त की बाढ़ फूट पड़ेगी जिसमें न केवल मेवाड डूबेगा बल्कि संपूर्ण राजस्थान गर्त हो जाएगा।

---

1. विषपान - द्वितीय अंक - तृतीय दृश्य - पृ.65

2. उदयपुर राज्य का इतिहास - ओझा - भाग 2 - पृ. 697
   टाड कृत राजस्थान का इतिहास पृ 288

3. वही पृ. 288
   उदयपुर राज्य का इतिहास पृ. 697

इतना बड़ा पाप वह अपने सिर पर नहीं लेना चाहती थी।

नाटक में प्रेमी ने घटनाओं का लंबा विवरण उपस्थित करने की अपेक्षा पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन करने पर अधिक ध्यान दिया है। नायिका कृष्णा सांस्कृतिक एवं साम्प्रदायिक एकता की प्रतीक है। वह असाधारण विचारशील और दार्शनिक प्रकृति की नारी है। एक [illegible] धीवर बालक और राजकुमारी कृष्णा के वार्तालाप का काल्पनिक प्रसंग नाटक में रख कर प्रेमी ने कृष्णा के चरित्र की उपर्युक्त विशेषता का परिचय दिया है।

जवानदास के हाथ से अपनी मृत्यु का आज्ञा पत्र लेकर भी वह विचलित नहीं हुई। वह कहती है, -- 'माँ पिताजी की आज्ञा पूर्ण होनी चाहिए। -- अपने देश और कुल के हित के लिए प्राण चढ़ाने का अवसर सौभाग्य से ही मिलता है माँ। --'[1] मृत्युशय्या पर लेटती हुई भी वह कहती है - मेरे हाड़ माँस के अकिंचन शरीर के लिए अम्बर, मारवाड़ और मेवाड़ के वीर योद्धा अपने बहुमूल्य प्राण गँवाएँ, यह मुझे स्वीकार नहीं।"[2]

प्रेमी इतिहास के माध्यम से यही संदेश देते हैं कि राजपूतों की जिस नासमझ उन्मत्तता ने कृष्णा को विषपान करने के लिए बाध्य किया वही अनेक रूपों में देश के पतन का भी कारण होती है। हम भारतवासियों ने अपने देश की स्वाधीनता को जहर पिला दिया।

<u>वातावरण</u> :- राजस्थान के प्रत्येक स्थान में गृह युद्ध की जो आग भड़क उठी थी, पारस्परिक कलह का जो तूफान चल रहा था उसका सुंदर चित्रण प्रेमी ने प्रस्तुत करके वातावरण की सृष्टि की है। देशाभिमान के उन्माद

---

1. विषपान - तीसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ.87
2. वही - चौथा अंक - दूसरा दृश्य - पृ.92

मे देश के राजनीतिक भविष्य को भूल जानेवाले राजपूत यह भी भूलते है कि अपने राज्य और वंश तक अपनी दृष्टि सीमित कर लेने से फि अपना देश उन्नति न प्राप्त करेगा।

X=X=X=X=X=X=X=X=X=X=X

सं र क्ष क

यह नाटक उस समय की एक झाँकि है जब भारत मे अंग्रेज अपना राज्य विस्तार कर रहे थे।

राजस्थान के हड़ोती प्रदेश मे हाडा राजपूतों के अधीन कोटा राज्य आंतरिक संघर्षों मे लीन था । जालिमसिंह नामक झाला राजपूत महाराव उम्मीदसिंह का मामा था। और उम्मीदसिंह के पिता ने इस संसार से बिदा लेते समय उसे उम्मीदसिंह का संरक्षक बना दिया था। जालिमसिंह ने साम, दान, दण्ड और भेदनीति से कोटा राज्य की स्वाधीनता और समृद्धि की रक्षा की। उसने भटवारे के युद्ध मे जयपुर की प्रबल सेना के दांत खट्टे किए थे। उस दिन के शौर्य पर मुग्ध होकर उम्मीदसिंह के पिता ने कोटा राज्य की सुरक्षा और संरक्षण का संपूर्ण भार जालिमसिंह के कंधों पर डाल दिया था।

उस समय अंग्रेजों ने भारतीय राज्यों मे संरक्षक सेना रखने के लिए संधियाँ करने की नीति चालू कर रखी थी। जालिमसिंह ने अंग्रेजों को अपना मित्र बनाकर अपनी स्थिति को सुदृढ करना उचित समझा। और महाराव उम्मीदसिंह को ऊँच नीच समझाकर अंग्रेजों से संधि करने के लिए तैयार किया। जिस संधि पत्र पर महाराव ने 26 दिसम्बर 1917 के दिन हस्ताक्षर किए उसमे ऐसी कोई शर्त नहीं थी कि जालिमसिंह और माधोसिंह

के लिए संरक्षक का पद प्राप्त होगा और उन्हें राज्य का शासन चलाने का अधिकार होगा। बाद में अंग्रेजी सरकार के लार्ड हेस्टिंग्स ने चाहा कि इस संधि पत्र में यह शर्त भी रहे। जालिमसिंह अंग्रेज एजेंट के दबाव में आकर महाराव को समझाने आए थे कि संधि की नई शर्त पर हस्ताक्षर कर दें, लेकिन महाराव इस शर्त को मानने के लिए तैयार न थे।" [1]

महाराव उम्मीदसिंह के देहांत के बाद उनके उत्तराधिकारी किशोरसिंह को, जालिमसिंह का पुत्र माधोसिंह मदिरा पिलाकर राजसत्ता से वंचित करनेवाले संधि पत्र पर हस्ताक्षर कराना चाहते थे। जालिमसिंह का दासीपुत्र गोवर्धन जो माधोसिंह से अधिक योग्य था, महाराव का समर्थक भी था एवं किशोरसिंह का छोटा भाई पृथ्वीसिंह किशोरसिंह को संधि-पत्र पर ... हस्ताक्षर करने से रोक लेता है। [2] अंग्रेज माधोसिंह एवं जालिमसिंह का पक्ष लेते हैं, किशोरसिंह का एक भाई विशनसिंह भी नादानी में आकर जालिमसिंह के साथ है। महाराव के किले में आनेवाला पानी भी शत्रुओं के षडयन्त्र ने बन्द कर दिया। अंग्रेजों ने सोचा कि यदि वे किले में पानी का प्रबन्ध बन्द कर देंगे तो वह हथियार डाल देगा। लेकिन महाराव किले का फाटक खोलकर लड मरने पर तैयार हो गया। वह अंग्रेजों की तोपों से जरा भी नहीं डरता था। फिर भी स्वाधीनता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए कोटा का दुर्ग छोड देना पडा। और रंगवारी में अपनी राजधानी स्थापित करनी पडी। बाद में महाराव किशोरसिंह एवं जालिमसिंह में समझौता होता है। [3]

- -

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ. 824
2. वही पृ. 824
3. वही पृ. 825-826

अँग्रेजी एजेंट महाराव का राजतिलक अपने हाथ से कर देता है। सर्फ अली को राजपलटन का अध्यक्ष बनाता है। [1] इस बात का प्रमाण देने के लिए कि वे (अंग्रेज) महाराव को अपने हाथ की कठपुतली नहीं बनाना चाहते। अँग्रेज एवं जालिमसिंह मीठा जहर देना खूब जानते थे। उनका सारा आयोजन एक विकट षडयन्त्र ही था। असल में महाराव एक बन्दी ही था कहने के लिए किशोरसिंह प्रभुसत्ता प्राप्त महाराज था, किन्तु वास्तव में कुछ भी करने में स्वतंत्र नहीं। जालिमसिंह और माधोसिंह अँग्रेजों के सहारे उनकी सत्ता को छीन रहे थे। महाराज को अनुमति के बिना ही जालिमसिंह अपने पुत्र गोवर्धन को बन्दी बनाता है।' [2]

गोवर्धन अँग्रेजों से विवाह करने की अनुमति लेकर आवुआ आया। अँग्रजों ने हडौतियों का मुकाबला करने का सब इंतजाम कर रखा। उन्होंने दिल्ली की ओर से फौज मँगायी। किशोरसिंह ने भी बहुत भयानक तैयारी की। सिर्फ किले के अन्दर ही नहीं, बाहर भी भील सेनाओं की नई पलटन उन्होंने बनाई। पूरे दो मास से दोनों सेनाओं में संघर्ष चल रहा। पहली एक दो मुठभेडों में हाडाओं को विजय प्राप्त हुई, अँग्रेजी सेना के पाँव उखड गये। किन्तु फिर भी युद्ध समाप्त तो हो न सका। हडौती सेना के संचालक राजकुमार पृथ्वीसिंह के आहत होकर घोडे से गिर पडने के पश्चात् हडौती योद्धाओं के पाँव उखड गए। वे आहत होकर शत्रु के हाथों पड गए। जो थोडी सी तोपें बचीं वे भी दुश्मनों के हाथों पड गईं। [3]दो महीनों की लडाइयों से थकी हुई फौज मैदान में अँग्रेजी का

- -

1. टाड कृत राजस्थान का इतिहास - पृ॰ 827
2. वही पृ॰ 825
3. वही पृ॰ 833

मुकाबला नहीं कर सकी। अन्त में राजकुमार पृथ्वीसिंह के बलिदान ने जालिमसिंह एवं माधौसिंह की आँखें खोल दीं। दोनों की सत्ता की भूख समाप्त हो गई। जालिमसिंह एवं माधोसिंह का किशोरसिंह के पास आकर अपनी भूलों पर पश्चात्ताप करके एवं क्षमा माँगने के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

=X=X=X=X=X=X=X=X=X=

शीशदान

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में तात्या टोपे जैसे ऐतिहासिक महापुरुष ने जिस सूझ-बूझ, लगन, चतुराई, साहस और धैर्य से अंग्रेजों का सामना किया और देश का मान रखने के लिए अपना शीश माँ के चरणों पर किस प्रकार चढ़ा दिया, इसका चित्रण करने में प्रेमी ने सफलता पाई।

मंगल पाण्डे का बलिदान

बैरकपुर के उन्नीसवीं पलटन के वीर सैनिकों ने जब देखा कि अपने धर्म बन्धुओं पर अत्याचारों की गाज गिरनेवाली है तब उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। शत्रु द्वारा बन्दी बना बनाए जाने की अपेक्षा स्वतः मृत्यु का वरण करना सहस्र गुना श्रेयस्कर है, यही सुकल्प कर उस हुतात्मा ने अपनी राइफिल से ही अपनी छाती पर गोली लगा दी।' 1

पेशवा बाजीराव का स्वार्थ

पेशवा बाजीराव द्वितीय का गृह कलह में अंग्रेजों का

- -

1. 1857 का स्वातंत्र्य समर - विनायक दामोदर सावरकर - पृ. 88-89

आश्रय लेना, अन्त में उसे पेशवाई से भी हाथ धोना पड़ना, अपने आत्मगौरव एवं स्वाभिमान को तिलांजली देना, और अंग्रेजों से आठ लाख रुपये वार्षिक पाकर सन्तुष्ट होनेवाली घटनाएँ इतिहास सम्मत है।' [1]

कानपुर में फौजोहत गढ़ी में गिरे हुए अंग्रेज जान की बाजी लगाए हुए थे। तीन सप्ताह से भारतीय सैनिक की तोपें गढ़ी पर गोलाबारी कर रही थीं। गढ़ी में प्रारंभ में लगभग 2000 फिरंगी शरणार्थी थे। उनकी संख्या लगभग आधी रह गई। कप्तान हैलोडे, जॉन मैकफिलप, मेजर लिंडसे और उसकी पत्नी, हेवूबर्न, लेफ्टिनेंट एक्फोर्ड, स्वार्ट, और उसकी पत्नी मैजिस्ट्रेट हिलर्डन, जनरल ह्वीलर का पुत्र आदि अनेक प्रमुख फिरंगी भारतीय सैनिकों की तोपों के ग्रास बन चुके हैं। जो मृत्यु के मुँह से बच गए, इन्हें भर पेट भोजन पाना भी कठिन हो गया था। घोड़े, बैल और आवारा कुत्तों तक का माँस उन्हें खाना पड़ा। शराब के एक घूँट के लिए भी वे तरस रहे थें। सिगरेटों की जगह वे आम और अमरूद की पत्तियों की बीड़ी बनाकर पीते थे। ऐसी परिस्थितियों में भी अंग्रेजों ने हथियार नहीं डाले। भारतीय सैनिक नित्य ही गढ़ी पर फहरानेवाले अंग्रेजों के झंडे को तोप के गोले से उड़ा देते थे, लेकिन नित्य प्रातः वहाँ अंग्रेजों का [illegible] झंडा फहराया हुआ पाते थे।

नील का अत्याचार

अंग्रेज फौजी अधिकारी नील विध्वंस और अत्याचार का प्रतिरूप बनकर कानपुर के अंग्रेजों की रक्षा के हेतु बढ़े चले आ रहे थे। उन्होंने अंग्रेजों तथा कुछ देशद्रोही भारतीयों को मिलाकर अपनी सेना सुगठित की है।

---

1. Sepoy Mutiny, R.C. Majumdar (2nd Edn.) 1963 p.250.

ये सैनिक असहाय और निःशस्त्र देहातों में घुस पड़े। जो भी मिला उसे तलवार के घाट उतारा या फांसी पर लटकाया। वधस्तम्भों के अभाव में पेड़ों को ही वध स्तम्भ बनाया गया। पेड़ों की प्रत्येक मोटी डाल पर भारतीयों के शव झूलने लगे। पैशाचिक आनन्द लेकर उन्होंने काले आदमियों के शरीरों को अंग्रेजी के आठ और नौ अंकों की आकृति बनाकर वृक्षों पर लटकाया। इससे भी कुछ संतुष्ट न होकर पूरे के पूरे गांवों को भस्म करना प्रारंभ किया। गरीब किसान, विद्वान, ब्राह्मण, दीनपरस्त मुसलमान, पाठशाला के छात्र-छात्राएं, नन्हें मुन्नों को आंचल देती हुई स्त्रियां, सभी को ज्वाला की लपलपाती हुई जीभ लील गई। यदि कोई लपटों में से निकल भागने का यत्न करता था तो उसे संगीनों पर टोंककर जीवित भूना जाता था। इस तरह सैकड़ों गांव भूना डाले गए।'[1]

सतीचौरा घाट पर अंग्रेजों पर हुए आक्रमण

नाना साहब ने कब्जे में पड़े अंग्रेजों को कानपुर से प्रयाग जाने के लिए नावों का प्रबन्ध कर दिया। जब अंग्रेज सतीचौरा घाट पर नावों में सवार होने पहुंचे तो उन्होंने देखा, गंगा के दोनों

- -

1. General Neill who proceeded from Calcutta in May 1857, with a regiment towards Varanasi (Banaras) and Allahabad had earned undying notoriety for the inhuman cruelties which marked the progress of his army all along the way . . . The system of Burning Village", writes Holmes ' was in many instances fearfully abused. Old men who had done us no harm and helpless women with sucking infants at their breast, felt the weight of our vengeance". - 'Sepoy Mutiny'- R.C. Majumdar, pp.194-198.

तटों पर भारतीयों की भीड़ लगी हुई थी। उस भीड़ में सैकड़ों व्यक्ति थे जिनके स्वजनों को अंग्रेजों ने रोमन आठ और नौ के अंकों की आकृतियां बनाकर फांसी दी थी। उनका हृदय प्रतिशोध से धधक रहा था। जैसे ही अंग्रेज नावों में बैठे और नावें खुलीं कि नाविक नाव चलाने के बजाय नदी में कूद कर तट की ओर जाने लगे। अंग्रेज आशंकित हो उठे और उन्होंने मल्लाहों पर गोली चलाना प्रारंभ किया। लेकिन किनारे जो लोग खड़े थे उन्होंने अंग्रेजों की जीवनलीला समाप्त कर दी। 'मारो फिरंगी को' के नारों से दिशाएं गूंज उठीं। नावों में आग लगाई जाने लगी। अंग्रेज पुरुष, स्त्री, बच्चे गंगा में कूद पड़े। कुछ तैरे, कुछ डूबे, कुछ जल मरे और कुछ तुरन्त या कुछ समय बाद आई गोलियों की बाढ़ से भुन गए। भयंकर दृश्य था वह। मांस के टुकड़े, कटे सिर, उंटे बाल, कटे हाथ पैर, और खून के सोते। सारी गंगा लाल हो गई।' [1]

सतीचौरा घाट के हत्याकाण्ड के लिए कुछ अंग्रेज लेखकों ने नानासाहब और तात्या टोपे को उत्तरदायी माना है।' [2] प्रेमी ने इनके कथन को निराधार साबित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि जब यह घटना घटी तब नानासाहब एवं तात्या टोपे घटनास्थल पर थे ही नहीं। उस घटना की उन्हें कोई पूर्व सूचना भी नहीं मिली।

हत्याकाण्ड का समाचार मिलते ही नाना साहेब का इसको रोकने की आज्ञा देना, एवं अंग्रेजी स्त्री बच्चों पर दया करने का प्रबन्ध करना भी इतिहास सम्मत है।' [3]

---

1. & 2. Sepoy Mutiny, R.C. Majumdar, p.88.
3. So far as the responsibility of Nana is concerned it is to be remembered that he was not present at the Ghat and as soon as news of the massacre reached him, he sent an order prohibiting the destruction of women and children. - Sepoy Mutiny, p.201.

नाटक में अज़ीजन नामक एक पात्र है जिसको प्रेमी ने अधिक प्रमुखता दी है। इस पात्र की ऐतिहासिकता का समर्थन करते हुए प्रेमी ने लिखा है - 'अज़ीज़न को जो मैं ने अधिक प्रमुखता दी है, इतिहास को इस पर आपत्ति हो सकती है। लेकिन इस पात्र के अस्तित्व का इतिहास भी साक्षी है। इतिहासकारों ने माना है कि वह शम्सुद्दीन की प्रेयसी थी, वह युद्धों में घोड़े पर सवार होकर सैनिकों को प्रेरणा देती रही - बीबीघर के हत्याकाण्ड में उसका प्रमुख हाथ था। ये सब इतिहास में अंकित है। इस पात्र के चित्रण में मेरी कल्पना ने भी रंग भरे हैं, इससे भी मैं इनकार नहीं करता।' [1]

बीबीघर का हत्याकाण्ड

बीबीघर में अंग्रेजी महिलाओं को बन्दी बनाकर रखा गया था। अजीजन प्रतिशोध की ज्वाला से जलती थी। उसने उनका वध करा दिया। लाशों को टुकड़ा टुकड़ा करके एक कुएं में डाल दिया गया और ऊपर से मिट्टी भर दी गई। बीबीघर में हुए अत्याचार ऐतिहासिक हैं। ' [2] पर अजीजन को यह हत्या कराने के लिए प्रेरित करते हुए दिखाना प्रेमी की अपनी कल्पना है।

<u>नाना साहिब का परिवार सहित जलसमाधि लेने का अभिनय</u>

नाना साहब ने कानपुर से बिठूर आकर अपनी तीस लाख से अधिक की संपत्ति एक कुएं में डाल दी। एक नौका में बाजीराव पेशवा की दो पत्नियां, उनकी कन्या, नाना साहब, राव साहब अपनी अपनी स्त्रियों के साथ बैठे। नाव मंझदार में पहुंची तो नाना साहब ने रत्नाकार

- -

1. शीशदान - प्रवेश - पृष्ठ : (ख)
2. Sepoy Mutiny, R.C. Majumdar, p.203.

और वस्त्रों की पेटी गंगार्पण कर दी। कुछ दूर तक जाने के बाद नाव अंतर्धान हो गई।' नाना साहब का कार्य केवल एक अभिनय मात्र था।

कानपुर की पराजय ने तात्याटोपे और नानासाहब की सेना को विश्रृंखलित कर दिया था। ज्वाला प्रसाद, टीकासिंह, अजीमुल्लाखां, आदि अपनी सैनिक टुकडियां लेकर अवध में चले गए। बिठूर भी अंग्रेजों के हाथ में चला गया। इस बिठूर को तात्या टोपे अपनी सेना के लिए फिर से संगठित होने का केन्द्र बनाना चाहता था। तात्या के पास न तोपें रहीं, न सेना, न धन। जब बिठूर भी हाथ से चला गया तो शिवराजपुर जाकर वहां अंग्रेजों की जो भारतीय सेना थी, उसे अपने पक्ष में किया और उसे लेकर फिर बिठूर पर कब्जा किया, लेकिन फिर उसे छोडना पडा। और कालपी को अपना केन्द्र बनाया। कालपी से वे ग्वालियर गए। शिंदे महाराज से प्रार्थना की एवं महाराष्ट्र राज्य के नाम पर क्रान्ति यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए निवेदन किया। तात्या ने मुरार की चार पलटनों से निश्चय कर लिया था कि उसके चले जाने के बाद वे ग्वालियर से कूच करके कानपुर को फिर से जीतने के लिए वहां मिलें। ग्वालियर से चलकर जालोन और चरखारी को जीतकर तात्या टोपे कालपी आया। अब कानपुर से ग्वालियर तक का संपूर्ण क्षेत्र उनके प्रभाव में हो गया। कानपुर को पुनः हस्तगत किए बिना तात्या को चैन नहीं मिल सकता था। उसे ज्ञात हुआ कि भारत में अंग्रेजी सेनाओं के नवीन महानायक कालीन कैम्पबेल कानपुर और लखनऊ की ओर अपनी सेनाएं भेज रहे थे। अतः बिहार में दानापुर की भारतीय सेनाओं को क्रान्तियज्ञ में सम्मिलित करना आवश्यक हो गया। बिहार के कुंवर सिंह ने जो जवानी को भी चुनौती देनेवाले थे दानापुर की सेनाओं का नेतृत्व संभाला। बांदा के नवाब और राजा कुंवरसिंह को कलकत्ता से जल और थल मार्ग से आनेवाली अंग्रेजी सेनाओं का मार्ग रोकने का कार्य सौंपा गया। इसका इतना परिणाम हुआ कि कलकत्ता से अंग्रेजी सेना शीघ्र कानपुर नहीं आ सकी। तात्याटोपे की

गतिविधि के कारण विंडहम कानपुर छोड़कर लखनऊ में घिरे अंग्रेजों की मुक्ति के लिए जाने का साहस न कर सका। तीन बार उसने कानपुर से लखनऊ की ओर प्रस्थान किया। और तीनों बार लौटना पड़ा।

तात्या ने जमना पार करके भोजनीपुर, अकबरपुर, शिवली और शिवराजपुर पर पुनः अधिकार किया। प्रयाग और लखनऊ का मार्ग उसने काट दिया। लखनऊ से अब शीघ्र ही कानपुर की अंग्रेजी सेना को सहायता नहीं प्राप्त हो सकती थी। विंडहम दुविधा में पड़ गया। वह जान न सका कि तात्या टोपे कैंपबेल को लखनऊ पहुंचने से रोकना चाहता है। या कानपुर पर आक्रमण करना। तात्या टोपे कैंपबेल को लखनऊ के युद्ध में उलझ जाने देना चाहता था। उसके पश्चात् ही कानपुर पर आक्रमण करने का तात्या का निश्चय था। विंडहम घबरा भी गया और बौखला भी। अपनी रक्षा के लिए अंग्रेजों ने बनाया था, उसे छोड़ वह तात्या पर आक्रमण करने बढ़ा। पाण्डु नदी पर एक बार फिर अंग्रेजी और भारतीय सेना में संघर्ष हुआ। जब तात्या योजनानुसार पीछे हटा तो अंग्रेजों ने समझा कि तात्या पराजित होकर भाग रहा है। उन्होंने उसका पीछा किया। तात्या की सेना ने मुड़कर अंग्रेजी सेना के दाएं और बाएं पार्श्व पर आक्रमण किया। अंग्रेजी सेना भागी और अपनी गढ़ी [illegible] में जाकर उसने मुंह छुपाया। तात्या ने आगे बढ़कर तीन दिन के घोर संग्राम के पश्चात् सारे कानपुर पर अधिकार कर लिया।[1]

इस युद्ध में तात्या की सेना को पांच लाख रुपये ग्यारह हजार कारतूस, पांच सौ बंदूकें और बहुत सी युद्धोपयोगी सामग्री हाथ लगी।

---

1. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर - विनायक दामोदर सावरकर - पृ. 354-360

बिठूर

बिठूर में अंग्रेजों ने निर्लज्ज लूटमार और क्रूर हत्याकाण्ड की इतिश्री कर दी। बड़ी साध से बनवाया हुआ पेशवा का काँच का बना हुआ गंगा महल जलाकर राख कर दिया। बाजीराव पेशवा की धर्मपत्नी सरस्वती बाई के मंदिर में जड़े सारे रत्न वे उखाड़ ले गए। तात्या के प्रासाद को भी धूल में मिला दिया। नाना साहब के बाड़े में आग लगा दी जिसमें परिवार की अनेक महिलाएँ और बच्चे भी जलकर राख हो गए। अंगूरी तिवारी नामक किसी देशद्रोही ने अंग्रेजों को उस संपत्ति का भी पता दे दिया जो पहले नानासाहब ने कुएँ में डलवा दी थी। लगभग 30 लाख रुपये की संपत्ति वे वहाँ से निकाल ले गए थे।"[1]

ग्वालियर पर आक्रमण

तात्या ने ग्वालियर को हस्तगत करने की योजना इसलिए बनाई थी कि वह स्थान सामरिक दृष्टिकोण से बहुत उपयोगी था। वहाँ से उत्तर भारत पर नियन्त्रण भी कर के सकते थे। और दक्षिण भारत में भी क्रान्ति की ज्वालाएँ प्रज्वलित कर अंग्रेजों के लिए नया सर दर्द उत्पन्न कर देते। ग्वालियर में तात्या की सेना की [redacted] भी आर्थिक समस्या भी हल हो गई। शिंदे के कोष का अतुलित धन उनके हाथ लगा। लगभग 60 तोपें और बहुत सी युद्ध सामग्री हाथ आई। इस विजय ने तात्या के साथियों को मदहोश कर दिया। दिन रात जुलूस होने लगे। नृत्यगान की महफिलें जमने लगीं। तात्या इस बेमौसम शहनाई से दुखी था। अंत में अंग्रेजों ने ग्वालियर को हस्तगत करने में अपनी शक्ति लगा दी। फिर

---

1. 1857 का स्वातंत्र्य समर - विनायक दामोदर सावरकर - पृ.362

भी तात्या ने साहस न छोड़ा । रावसाहब और बांदा के नवाब को साथ लेकर और जितनी सेना ग्वालियर से बचा ले सकता था, उसे लेकर तात्या चल पड़ा। जौरा एवं अलीपुर में अंग्रेजों से फिर युद्ध हुआ। बाद में टौंक झालरापाटन में आक्रमण किया, वहाँ से चलकर सिरौंज और ईसागढ़ को जीता। कई विजयों और पराजयों को गले लगाते हुए ललितपुर जाना पड़ा।

राजस्थान में सीकर में अंग्रेजी सेना से झड़प हुई जिसमें तात्या को बहुत हानि उठानी पड़ी। तात्या के पास कुल 3000 सैनिक थे । इस युद्ध के पश्चात् तात्या ने रावसाहब से भी नानासाहब के पास जाने का निश्चय किया। इसलिए तात्या नरवर नरेश मानसिंह के पास आश्रय लेने के लिए आया। [1]

मानसिंह ने तात्या का विश्वासघात किया। दो तीन इतिहासकार ऐसा मानते हैं कि तात्या टोपे को बन्दी नहीं बनाया जा सकता था, बल्कि एक साथी ने अपने आपको तात्या टोपे कहकर बन्दी बनवा दिया था और फाँसी पर चढ़ना स्वीकार किया। किन्तु तात्या इतना स्वार्थी और कायर था कि अपने साथी को अपनी जगह फाँसी पर चढ़वा दे । यह असंभव बात है। सावरकर ने [2] स्वीकार किया है कि तात्या ने वीरतापूर्वक मृत्यु को गले लगाया । प्रेमी ने इसी तथ्य को स्वीकार किया ।

=X=X=X=X=X=X=X=X=X=

- -

1. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर - सावरकर - पृ. 476
   Sepoy Mutiny, pp. 299-305.
2. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर - सावरकर - पृ.476-479, नवीन सं.1966

अमर बलिदान

सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम के समराकाश में अनेक देदीप्यमान नक्षत्र उदित हुए थे। इनमें रानी लक्ष्मीबाई की तेजस्विता अलौकिक ही थी। इनकी अनुपम वीरता, असाधारण साहसतथा ज्वलन्त राष्ट्र-प्रेम ने हमारे प्रथम स्वातंत्र्य समर को इतना गौरवशाली बना दिया था कि उसकी स्मृति आज भी प्रत्येक भारतीय के हृदय को आंदोलित तथा स्वतंत्रता की वेदी पर अपना सर्वस्व बलिदान करने की स्फूर्ति प्रदान करती है। रानी के अमर बलिदान का हृदयस्पर्शी विवरण नाटक में अंकित है।

लार्ड डलहौसी का हड़प सिद्धान्त

लार्ड डलहौसी ने भारतीय राजाओं के लिए एक नया ही विधान बनाया कि निस्संतान राजा किसी को दत्तक पुत्र नहीं बना सकता।[1] उस विधान के अनुसार उन्होंने स्वर्गीय पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र श्रीमन्त नाना साहब को एवं अन्य कई राजाओं के दत्तक पुत्रों को मान्यता नहीं दी। लक्ष्मीबाई के दत्तक पुत्र दामोदर राव को भी उन्होंने अपने पिता का उत्तराधिकारी नहीं माना। लार्ड डलहौजी ने अपना हड़प सिद्धान्त (Doctrine of Lapse) का स्पष्टीकरण 13 जून 1854 के प्रस्ताव में इस प्रकार किया है --- " तृतीय श्रेणी के राज्यों के संबंध में मेरा निश्चित मत है कि उनके दत्तक पुत्र को कभी उत्तराधिकारी नहीं माना जा सकता। "[2]

डलहौजी ने झाँसी के राज्य को तृतीय श्रेणी का

- -

1. The Cambridge History of India, Vol V, British India, Chapter XXXI, pp.581-82.
2. Indian Constitutional Documents, Vol. I, pp.342-343.

माना। अत्याचार केवल लक्ष्मीबाई के साथ ही नहीं हुआ। नागपुर के भौंसला राजघराने का महाराजा राघो जी भौंसले के पुत्र नहीं था। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी रानी ने पुत्र गोद लिया। किन्तु अंग्रेजी सत्ता ने गोद लिए पुत्र को राजा नहीं माना और भौंसले के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया।'[1]

लक्ष्मीबाई की प्रारंभिक तैयारियाँ

स्वतंत्रता संग्राम के लिए लक्ष्मीबाई ने पहले ही तैयारियाँ कर रही थीं। उसने बुन्देलखण्ड की अनेक नारियों को घुड़सवारी, तलवार तथा बंदूक चलाना, यहाँ तक कि तोपें चलाने की शिक्षा दी। इसके पीछे एक महान लक्ष्य निहित था कि समय पड़ने पर रणभूमि में शत्रु का गर्व खर्व करें।'[2] रानी भारत को दासता के बन्धनों से मुक्त कराने का आयोजन गुप्त रूप से चला रही थी। अंग्रेजों को उसके आयोजनों का आभास भी नहीं हुआ।'[3]

जब अंग्रेजी अफसरों को झाँसी की क्रान्ति की गड़गड़ाहट का पता मिला तो उन्होंने शीघ्र ही भावी संकट के अवसर पर अपनी रक्षा करने की व्यवस्था आरंभ कर दी। डिपटी कमिश्नर गार्डन और मेजर एलिस ने रा॰ली से मिलकर प्रार्थना की कि उनके स्त्री बच्चों के प्राण संकट में है। रा॰ली उनकी रक्षा कीजिए। रानी ने उन्हें अपने महल में भेज देने को कहा। अंग्रेजों की भारतीय सेना ने उपद्रव प्रारंभ कर दिया। उस समय संपूर्ण राज्य में अराजकता का बोलबाला रहा। अंग्रेज अफसरों को उस समय शासन व्यवस्था करने की अपेक्षा अपनी रक्षा करने की चिन्ता थी।

---

1. India since 1526, V.D. Mahajan, Chapter XIII, Lord Dalhousie, p.201.

2.

3. रानी लक्ष्मीबाई - श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर - पृ॰66, प्रथम सं॰1968

वे जानते थे कि प्रजा रानी का मान करती है। इसलिए उससे अनुरोध किया कि वे शासन संभाल लें। यह भी वादा किया कि रानी विद्रोह को दबाने में उनका साथ देगी तो उनको कंपनी सरकार पुरस्कृत करेगी। गार्डन और एलिस लक्ष्मीबाई पर कोई प्रलोभन प्रभाव न डाल सके। उन्हें निराश जाना पड़ा। उन्होंने अपनी स्त्री- बच्चों को रानी के महल की अपेक्षा झाँसी के किले में अधिक सुरक्षित समझा।' [1]

झाँसी में सैनिकों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम

झाँसी के सैनिकों ने सात जून को शस्त्र उठाए। उन्होंने भारतीय सैनिकों का अपमान करनेवाले डिपटी कमिश्नर गार्डन, सार्जंट मेजर न्यूटन, तथा कैंपबेल को मौत के घाट उतार दिया। महारानी ने जिन अंग्रेज स्त्री-बच्चों को किले में रखा था जिन्हें नित्य भोजन बनवाकर भेजती थी उनकी भी जान सैनिकों ने ले ली।' [2]

झाँसी के अत्याचारों और हत्याकाण्डों के लिए अधिकतर अंग्रेज लेखकों ने रानी को ही दोषी माना है।" [3] लेकिन प्रेमी ने रानी को निर्दोष घोषित किया है। सैनिकों ने जो कार्य किया उससे रानी बहुत दुखी थी। इसलिए वह सैनिकों से कहती है - 'याद रखो कि देशप्रेम का अर्थ यह नहीं कि हम शत्रु के निरीह बच्चों का वध करते फिरें। हम हत्यारे नहीं, योद्धा हैं।'

स्वतंत्र झाँसी पर आक्रमण

ओरछा और दतिया की रियासतें झाँसी के निकट थीं। अंग्रेज गवर्नर ने ओरछा के महाराज को उकसाया और उसने झाँसी पर

---

1. रानी लक्ष्मीबाई -श्रीनिवासदास बालाजी हर्डीकर - पृ.68
2. Sepoy Mutiny, R.C. Majumdar, p.90.
3. History of Indian Mutiny, Vol. III p.126, Kaye & Malleson.

आक्रमण करने की तैयारी की । ओरछा नरेश के दीवान नत्थे खां भी अंग्रेजों के इशारे पर नाचता था। लक्ष्मीबाई उनकी धमकी से डरनेवाली नहीं थी । उसने तोपखाने विभाग के मेधावी गोसखां को आदेश दिया कि उसने जब अंग्रेजों को झांसी का गढ सौंपा था तब तैंतीस तोपें भूमि में गडवा दी थीं । उन्हें निकलवाकर मार करने योग्य बनाएं। शत्रु की समस्त सेना ओरछा फाटक के बीच किले की तरफ बढी। उसे इधर उधर फैलने का अवसर न मिला। इसलिए रानी ने ओरछा फाटक और सैयद फाटक की तोपों को शान्त रखकर शेष स्थानों से रुक रुक कर तोपें चलाते रहने का आदेश दिया। लाभ यह हुआ कि शत्रु ने समझा - ओरछा फाटक और सैयद फाटक के बीच रानी की तोपें नहीं और उसने उधर सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। शत्रु की सेना को बढने दिया। और जब वह पर्याप्त आगे बढ चुकी तब एक साथ रानी की तोपें आग उगलने लगीं । बंदूकों से गोलियों की वर्षा हुई और शत्रु के वक्षस्थलों को विदीर्ण किया गया। रानी ने ओरछेवालों के दांत खट्टे किए। बेचारे नत्थे खां को अपनी तोपें और शस्त्रास्त्र छोडकर भागना पडा। 'रानी तो नेपोलियन के समान रणकौशल में अद्भुत क्षमता रखती थी, ' ऐसा लिखकर प्रेमी ने रानी की सारी युद्धकुशलता को समेट दिया है । वह पहला अवसर था जब रानी रणक्षेत्र में उतरी थी।

सदाशिवराव के साथ संघर्ष

रानी का एक रिश्तेदार सदाशिवराव ने करेरा जाकर उस गढ पर अधिकार कर लिया। उसने अभिषेक कराया ही था कि महारानी विद्युत गति से उसके सिर पर जा धमकी। महारानी के सामने वह युद्ध में एक दिन भी टिक न सका। वह भागकर नरवर गया, किन्तु रानी ने उनका पीछा किया। सदाशिवराव ने सिंधिया सेना का शरण लिया, लेकिन सिंधिया की सेना भी सदाशिराव की रक्षा न कर पायी। महारानी ने नरवर

गढ़ में प्रवेश करके सदाशिवराव को बन्दी बनाया।" 1

नवाब अली बहादुर (रानी के पति के बड़े भाई का अवैध पुत्र) का देशद्रोही सेवक पीर अली के विश्वासघात ने रानी का विजय मार्ग कठिन कर दिया। पीर अली की प्रेरणा से, दूल्हाजी ने जानबूझकर रानी के गोला बारूद के जखीरे पर गोला छोड़ा और उसके बाद वह भाग जाना चाहता था कि गोरखों ने उसे मौत के घाट उतार दिया। रानी निराशा में डूब रही थी कि लक्ष्मणराव समाचार लाया कि उस रात को बेतवा के तट पर तात्या टोपे आ जाएँगे और ह्यूरोज की सेना पर आक्रमण करेंगे। [illegible] बेतवा के तट के पास की टोकरी पर जब ऊँची ज्वाला की लपटें दिखाई दें तब समझ लेना चाहिए कि वह ससैन्य आ गया है। उस समय रानी भी आक्रमण करें तो वह भी करेगा। जब शत्रु पर विजय पाने का अवसर आया तब रानी के पास युद्ध सामग्री का अभाव था। फिर भी उसने अंतिम दाँव लगाने का निश्चय किया।

तात्या की सेना असमय ही मैदान छोड़ बैठी। तात्या को आशा थी कि उसके बेतवा पार करते ही झाँसी की सेना अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर देगी और उसे सुव्यवस्थित रूप से मेरा सामना करने का अवसर प्राप्त नहीं होगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। तात्या की योजना धराशायी हो गई।

<u>झाँसी में अंग्रेजों का अत्याचार</u>

पच्चीस जनवरी को अंग्रेजों ने गहरा संग्राम प्रारंभ किया। अंग्रेजों ने सारे दिन और सारी रात गोले बरसाए। ह्यूरोज ने

- -

1. रानी लक्ष्मीबाई - श्रीनिवास बालाजी हार्डिकर - पृ. 85-86

सोचा था कि प्रथम दिन की अग्नि वर्षा से ही महारानी साँस छोड़ेगी। वह आशा नहीं कर सकता था कि युद्ध ख्यो मैदान में अधिक समय तक ऐसा प्रसिद्ध अंग्रेजी सेना के सम्मुख डटी रहेगी। छब्बीस के दोपहर को अंग्रेजी सेना ने नगर की दक्षिणी फाटक पर इस जोर से गोले बरसाये कि उस तरफ की रानी की तोपें ठंडी हो गईं। वहाँ खड़े रहने का साहस कोई न कर सका। जब पश्चिमी फाटक पर नियुक्त तोपची गौरखाँ ने अद्भुत पराक्रम दिखाया था। उसने अपनी तोप का मुँह उस ओर कर शत्रु के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। और अंग्रेजी सेना के सबसे अच्छे तोपची को उड़ा दिया। अंग्रेजी तोपें ठंडी हो गईं। फिर छः दिन तक अंग्रेजों पर भयंकर अग्नि-वर्षा की गई और अगणित फिरंगियों को मृत्यु का ग्रास बना दिया। इसके बाद अंग्रेजी सेना अधिक उत्साह से तोपें दागने लगीं। उन्हों ने ग्वालियर के महाराजा से गढभंजक तोपें भी माँग ली थीं। सातवें दिन संध्या को शत्रु के गोलों ने नगर के बाईं ओर की दीवार का एक भाग गिरा दिया और उस ओर की झाँसी की तोपें ठंडी हो गईं। किन्तु रात के समय ग्यारह बजे मिस्त्री कम्बल ओढ़े दीवाल पर पहुँचे और प्रभात होने के पूर्व दीवार को पूर्ववत् बना दिया। झाँसी की तोप सूर्य की प्रथम किरण के प्रकट होने के पहले ही दनदनाने लगी। और शत्रु सेना में प्रलय का दृश्य उपस्थित किया।

आठवें दिन सबेरे फिरंगी सेना शंकर किले की तरफ बढ़ी। दूरबीनों की सहायता से रानी के किले के अन्दर अंग्रेजों ने पानी के झरने का पता लगाकर उस पर गोले बरसाए। छः सात आदमी पानी भरने गए थे। उनमें चार वहीं ढेर हो गए। - बाकी बर्तन छोड़कर भागे। चार घंटे तक किसीको नहाने धोने के लिए पानी न मिला। किन्तु शीघ्र ही वह कठिन स्थिति समाप्त हो गई। महारानी ने अपने पश्चिमी और दक्षिणी फाटक के तोपचियों को फिरंगियों की शंकरगढ़ पर स्थित तोपों पर अग्निवर्षा करने की आज्ञा दी। तोपचियों ने शत्रु की तोपों को ठंडा

कर दिया, तब लोग चैन से पानी भर सके।

महारानी की दूरदर्शिता, साहस, धैर्य और पराक्रम के आगे ह्यूरोज धैर्य छोड बैठा। तब उसने अपने सबसे अधिक कारगर अस्त्र का प्रयोग किया। उनका लक्ष्य था भारतीयों में पारस्परिक फूट और द्वेष उत्पन्न करना। ह्यूरोज ने अपने भेदिये नवाब अली बहादुर से साँठ गाँठ कर कुछ देशद्रोहियों को रानी की सेना में नियुक्त करा दिया था। उन्होंने रानी के पक्ष के एक तोपची को फोड लिया। उसकी सहायता से ही एक बारूद के भंडार पर गोला गिराने में वह सफल हुआ और रानी के कारखाने पर भी गोला गिराया जिससे कारखाने में गोला बारूद बनानेवाले तीस आदमी और आठ स्त्रियां वीरगति पा गए। इस समाचार से गढ के नागरिकों में घोर कोलाहल प्रारंभ हो गया। किन्तु उस विषम परिस्थिति में भी सेना ने साहस छोडने के स्थान पर भीषण संग्राम किया। - - महारानी में उस दिन बिजली भर गई थी। महारानी की उपस्थिति से सिपाहियों का साहस बढता और वे निरंतर युद्धरत रहते। किन्तु अन्त में दो दिन बाद एक विश्वासघातक ने दक्षिण द्वारा अंग्रेजों के लिए खोल दिया।

झाँसी से लक्ष्मीबाई का प्रस्थान

महारानी का झाँसी से प्रस्थान का दृश्य अंग अंग में रोमांच पैदा करनेवाला साहस का अद्भुत उदाहरण था। हथियार बाँधे हुए मरदाना वेष में, दामोदर राव को पीठ से कसे हुए वे किले की दीवार पर से हाथी पर कूद पडीं और फिर अपने प्रिय सफेद घोडे पर सवार हुईं। केवल दस सवार अपने साथ लिए। लेफ्टिनेंट बेकर को, जो उनका पीछा कर रहा था, रानी ने एक प्रहार से धराशायी कर दिया। फिर भी अंग्रेज सवारों ने उनका पीछा नहीं छोडा। झाँसी से कालपी तक एक सौ दो मील का फासला रानी को तय करना पडा। कालपी आते ही रानी का प्रिय घोडा चल बसा।

महारानी के अधीन कुल ढाई सौ फुर्तीले सैनिकों की टुकडी थी। इसी छोटी सी टुकडी से भी महारानी ने कौंच और कालपी दोनों स्थानों पर शत्रु सेना में प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया था। वह स्वयं हरा-वल में रहकर शत्रु मुंडों को ज्वार के भुट्टों के समान काट रही थी। कालपी से रानी तात्या टोपे के साथ अपनी बची हुई सेना और अस्त्र-शस्त्र लेकर कालपी से ग्वालियर पहुँची। रानी और तात्या दोनों ग्वालियर के किले पर अधिकार लेने के पक्ष में बहुत पहले से थे। किन्तु रावसाहब को संदेह था कि ग्वालियर जैसे अजेय दुर्ग पर टूटी फूटी सेना द्वारा कैसे अधिकार कर पाएँगे। ग्वालियर के अधिकांश सैनिकों में देशप्रेम संचारित हो उठा। और वे न्याय के साथी बन गए। ग्वालियर के दुर्ग पर स्वाधीन भारत का झंडा फहरा रहा। लेकिन रावसाहब विजय के उपलक्ष्य में रात दिन रागरंग में डूबने लगे। रानी ने रावसाहब की आज्ञा की प्रतीक्षा न करके, अपना अन्तिम कर्तव्य निभाने के लिए नेतृत्व अपने ही हाथ में ले लिया।

लक्ष्मीबाई का बलिदान

महारानी ने ग्वालियर के युद्ध में अधिक पराक्रम दिखाया। वह अश्व पर बैठकर मुंह से लगाम पकडे, दोनों हाथों से तलवार चलाई हुई जिधर प्रवेश करती थी, उधर शत्रु दल काई की तरह फट जाता था। ऐसा लगा मानों दुर्गा धरती पर उतर आई हो। उनके अनेक घाव हो गए थे किन्तु घायल अवस्था में भी उन्हों ने उस अंग्रेज का मस्तक काट गिराया। रानी ने अपने घोडे को खड्ड के पार कुदाना चाहा, लेकिन वह कूद न पाया और महारानी घोडे के साथ खड्डे में जा गिरी। एक संत बाबा गंगादास ने महारानी को अपनी कुटी में ले आया जिससे रानी का पवित्र शरीर मरने के बाद भी फिरंगियों के अपवित्र हाथ लगने से बच गया। महारानी पुरुष वेश में थी। इसलिए शत्रु उन्हें पहचान न पाए। बाबादास की कुटी में ले आने

के कुछ ही क्षण पश्चात् रानी संसार से नाता तोड़ लिया।" [1]

इस नाटक में प्रेमी ने लक्ष्मीबाई के चरित्रचित्रण में विशेष रुचि दिखाई है। शौर्य की अवतार चंडिका सी शक्तिशालिनी महारानी लक्ष्मीबाई का स्वतंत्रता-प्राप्ति अभियान ही नाटक की मुख्य कथा है। लक्ष्मीबाई की बहादुरी से देश का बच्चा-बच्चा परिचित है। प्रेमी की राय में जिस देश में महारानी लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगना अवतार लेती है वह चिरकाल तक पराधीन नहीं रह सकता। लक्ष्मीबाई ने जीवन के अन्तिम क्षण तक शत्रु दल का संहार किया था, उसने अपने प्राणों की चिन्ता कभी नहीं की। उसने निराश होना नहीं जाना। स्वार्थ एवं कायरता ने जिन अगणित देशवासियों की विवेक-बुद्धि का हरण लिया, उनकी आँखें खोलते हुए रानी ने अपनी बलि दे दी। वास्तव में महारानी का बलिदान इतिहास में अमर रहेगा।

हमारा सम्पूर्ण भारत एक है। प्रदेशगत भेद से परे है। सर्वोपरि है, उसके लिए हमें सर्वस्व यहाँ तक कि जीवन भी उत्सर्ग करने के लिए प्रत्येक क्षण प्रस्तुत रहना चाहिए। यही महारानी लक्ष्मीबाई का 'अमर बलिदान' पुकार पुकार कर हमसे कह रहा है।

प्रेमी ने यह सिद्ध किया है कि रानी झाँसी राज्य पर अपने अधिकार को रखने की निजी स्वार्थ प्रेरणा से नहीं, एक व्यापक उद्देश्य के लिए लड़ी।

यह प्रेमी का शुद्ध ऐतिहासिक नाटक है। इसमें प्रेमी इतिहासकार उनके नाटककार से कहीं कहीं अधिक प्रबल हो उठा है।

---

1. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर - विनायक दामोदर सावरकर - पृ.430-436

र क्त दा न

1857 के भारतीय स्वतंत्र्य संग्राम में मुगल सम्राट बहादुरशाह 'जफर' ने जो सराहनीय त्याग किया और क्रियात्मक साथ दिया उसी रक्तरंजित अध्याय की एक झांकी 'रक्तदान' में मिलती है।

क्रान्तिकारी नेताओं की बादशाह से भेंट

मेरठ में अंग्रेजो की जो भारतीय सेना थी, वह विद्रोह करके सम्राट के दर्शन के लिए आ पहुंची। उन्होंने प्रार्थना की कि वे उनका साथ दें। उस समय तक बादशाह विद्रोह की बातों से अनभिज्ञ था। इतिहासकार भी ऐसा लिखता है।" ।

मेरठ के सैनिकों के विद्रोह का कारण

1855 मई 31 को अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र उठाने का निश्चय निर्धारित किया गया था। लेकिन बीस दिन पहले ही मेरठ की 22वें व 20 वें नम्बर की सेना उठ खड़ी हुई। अंग्रेजी अफसरों ने उन्हें समय से पूर्व शस्त्र उठाने के लिए बुलाकर उन्हें आज्ञा दी कि नये चर्बी लगे कारतूसों को दांतों से काटें। 5 सैनिकों को छोड़कर बाकी सभी ने आज्ञा का उल्लंघन किया। उन को दस वर्ष कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। इससे सभी भारतीय सैनिकों का हृदय भीतर ही भीतर खौल उठा। फिर उन्होंने उस

---

1. . . . (he) was not guilty of any over act of hostility against the British till the morning of May, 11, 1857 when at 8'O8clock mutineers from Mirat arrived at Delhi. They made straight for the palace . . . " Sepoy Mutiny, R.C. Majumdar, p.229.

अत्याचार को सह लिया। लेकिन जब ये सैनिक बाजार में सैर करने गए तो मेरठ की महिलाओं ने उन्हें ताने दिये ; उनसे प्रभावित होकर वे अपने पुरुषार्थ का परिचय देने के लिए पागल हो उठे। उन्होंने मेरठ में अनेक अंग्रेज अधिकारियों को मार डाला। उनके बंगलों में आग लगा दी। जेलखाना तोड़कर सारे बन्दियों को मुक्त कर दिया जो शहर में उपद्रव करते घूम रहे थे। दिल्ली में पहुंचकर कुछ सैनिकों ने अंग्रेजी अधिकारी टाड और रिप्ले को मौत के घाट उतार दिया। दरियागंज में अंग्रेजों के जितने बंगले थे उन सबमें आग लगा दी। यह प्रसंग इतिहास सम्मत है। [1]

क्रान्ति के विस्फोट के दुष्परिणाम से बादशाह भली भांति परिचित थे। यद्यपि वे पहले क्रान्तिकारियों का साथ देने से हिचकते थे, फिर भी बाद में उनके नेतृत्व के लिए उद्यत हो गए।

दिल्ली में क्रान्ति :-

दिल्ली में अंग्रेजों की सैनिक छावनी में भारतीय जवानों की जो 38, 54, और 74 नंबर की सेनाएं थीं, वे भी क्रान्तिकारियों के झंडे के नीचे आ गईं। उन्होंने अंग्रेजों का दिल्ली में स्थित बैंक लूट लिया। बाद में अंग्रेजों के शस्त्रागार पर आक्रमण किया जिसमें नौ लाख कारतूस, दस हजार बंदूकें और विस्फोटक पदार्थों का विराट भंडार था। बादशाह ने अंग्रेज अधिकारी विलाबी को आज्ञा दी कि वह शस्त्रागार उन्हें सौंप दे, लेकिन उसने इनकार किया। शस्त्रागार की रक्षा का कोई मार्ग न देखकर विलोबी ने अपने सहायक स्कली को शस्त्रागार में आग लगा देने की आज्ञा दी। उन लपटों में विलाबी और स्कली तथा अन्य अंग्रेज सैनिक जलकर भस्म हो गए, किन्तु साथ ही 25 भारतीय सैनिकों एवं तीसों नारियों

---

1 स्वतंत्र दिल्ली - (1857) डा. सैयद अतहर अब्बास रिजवी - पृ.40-41
द्वितीय संस्करण- 1968

की जान भी गई। आसपास के सेकड़ों मकान चकनाचूर हो गए। विस्फोट के पहले ही, क्रान्तिकारी शस्त्रागार से आधे से अधिक सामग्री उठा लाने में सफल हुए थे। ' [1]

बहादुरशाह द्वारा पुंजाब में भेजे गए दूतों का वध किया जाना इतिहास सम्मत घटना है। ' [2]

मियामीर एवं पेशावर की स्थिति

लाहौर के निकट मियामीर की भारतीय सेना विद्रोह करने के अवसर की प्रतीक्षा में थी, लेकिन 13 मई को अचानक ही उन्हें परेड पर बुलाया गया। अंग्रेजों ने अपना तोपखाना ऐसे स्थानों पर रखा कि अगर भारतीय सेना जरा भी गड़बड़ करे तो उसे भून डाला जाए। बाद में सेना के शस्त्र रखवा लिए गए और उसे बरखास्त किया गया। पेशावर में भी 21, 24, 27 नंबर की भारतीय सेनाओं के शस्त्र रखवा लिए गए, क्यों कि वहां गोरी सेना भारतीयों से कहीं अधिक थी और गोरी सेना ने भारतीय सेना को अचानक ही घेर लिया। ' [3]

मरदान की स्थिति

मरदान में 55 नंबर की भारतीय सेना का अंग्रेजी अधिकारी नहीं चाहता था कि उसकी सेना के शस्त्र छीने जाएं, उसकी बात उच्च अधिकारियों ने नहीं मानी, अंग्रेजी अधिकारी ने आत्महत्या कर ली। भारतीय सेना भड़क उठी, उन्होंने खजाना लूट लिया, शस्त्रों से सज्जित हो

---

1. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर - विनायक दामोदर सावरकर - पृ. 106-108
2. वही पृ. 128-134
3. वही पृ. 135-137

दिल्ली की ओर रवाना हुई। अंग्रेजी सेनापति निकलसन ने उन्हें घेर लिया। और तोप के गोलों से उड़ा दिया, भारतीय सैनिकों के हाथ, पैर, सर, हवा में उड़ने लगे। पूरी पलटन स्वतंत्रता की बलिवेदी पर चढ़ गई। '[1]

लाहौर की दारुण स्थिति

लाहौर की 23 नंबर की पलटन ने विद्रोह किया। सैकड़ों सिपाहियों को गोरी सेना के गोलों के शिकार बनने पड़े। बचे हुए सैनिक प्राण रक्षा के लिए भाग खड़े हुए। और रावी नदी पार करने का प्रयत्न करने लगे। अंग्रेज जो संख्या कई गुना अधिक थे उनपर गोलियां बरसाने लगे। दो सौ बयासी भारतीय सैनिक बंदी बनाए गए और 50 रावी के गर्भ में समा गए। उन बचे हुए सैनिकों को घनघोर वर्षा में अजनाले लाया गया। मध्य रात्री में तहसील में बंद किया गया। 66 सैनिक तहसील के कोटे से गुंबद में बंद कर दिए गए। प्रातःकाल इन्हें बाहर निकालकर तोप के गोलों से उड़ाया जाने लगा, लेकिन जब गुंबद में बंद किए गए सैनिकों को निकाला जाने लगा तब उनमें से कोई हिला भी नहीं, क्यों कि हवा न मिलने से वे पहले ही मर चुके थे। पास के एक कुएं में 252 लाशें डाल दी गई और कुआं मिट्टी से भर दिया गया। अंग्रेजों की इस कुटिलता की झलक होम्स कृत 'हिस्ट्री आफ दि म्युटिनी' में मिलती है।" [2]

पटियाला, नाभा और जीन्द के राजाओं के पास भेजे गए बहादुरशाह के दूतों को मार डालना, उन राजाओं का खुलकर अंग्रेजों का सहायक बन जाना,[3] राजस्थान के राजा का सब मुगल साम्राज्य

---

1. 1857 का स्वातंत्र्य समर - सावरकर - पृ. 135-137
2. होम्स कृत 'हिस्ट्री आफ दि म्युटिनी' पृ. 363
   (1857 भारतीय स्वातंत्र्य समर - सावरकर - पृ. 139, 140 से उद्धृत)
3. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर - सावरकर - पृ. 118

का स्तम्भ बनकर रहना, [1] ग्वालियर एवं इन्दौर के राजाओं का भी अँग्रेजों से सौदा करना, [2] इन दोनों राजाओं की प्रजाओं का अँग्रेजों से विद्रोह करना, [3] अलीगढ, मैनपुरी, नसीराबाद [4] बरेली, शाहजहाँनाबाद, मुरादाबाद, बदायूं, [5] आजमगढ, गोरखपुर, बनारस- जौनपुर, इलाहाबाद [6], लखनऊ , नीमच आदि सभी स्थानों पर अँग्रेजों के विरुद्ध विप्लव की ज्वाला प्रज्वलित होना, सभी स्थानों पर क्रान्तिकारियों का बादशाह की सेना के झंडे के नीचे एकत्र होना पूर्ण रूप से ऐतिहासिक घटनाएं है ।

बादशाह का भारत के सभी राजाओं , और रईसों के प्रति घोषणा-पत्र

इस घोषणा-पत्र में बहादुरशाह ने अँग्रेजों के अत्याचार, अन्याय और दुष्टतापूर्ण मनसूबों का यथार्थ चित्र खींचा था। "स्वतंत्रता संग्राम में राजा लोग उनकी क्या सहायता करेंगे, यह निश्चित रूप से उन्हें लिखने का आदेश भी था। प्रजा के लिए भी उन्होंने एक प्रमाण-पत्र भेजा था जिसमें लिखा था कि वे आपस के सारे भेदभाव भुलाकर अपने शत्रु को बाहर निकालने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर रणभूमि में कदम बढ़ाएं। " [7]

बहादुरशाह की शासनव्यवस्था

बादशाह ने नगर में सुव्यवस्थित और न्यायपूर्ण शासन

---

1. Sepoy Mutiny, R.C. Majumdar, p.92.
2. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर - सावरकर - पृ० 242-243
3. वही पृ० 242
4. वही पृ० 147-152
5. वही पृ० 160
6. वही पृ० 162-189
7. स्वतंत्र दिल्ली - डा० सैयद अतहर अब्बास रिजवी- पृ० 65-66

स्थापित किया उसका पूरा विवरण नाटककार ने पहले अंक के दूसरे दृश्य में प्रस्तुत किया है जो कि इतिहास के अनुसार ही है। " [1]

बादशाह का गोवध निषेध

बादशाह जानते थे कि यदि ईद के दिन गोवध हो ही गया तो उनकी सेना भी दो भागों में बंट जाएगी, नगर निवासी तो बँटेंगे ही, और दिल्ली की गलियों में रक्त की बाढ़ आ जाएगी जिसमें भारत की स्वाधीनता का सपना भी बह जाएगा। अतः उन्होंने शहर के कोतवाल के पास घोषणापत्र भेज दिया कि ईद के पवित्र त्योहार पर कोई गाय जबह न की जाए, जो उसके विरुद्ध कार्य करेगा, उसे तोप के मुंह से बांधकर उड़ा दिया जाएगा—--- गोवध निषेध की घोषणा का जो विस्तृत विवरण नाटक में है, वह 'जीवनलाल' के विवरण के अनुसार ही रखा गया है।' [2]

मिर्जा अबूबकर के विरुद्ध एक नागरिक का बादशाह के समक्ष प्रार्थना-पत्र समर्पित करने का जो प्रसंग है वह ट्रायल' (ट्रायल आफ दि किंग आफ डिल्ली) के अनुसार ही है।' [3]

बख्तखाँ का बादशाह की सेवा में उपस्थित होना

बख्तखाँ का अपने साथ चार पदाति पलटनें, सात सौ अश्वारोही सैनिक, छः घुड़चढ़ी तोपें, तीन बड़ी तोपें और अस्त्र-शस्त्र लेकर आना, [4] बादशाह का उनको मुख्य सेनापति तथा दिल्ली का मुख्य शासक नियुक्त

- -

1. स्वतंत्र दिल्ली - डा॰सैयद अतहर अब्बास रिजवी- पृ॰62-63, 74, 81-82
2. वही पृ॰ 111 से उद्धृत
3. ट्रायल - पृ॰ 12 वही पृ॰ 154 से उद्धृत
4. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर - सावरकर - पृ॰276

करना,[1] शाहजादा मिर्जा मुगल एवं हकीम एहसानुल्लाखाँ का बादशाह के निश्चय के विरुद्ध आवाज उठाना, बादशाह का बख्तखाँ के सामने पाँच अपेक्षाएं रखना, बख्तखाँ का यह स्पष्ट कहना कि उनका शासन कठोर होगा, यदि शाहजादे हुजूरों ने भी नागरिकों से अपने लिए धन प्राप्त करने की कोशिश की तो उनपर भी शासन दण्ड चलेगा, उस समय बादशाह को उनपर अपना पितृप्रेम न प्रकट करना चाहिए - ये सब प्रमाणिक घटनाएं है ".[2] निर्धन प्रजा के कष्टों को ध्यान में रखकर बख्तखाँ का बादशाह से यह प्रार्थना करना कि नमक और शक्कर पर से कर उठा दें, यह प्रसंग भी इतिहास के अनुसार है।'[3]

<u>बख्तखाँ के विरुद्ध मिर्जा मुगल तथा एहसानुल्लाखाँ की शिकायत</u>

नागरिकों में आत्मविश्वास और अपनी रक्षा स्वयं करने की भावना जागृत करने के उद्देश्य से बख्तखाँ ने आदेश दिया था कि वे सशस्त्र तथा संगठित होकर बरेली की सेना के अधीन तैयार रहें। एहसानुल्लाखाँ ने यह आरोप लगाया कि इस आदेश के फलस्वरूप नागरिकों को युद्धभूमि में प्राण गंवाने जाना पडेगा।[4] दूसरा आरोप था कि उसने सेठ साहुकारों से बलपूर्वक धन एकत्र किया और उसे राजकोष में जमा नहीं किया।'[5]

एहसानुल्लाखाँ का हडसन का साथ देना एवं निरन्तर क्रान्ति को असफल बनाने की चेष्टा करना भी इतिहास सिद्ध है।'[6]

---

1. सेपाय म्यूटिनी - आर॰सी॰मजुमदार - पृ॰235
2. स्वतंत्र दिल्ली - अब्बास रिजवी - पृ॰153-155
3. वही
4. ट्रायल - पृ॰11 -(स्वतंत्र दिल्ली पृ॰ 156 से उद्धृत)
5. स्वतंत्र दिल्ली - पृ॰156-157
6. वही पृ॰ 162

क्रान्तिकारियों की पराजय

अंग्रेजी सेना दिल्ली को प्रत्येक दिशा से घेर लिया। शत्रु ने गुप्तचरों का ऐसा जाल बिछाया कि कोई भी योजना गुप्त नहीं रही। बख्त-खाँ ने शत्रु सेना के आगे मस्तक झुकाने की अपेक्षा शत्रु सेना को चीरता हुआ निकल जाने का निश्चय किया और बहादुर शाह से अपने साथ चलने की प्रार्थना की।(1) लेकिन बादशाह ने मिर्जा इलाहीबख्श का परामर्श मानकर अंग्रेजों के समक्ष आत्मसमर्पण कर देने के संबंध में विचार किया। [2]

किले में षडयन्त्र, बादशाह को बन्दी बनाना, शाहजादों की हत्या

बख्तखाँ को विदा के दूसरे दिन मलिका जीनत महल, इलाहीबख्श हकीम एहसानुल्ला खाँ और सभी शाहजादों परामर्श हुआ। ये सब हुमायूं के मकबरे में चले गए। जब बादशाह मकबरे पर पहुँचे तो हडसन थोड़ी सी सेना के साथ उन्हें बन्दी बनाने आया। उसने अपने आदमियों को मकबरे के द्वार के निकट खंडहरों में छुपा दिया और अपने दो दूत मलिका जीनत महल के पास भेजा यह आश्वासन देने कि यदि सम्राट अपने आप को अंग्रेजों के सुपुर्द कर देंगे, तो उनकी मलिका की और जवांबख्त के प्राणों की रक्षा की जाएगी। हडसन ने स्वयं जीनतमहल के पास आकर कहा कि यदि आज्ञा को न माना गया तो सम्राट को कुत्ते की मौत मार डाला जाएगा। शाहंशाह, मलिका और जवांबख्त को पालकियों में बिठाकर अंग्रेज ले गए। तभी देशद्रोही, कृतघ्न विश्वासघाती मौलवी रजब अली ने आकर कहा कि अन्य शाहजादे मकबरे में रह गए हैं। मिर्जा मुगल, मिर्जा अबूबकर, और मिर्जा खिज्र सुलतान को हडसन ने बन्दी बनाया। जब शाहजादों ने देखा कि

---

1. 1857 का स्वातंत्र्य समर - सावरकर - पृ.पृ.320-321

2. स्वतन्त्र दिल्ली - पृ. 177 से उद्धृत

बादशाह ने अपने आप अंग्रेजों को समर्पित कर दिया तो वे हतप्रभ हो गए। उनकी बुद्धि जड हो गई। शाहजादों को पालकी में ले जाते समय मार्ग में नीचे उतारा गया। उनके कपडे उतार लिये गए। हडसन ने स्वयं तानों शाहजादों को गोली का शिकार बनाया। उनकी लाशें तडपने लगीं। कहा जाता है कि हडसन ने शाहजादों का रक्त चुल्लू में लेकर पिया। हडसन के प्रतिशोध की अग्नि शान्त नहीं हो पाई। एक थाल में मिर्जा मुगल, मिर्जा अबूबकर और मिर्जा खिज्र सुलतान के कटे हुए सर रखकर बहादुरशाह जफर के चरणों में नई भेंट के रूप में उपस्थित किया गया। यह दृश्य देखकर बादशाह कहते है - - " तैमूर की औलाद इसी प्रकार सुर्ख होकर बाप के सामने आया करती थी। आज हमारा सीना आनन्द से फूला न समाता। यह रोने का नहीं , हंसने का समय है - - यह 'रक्तदान' व्यर्थ नहीं जाएगा।' [1]

निष्कर्ष

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व की विवेचना के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने इतिहास की पुस्तकों का तो पर्याप्त अध्ययन किया था। उनमें ऐसी प्रतिभा थी कि वे वातावरण के माध्यम से ऐतिहासिक घटनाओं तथा पात्रों को सजीवता एवं [illegible] यथार्थता प्रदान कर सकते थे। उन्होंने अपने नाटकों में अतीत की उन्हीं घटनाओं, विचारधाराओं और व्यक्तियों का समावेश किया है, जिन्होंने भारतीय इतिहास में किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। और उसके विकास में योग किया है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास अपनी समस्त विशिष्टताओं सहित सजीव हो उठा है।

ऐतिहासिक नाटकों के सृजन के लिए उनमें वर्णित गत

---

1. स्वतंत्र दिल्ली - पृ. 177 से उद्धृत

युगीन वातावरण, कथा तथा पात्रों का चित्रण अपेक्षित होता है। प्रेमी के नाटकों में इन तीनों का समन्वय है। नाटक के कथानक में जो कल्पना प्रधान अंश है वह इतिहास से घुल मिल कर एकाकार हो गया है। अत: इतिहास संबंधी असंगति अल्प मात्रा में दीख पडती है। दो तीन नाटकों को छोडकर और किसी नाटक में कहीं भी अनियन्त्रित कल्पना का प्रयोग नहीं हुआ है। इसलिए डा॰ धनंजय ने लिखा है, " दो चार नाटक ऐसे भी निकल आएँगे जिनमें इतिहास की गलत व्याख्या की गई है, ऐतिह्य के आघात पहुँचाया गया है, नाटकीय संरचना दोषपूर्ण हो गई है, पर समग्र रूप से विचार करने पर इस दोष का विकल्प निकल आता है। " [1] प्रेमी ने, इतिहास का गला घोटनेवाले नाटककारों का विरोध करते हुए 'प्रतिशोध' की भूमिका में लिखा है - यह मैं मानता हूँ कि ऐतिहासिक नाटकों और उपन्यासों में भी लेखक कुछ तोड मरोड कर सकता है, किन्तु स्थान, काल, नाम और घटनाओं पर इतनी जबर्दस्ती तो असम्य है।'' [2] जहाँ इतिहास की जानकारी अधिक थी वहाँ उन्होंने कल्पना के लिए कम स्थान दिया, जहाँ इतिहास कम ज्ञात था वहाँ कल्पना का अधिक प्रयोग भी किया।

ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं को उपस्थित करते समय प्रेमी की दृष्टि कथा के नायक के व्यक्तित्व पर केन्द्रित रहती थी। उनके अधिकांश नायकों ने इतिहास में एक गंभीर मोड उपस्थित किया है। जनजीवन में एक विशिष्ट गतिशीलता पैदा की है। उनके रोम रोम में स्वाधीनता की साधना रम रही थी। और स्वातंत्र्य विद्युत से उनकी सम्पूर्ण काया परिपूर्ण थी। हिन्दुओं पर मुगलों के और जुल्म के विरुद्ध साहस, शौर्य एवं त्याग, उत्सर्ग के आदर्श प्रस्तुत करनेवाले जिन हिन्दू वीरों एवं जननायकों को प्रस्तुत किया है, उनमें राणा

---

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा॰ धनंजय- पृ॰374
2. प्रतिशोध - प्रेमी - दो शब्द - पृ॰ 7, 8, तीसरा संस्करण - 1956

सांगा, अमरसिंह राठोर, हम्मीरसिंह, शिवाजी, तानाजी, शंभाजी आदि पात्र आते हैं । ये भारतीय विभूतियाँ अपने चरित्र बल एवं सफलताओं पर माथा ऊँचा करती हैं ।

प्रेमी की दृष्टि उन पात्रों की ओर भी गई थी जिनकी इतिहास में किसी कारण उपेक्षा हुई थी, यद्यपि वे चरित्र महत्वपूर्ण थे। 'प्रतिशोध' की भूमिका में यह बात व्यक्त करते हुए प्रेमी ने लिखा है कि बुन्देलखण्ड का प्रामाणिक एवं विस्तृत इतिहास उपेक्षित सा रहा है। उस इतिहास को प्रकाश में लाने के लिए चंपतराय एवं छत्रसाल के वास्तविक उज्वल चरित्र को अंकित किया गया है। 'विदा' में भी प्रेमी ने इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित पात्रों का विस्तारपूर्वक परिचय दिया है। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता के प्रति प्रकट विद्रोह करने का साहस औरंगजेब की सन्तानों - अकबर और जेबुन्निसा ने किया जो कि इतिहास में उपेक्षित सा रहा। मेवाड के पारस्परिक कलह को मिटाने के लिए राजकुमारी कृष्णा ने जो बलिदान किया था उस घटना की ओर भी अधिकांश नाटककारों का ध्यान न गया था। 'विषपान' की रचना द्वारा प्रेमी ने इस अभाव की पूर्ति की ओर कृष्णा के चरित्र का उज्वल पक्ष अंकित किया।

प्रेमी ने ऐतिहासिक घटनाओं तथा तथ्यों के पीछे निहित मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं की भी कल्पना की है। इतिहास के महारथियों को व्यक्ति मानव के रूप में चित्रित करके चिरन्तन सत्यों का उद्घाटन किया है। इतिहासकार अलाउद्दीन खिलजी के असफल दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में मौन है। "साँपों की सृष्टि' में प्रेमी ने उसे वाणी देकर मुखरित किया है।

साम्प्रदायिकता के मोर्चे में पड़कर प्रेमी ने ऐतिहासिक पात्रों के साथ कभी अन्याय नहीं किया है। उनकी राष्ट्रीयता हिन्दू राष्ट्रीयता नहीं थी। उन्होंने मुगल शासकों के दुर्गुणों का चित्रण किया है ।

साथ ही उनके भीतर स्थित मानव और मानवीय भावनाओं का परिचय भी दिया है। वीर राजपूतों के उच्चादर्शों एवं अलौकिक गुणों के चित्रण के साथ उनके उन दुर्गुणों की ओर भी संकेत किया था कि जरा जरा सी बातों पर तलवारें खिंची जाती थीं, उनमें राजनैतिक एकता का अभाव था, पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष की मात्रा अधिक थी।

इतिहास के प्रति प्रेमी की नैतिकतावादी दृष्टि रही थी। यूनानी इतिहासकार थ्यूसिडाइडीस ने इतिहास को लोकोपयोगी शिक्षा का साधन माना था। प्रेमी का ऐतिहासिक चिन्तन इसी स्तर का था।" [1] शपथ की भूमिका में उन्होंने व्यक्त किया है - - "हमें अपने देश के इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिए। इतिहास के अध्ययन का अर्थ तिथियों, घटनाओं, और राजाओं के नामों को याद कर लेना भर नहीं। इतिहास तो हमें बताता है कि हमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं - किस तरफ जाने में पतन है, किधर जाने में उत्थान - कहाँ मरण है, कहाँ जीवन।" [2]

प्रेमी के नाटकों में वातावरण का चित्रण भी यथार्थ बन पड़ा है। मुगल एवं राजपूत कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ तथा उस काल के शासन प्रबन्ध, राजा के अधिकारों, युद्ध विधानों, उत्सवों आदि का यथार्थ चित्र उनके नाटकों में प्राप्त होते हैं। उनके नाटकों में वातावरण निर्माण से अधिक ऐतिहासिकता मिलती है।

मुसलमान ढंग की पोशाक, फारसी मिश्रित भाषा, बादशाहों की छावनी, बादशाहों के महल, वहाँ की बेगमों के षडयन्त्र, और

- -

1. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व - डा. धनंजय

2. शपथ - भूमिका - पृ. 6 द्वितीय संस्करण 1854

विलास इत्यादि का वर्णन पढ़कर पाठक मुगलकालीन वातावरण में विचरण करने लगते हैं। निष्कर्ष यह है कि हरिकृष्ण प्रेमी ने अतीत के जिन कालखण्डों को अपने नाटकों में चित्रित किया वे अपनी यथार्थता के साथ समग्र रूप में सजीव हो उठे हैं। इतिहास के पात्र एवं घटनाएँ अपनी विशिष्टताओं में जीवन्त एवं गतिशील दृष्टिगत होते हैं। और ऐसा लगता है कि युग अपनी कथा स्वयं कह रहा है।

उ प सं हा र

पिछले अध्यायों में हमने हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों के भावपक्ष का विशद एवं व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत किया है और निष्कर्ष निकालने की भरसक चेष्टा भी की है।

यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि हिन्दी नाटक के क्षेत्र में हरिकृष्ण प्रेमी का स्थान क्या है? उनकी देन क्या है? तथा उनके नाटकों की उपलब्धियाँ क्या क्या हैं ?

पच्चीस ऐतिहासिक नाटक तथा तीन सामाजिक नाटक प्रेमी की महत्वपूर्ण देन है। प्रेमी के हृदय में अपने कराहते देश के लिए तथा पीड़ित समाज के लिए टीस थी जिसे वे अपने नाटकों के द्वारा वाणी देना चाहते थे। इसलिए उनके नाटकों में युग का स्वर है, जीवन का ठोस धरातल है तथा जनता के लिए जागृति का सन्देश है।

किसी भी ऐतिहासिक नाटक में यदि अतीत सजीव लगे, इतिहास के पात्र और घटनाएँ अपनी विशिष्टताओं में जीवन्त एवं गतिशील दृष्टिगत हों, कथा का आनन्द उपलब्ध हो और ऐसा लगा कि युग अपनी कथा स्वयं ही कह रहा हो तो यह नाटक की सफलता का द्योतक है। प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में उपर्युक्त सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं ।

इतिहास तत्व और नाट्यकला दोनों कसौटियों पर प्रेमी के नाटक सफल सिद्ध होते हैं । इतिहास की आत्मा की रक्षा करते हुए प्रेमी ने कल्पना का उपयोग किया है। इतिहास तत्व की रक्षा करने के लिए उनमें जो क्षमता थी, वह हिन्दी के इने गिने नाटककारों में ही मिलती है। उन्होंने इतिहास के महोदधि के गहरे पानी में पैठकर सीपियों में से उन मोतियों को

निकालकर एक स्थान पर उनको एक बार सजा दिया। उन्होंने सजग होकर एक ऐतिहासिक नाटककार के दायित्व को निबाहने की कोशिश की ।

प्रेमी ने इतिहास के खंडहरों में स्वच्छन्द विचरण करते हुए अतीत को पुनर्जीवित कर दिया। किन्तु प्राचीन का उद्घाटन मात्र करना उनका साध्य नहीं रहा। समसामयिक समस्याओं को अपनाने की सजगता उनमें थी। अनेक नाटकों में सुदूर अतीत के राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की झलक मिलने के साथ साथ समसामयिकता की भी गहरी छाप स्पष्ट दिखाई पड़ जाती है। उनके नाटक विगत 'कल' के द्वारा आज की कठिनाइयों का हल प्रस्तुत करते हैं। अतः ऐतिहासिक भूत द्वारा वर्तमान को प्रभावित करने का प्रयास ही उनके नाटकों का महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। हजारों वर्ष पूर्व की घटनाओं के चित्रण में वर्तमान स्थिति तथा आकुलता-व्याकुलता को स्पष्ट रूप से झलकाकर समाधान जुटा देना प्रेमी की लेखनी की एक महत् विशेषता है। डा॰कमलिनी मेहता का विचार महत्वपूर्ण है। वे लिखती हैं "प्रेमी ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधुनिक, राजनीतिक, धार्मिक, तथा सामाजिक समस्याओं का दुष्परिणाम सदियों की मैली चादर उतारकर दिखाया।"[1]

आधुनिक युग में नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की मशाल जलानेवाले साहित्यकारों में प्रेमी का स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होंने भारतीय संस्कृति की महानता से अनुप्राणित होकर भारतीय राष्ट्रीयता का सशक्त और उन्नत रूप अपने नाटकों में रखा है। उन्होंने अत्यन्त कला और कौशल से अतीत के उन युगों की परिस्थितियों को वर्तमान युग की पृष्ठभूमि बनाकर अपने युग की राष्ट्रीय चेतना का सफल नेतृत्व किया। देशभक्ति की दीपशिखा से आलिंगन करने के लिए आकुल होकर आगे बढ़नेवाले ऐतिहासिक महानुभावों

- -

1. नाटक और यथार्थवाद - डा॰कमलिनी मेहता - पृ॰213

के वीर चरित्रों का प्रचार कर प्रेमी ने आत्मविस्मृत जनता को जगाया, उनमें आत्मगौरव एवं चेतना के भाव पुनः जागृत किये।

ऐतिहासिक नाटकों की रचना द्वारा हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का सर्वाधिक प्रयास भी प्रेमी ने किया। गांधीजी के राष्ट्रवाद का जो उदात्त एवं महान रूप देश के सम्मुख रखा था उसमें भारत में बसनेवाली सभी जातियों तथा धर्मों का समाहार हो जाता था। इसीकी सुन्दर अभिव्यक्ति उनके नाटकों में हुई। अतः स्पष्ट होता है कि प्रेमी ने अपनी ऐतिहासिक कथाओं में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए प्रयत्नशील गांधीजी के प्रयासों का ही मूर्त किया है। उन्होंने जनता को साम्प्रदायिकता के उन्माद को छोड़ने, आपसी भेदभाव को भूलने एवं क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठने की प्रेरणा दी।

प्रेमी के नाटकों के मूल में मानवतावाद का महान् आदर्श भी निहित है। उन्होंने समग्र रूप से एक धर्म और एक राष्ट्र का आदर्श प्रस्तुत किया और लोगों को ऐक्य का महत्व समझाते हुए, एक जुट हो, अपने देश की उन्नति की दिशा में प्रयास करने की प्रेरणा दी। मानवता की हत्या करनेवाली प्रभुता को वे ठोकर मार देना चाहते थे। नारी स्थिति, वर्ण-व्यवस्था, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिक समस्या, विषम सामाजिक वस्तु-स्थिति, इन सभी संदर्भों में प्रेमी ने स्वस्थ मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है। उनके इसी सत्प्रयास में उनकी मानवतावादी दृष्टि का अवलोकन किया जा रहा है।

एक ऐतिहासिक नाटककार के रूप में हरिकृष्ण प्रेमी के महत्व निरूपण एवं उपलब्धियों के इस प्रकरण को हम यों समाप्त करते हैं कि [illegible] आधुनिक युग में भारतीय इतिहास की पूर्ण अथवा आंशिक रूप से उपेक्षित विविध घटनाओं को नाटक साहित्य के माध्यम से जनप्रेरणार्थ उपस्थित

उपस्थित करनेवाले साहित्यकारों में प्रेमी का स्थान महत्वपूर्ण है। राष्ट्र कल्याण, समाज कल्याण, तथा मानव का विकास करनेवाले तत्वों को अधिक स्थान देने के कारण उनके नाटकों का महत्व अधिक बढ गया है। अत: उनकी नाटकीय उपलब्धियाँ चिरस्मरणीय रहेंगी।

सहायक ग्रंथ - सूची

सहायक ग्रंथ-सूची

प्रबन्ध में चर्चित ऐतिहासिक नाटक

नाटक	नाटककार	प्रकाशक, संस्करण
1. अंतःपुर का छिद्र	गोविन्द वल्लभ पन्त	गंगा ग्रंथागार, लखनऊ तृतीय संस्करण 1962
2. अकबर गोरक्षा न्याय	जगतनारायण शर्मा	सदाशिव बाबाजी प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, 1895
3. अग्निशिखा	रामकुमार वर्मा	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली प्रथम संस्करण 1971
4. अजातशत्रु	जयशंकर प्रसाद	भारती भंडार, इलाहाबाद उन्नीसवां सं. 1962
5. अनीता	कंचनलता सब्बरवाल	किताब महल, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1959
6. अनारकली	पं. सीताराम चतुर्वेदी	अखिल भारतीय विक्रम परिषद् वाराणसी
7. अमर आन	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, जालन्धर प्रथम संस्करण 1964
8. अमर बलिदान	"	कौशाम्बी प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1968
9. अमरसिंह राठौर	राधाचरण गोस्वामी	मथुरा भूषण प्रेस
10. अमृतपुत्री	हरिकृष्ण प्रेमी	ज्ञान भारती, दिल्ली प्रथम संस्करण 1972
11. अशोक	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1963
12. अशोक	सेठ गोविन्ददास	एस. चन्द एण्ड कंपनी, दिल्ली 1961

	नाटक	नाटककार	प्रकाशन, संस्करण
13.	आचार्य विष्णुगुप्त	पं. सीताराम चतुर्वेदी	1965
14.	आन का मान	हरिकृष्ण प्रेमी	कौशाम्बी प्रकाशन, इलाहाबाद दूसरा संस्करण 1955
15.	आमेर की सरस्वती	शारदा मिश्र	गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथम सं. 1965
16.	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली तीसरा संस्करण 1975
17.	आहुति	हरिकृष्ण प्रेमी	इन्द्रचन्द्र नारंग, हिन्दी भवन इलाहाबाद पन्द्रहवां संस्करण 1962
18.	उत्सर्ग	चतुरसेन शास्त्री	
19.	उद्धार	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली चतुर्थ संस्करण 1956
20.	कर्बला	मुंशी प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस, वाराणसी
21.	कला और कृपाण	रामकुमार वर्मा	रामनारायण लाल बेनीमाधव प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता प्रयाग, दूसरा सं. 1968
22.	कवि भारतेन्दु	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1955
23.	काश्मीर का कांटा	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी आठवां सं. 1971
24.	कीर्तिस्तम्भ	हरिकृष्ण प्रेमी	राजपाल एण्ड सन्स
25.	कुणाल	कैलाशनाथ भटनागर	आर्य बुक डिपो, दिल्ली 1935
26.	कुलीनता	सेठ गोविन्ददास	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर लिमिटेड बंबई, पांचवां सं. 1955
27.	कोणार्क	जगदीशचन्द्र माथुर	भारत भारती, इलाहाबाद
28.	गरुड़ध्वज	लक्ष्मीनारायण मिश्र	गया प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा, 1948
29.	चन्द्रगुप्त	जयशंकर प्रसाद	भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, चतुर्दश सं.
30.	छाया	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली चतुर्थ सं. 1958

नाटक	नाटककार	प्रकाशक, संस्करण
31. जगद्गुरु	लक्ष्मीनारायण मिश्र	
32. जय पराजय	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद ग्यारहवां सं. 1963
33. जय सोमनाथ	पं. सीता राम चतुर्वेदी	अखिल भारतीय विक्रम परिषद् वाराणसी 1956
34. जहांदर शाह	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी चतुर्थ सं. 1963
35. जया	हरिहर प्रसाद जिज्ञासु	अगरवाल प्रेस, गया
36. झांसी की रानी	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी आठवां सं. 1962
37. तीन परम मनोहर- ऐतिहासिक रूपक	काशीनाथ खत्री	
38. तुलसीदास	बदरीनाथ भट्ट	रामकृष्ण पुस्तकालय, आगरा
39. दशाश्वमेध	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी भवन, इलाहाबाद सातवां संस्करण 1958
40. दाहर अथवासिन्धपतन	उदयशंकर भट्ट	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली दूसरा सं. 1962
41. दुर्गावती	बदरीनाथ भट्ट	गंगा ग्रंथागार, लखनऊ
42. ध्रुवस्वामिनी	जयशंकर प्रसाद	भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, सत्रहवां सं. 1962
43. नयी राह	हरिकृष्ण प्रेमी	सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली 1968
44. नाना फड़नवीस	रामकुमार वर्मा	रामनारायणलाल बेनीप्रसाद इलाहाबाद, 1962
45. पुरु विक्रम	लाला शालिग्राम वैश्य	वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
46. पूर्व की ओर	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी दसवां सं. 1962
47. प्रकाशस्तम्भ	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, इलाहाबाद दूसरा सं.
48. प्रताप-प्रतिज्ञा	जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द	हिन्दी भवन, इलाहाबाद अठारहवां सं.
49. प्रतिशोध	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, इलाहाबाद तीसरा सं. 1956

नाटक	नाटककार	प्रकाशक, संस्करण
50. प्रबुद्ध यामन	वियोगी हरी	गंगा पुस्तकमाला, कार्यालय, लखनऊ, 1929
51. बन्धन	हरिकृष्ण प्रेमी	इन्द्रचन्द नारंग, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, पाँचवां सं. 1956
52. बीरबल	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी पाँचवां सं. 1960
53. बादलों के पार	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड सन्स, ~~मानकचन्द बुक डिपो, उज्जैन~~ दूसरा सं. 1961 ~~1955~~
54. भग्न प्राचीर	हरिकृष्ण प्रेमी	मानकचन्द बुक डिपो, उज्जैन 1955
55. भारतेन्दु	सेठ गोविन्ददास	ओरियंटल बुक डिपो, नई दिल्ली
56. भारतेन्दु नाटकावली पहला भाग	सं. ब्रजरत्नदास	रामनारायणलाल, इलाहाबाद दूसरा सं. 1951
57. भारत-पराजय	हरिहर प्रसाद	अगरवाल प्रेस, गया
58. भिक्षु से गृहस्थ और गृहस्थ से भिक्षु	सेठ गोविन्ददास	भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली 1957
59. ममता	हरिकृष्ण प्रेमी	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली चतुर्थ सं. 1962 ~~1948~~
60. महात्मा ईसा	पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ सं. 1948
61. महात्मा गांधी	सेठ गोविन्ददास	भारतीय विश्वप्रकाशन, पन्ना र, 1959
62. महारानी पद्मावती	बाबू राधा कृष्णदास	साहित्यनिधि प्रेस, कलकत्ता
63. महाराणा प्रतापसिंह	"	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
64. मीरा बाई	बलदेव प्रसाद मिश्र	
65. मुक्तिदूत	उदयशंकर भट्ट	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
66. मृत्युंजय	लक्ष्मीनारायण मिश्र	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद तृतीय सं. 1973
67. रक्तदान	हरिकृष्ण प्रेमी	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1962
88. रहीम	सेठ गोविन्ददास	भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली

नाटक	नाटककार	प्रकाशक, संस्करण
69. रक्षाबन्धन	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, इलाहाबाद तीसवाँ सं. 1962
70. राजमुकुट	गोविन्दवल्लभ पन्त	गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, इक्कीसवाँ सं.
71. राज्यश्री	जयशंकर प्रसाद	भारती भंडार
72. रूपवती	परमेश्वर मिश्र	सिद्धेश्वर प्रेस, काशी
73. रेवा	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	राजपाल एण्ड सन्स, पाँचवाँ सं. 1961
74. ललित विक्रम	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झाँसी सातवाँ सं. 1963
75. लहरों का राजहंस	मोहन राकेश	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
76. वत्सराज	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी भवन, इलाहाबाद आठवाँ सं. 1959
77. विक्रमादित्य	उदयशंकर भट्ट	हिन्दी भवन, इलाहाबाद छठा सं. 1963
78. वितस्ता की लहरें	लक्ष्मीनारायण मिश्र	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली चतुर्थ सं. 1962
79. विदा	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, इलाहाबाद 1958
80. विशाख	जयशंकर प्रसाद	भारती भंडार, इलाहाबाद सातवाँ सं. 1956
81. विषपान	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली पाँचवाँ सं. 1958
82. वैशाली में वसन्त	लक्ष्मीनारायण मिश्र	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
83. शकविजय	उदयशंकर भट्ट	मसिजीवि प्रकाशन, नई दिल्ली तीसरा सं. 1955
84. शतरंज के खिलाड़ी	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली 1955
85. शपथ	हरिकृष्ण प्रेमी	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली दूसरा सं. 1954
86. शशिगुप्त	सेठ गोविन्ददास	एसल्कन्ड एण्ड कं., लखनऊ दसवाँ सं. 1960
87. शारदीया	जगदीशचन्द्र माथुर	सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

नाटक	नाटककार	प्रकाशक, संस्करण
88. शेरशाह	सेठ गोविन्ददास	भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली
89. शिवाजी	रामकुमार वर्मा	साहित्य भवन, इलाहाबाद सातवाँ सं. 1965
90. शिवसाधना	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, जालन्धर शहर आठवाँ सं.
91. संत तुलसीदास	रामकुमार वर्मा	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1973
92. संयोगिता स्वयंवर	श्रीनिवासदास	सार सुधानिधि प्रेस, कलकत्ता
93. संरक्षक	हरिकृष्ण प्रेमी	भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली 1958
94. संवत् प्रवर्तन	हरिकृष्ण प्रेमी	मानकचन्द बुक डिपो, उज्जैन 1959
95. सती चन्द्रावली	राधाचरण गोस्वामी	राजस्थान ग्रंथालय, जयपुर
96. साँपों की सृष्टि	हरिकृष्ण प्रेमी	बंसल एण्ड कंपनी, दिल्ली 1959
97. सिकन्दर	मुंशी सुदर्शन	केपी. जैन बोरा एण्ड कं. प्रकाशक प्राइवेट लि. बंबई
98. सिद्धार्थ	पं. सीताराम चतुर्वेदी	अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी, तृतीय सं. 1967
99. सेनापति पुष्यमित्र	"	टाउन डिग्री कॉलेज, बलिया 1966
100. सोरों का संत	रामदत्त भारद्वाज	ओरियंटल बुक डिपो, दिल्ली
101. स्कन्दगुप्त	जयशंकर प्रसाद	भारती भंडार, इलाहाबाद पंद्रहवाँ सं. 1964
102. स्वप्नभंग	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली चतुर्थ सं. 1952
103. हंसमयूर	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन झाँसी, छठा सं.
104. हम आजाद हुए	हरिकृष्ण प्रेमी	रघुवीर शरण बंसल, दरियागंज दिल्ली, दूसरा सं. 1961
105. हर्ष	सेठ गोविन्ददास	एस. चन्द एण्ड कंपनी, दिल्ली पाँचवाँ सं. 1960

गीतिनाट्य

रचना का नाम	रचयिता	प्रकाशक, संस्करण
106. दुल्ला भट्टी	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली 1960
107. मिर्जा साहब	,,	,,
108. सस्सी पुन्नु	,,	,,
109. स्वर्ण विहान	,,	सस्ता साहित्य मंडल, अजमीर
110. सोहनी महीवाल	,,	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, 1960

कविता

111. आँखों में	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, तीसरा सं. 1958
112. रूपरेखा	,,	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम सं. 1962
113. प्रतिदर्शन	,,	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, 1951
114. वेदना के बोल	,,	,, 1951

आलोचनात्मक ग्रंथ

ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक, संस्करण
1. आँचलिकता से आधुनिकता बोध तक	भगवती प्रसाद शुक्ल	ग्रंथम, कानपुर, प्रथम सं. 1972
2. आधुनिक साहित्य और [illegible] साहित्यकार	गणपतिचन्द्रगुप्त	भारतेन्दु भवन, चंडीगढ़ 1966
3. आधुनिकहिन्दी नाटक	डा. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1970
4. आधुनिक हिन्दी नाटक और नाट्यकार	डा. रामकुमार गुप्त	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्रथम सं. 1973
5. आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंग्लनाटकों का प्रभाव	डा. उपेन्द्रनारायणसिंह	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली 1970
6. आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्यसिद्धान्त	डा. निर्मला हेमन्त	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली 1973
7. आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ	डा. देवेश ठाकुर	मीनाक्षी प्रकाशन, बेगम ब्रिज मेरठ - 1974
8. आधुनिक हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्व	डा. ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड	पुस्तक संस्थान, कानपुर प्रथम सं. 1975
9. ऐतिहासिक उपन्यास : प्रकृति एवं स्वरूप	सं. गोविन्दजी	साहित्यवाणी, इलाहाबाद प्रथम सं. 1970
10. ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य	बी.एफ. चिन्तामणि	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी प्रथम सं. 1959
11. काव्य के रूप	गुलाबराय	
12 कौटिल्य का अर्थशास्त्र	अनु. वाचस्पति गैरोला	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी 1962

ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक, संस्करण
13. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव	डा. अरविन्द जोशी	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1973
14. चतुरसेन के उपन्यासों में इतिहास का चित्रण	डा. विद्याभूषण भारद्वाज	प्रकाश प्रतिष्ठान, मेरठ 1972
15. चिन्तामणि पहला भाग	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	
16. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली प्रथम सं. 1973
17. नवलेखन	डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी	ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी प्रथम सं. 1960
18. नव्य हिन्दी नाटक	डा. सावित्री स्वरूप	अभिनव प्रकाशन 1967
19. नाटककार अश्क	जगदीशचन्द्र माथुर	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम सं. 1954
20. नाटक और यथार्थवाद	कमलिनी मेहता	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पर्थम सं. 1968
21. नाटककार उदयशंकर भट्ट	मनोरमा शर्मा	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
22. नाटक के तत्व: सिद्धान्त और समीक्षा	विष्णुकुमार त्रिपाठी राकेश	स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद 1973
23. नाट्य निबन्ध	डा. दशरथ ओझा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली प्रथम सं. 1972
24. नाटक की परख	एस.पी. खत्री	साहित्य भवन, इलाहाबाद तृतीय सं. 1959
25. नाटककार सेठ गोविंददास	सावित्री शुक्ल	लखनऊ विश्वविद्यालय 1958
26. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी व्यक्तित्व और कृतित्व	शिवप्रकाश दीक्षित 'बटुक'	साहित्य सदन, दिल्ली प्रथम सं. 1960
27. प्रतिनिधि एकांकीकार	डा. रामचरण महेन्द्र	साहित्य सदन, देहरादून 1965
28. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक	डा. जगदीशचन्द्र जोशी	सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा

ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक, संस्करण
29. प्रसाद के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नाटकों का अनुशीलन	माधुरी वाजपेयी	भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी प्रथम सं. 1969
30. प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक	डा. भगवती प्रसाद शुक्ल	मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ एकाडमी भोपाल 1971
31. प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक		
32. भारतीय नाट्य साहित्य	सं. डा. नगेन्द्र	एसचंद एण्ड कं. नई दिल्ली, 1968
33. भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य अभिव्यक्ति	डा. सुषमा नारायण	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली 7
34. भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य	गोपीनाथ तिवारी	रामचन्द्र नारंग, हिन्दी भवन, इलाहाबाद
35. भारतेन्दु युगीन हिन्दी नाट्य साहित्य	भानुदेव शुक्ल	नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी
36. भारतेन्दु के नाटक	"	ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर 1972
37. रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन	शीला सक्सेना	भारती प्रकाशन, लखनऊ प्रथम सं. 1972
38. राष्ट्रीयता और हिन्दी नाटक	डा. विष्णुराम मिश्र	रचना प्रकाशन, इलाहाबाद 1973
39. लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक	डा. शत्रुघ्न प्रसाद	हिन्दी साहित्य संसार, पटना, प्रथम सं. 1967
40. लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक	उमेश चन्द्र मिश्र	साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद 1959
41. लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक	डा. शत्रुघ्न प्रसाद	हिन्दी साहित्य संसार, पटना प्रथम सं. 1967
42. समीक्षात्मक निबन्ध	विजयेन्द्र स्नातक	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली प्रथम सं. 1957

	ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक, संस्करण
43.	समीक्षा शास्त्र	डा दशरथ ओझा	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली तृतीय सं. 1963
44.	साहित्यिक निबन्ध	राजनाथ शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर आगरा एकादश सं. 1969
45.	साहित्य और आधुनिक युग बोध	देवेन्द्र इस्सर	कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर प्रथम सं. 1973
46.	साहित्य का समाजशास्त्रीय मान्यता और स्थापना	श्रीराम मेहरोत्रा	रचना प्रकाशन, बनारस
47.	सेठ गोविन्ददास : नाट्य कला तथा कृतियाँ	रामचरण महेन्द्र	भारती साहित्य मंदिर-दिल्ली 1956
48.	हमारे नाटककार	राजेन्द्रसिंह गौड	श्रीराम मेहरा एण्ड कं.आगरा 1958
49.	हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	डा. रणवीर उपाध्याय	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1966
50.	हिन्दी और तेलुगु के पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	डा चलसानि सुब्बाराव	प्रगति प्रकाशन, प्रथम सं.1970
51.	हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन	डा.लक्ष्मीनारायण भारद्वाज	रा जैन प्रकाशन, दिल्ली, 1974
52.	हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक : तुलनात्मक विवेचन	प्रो. भूपटकर	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1970
53.	हिन्दी कथासाहित्य में इतिहास	डा.लक्ष्मीनारायण गार्ग	अभिनव भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1974
54.	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास	सत्यपाल चुघ	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली प्रथम सं. 1974

ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक, संस्करण
55. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास	डा० रामनारायणसिंह माथुर	ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर
56. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग	गोविन्दजी	कल्पना प्रकाशन4 मेरठ प्रथम सं० 1974
57. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व	डा०धनंजय	रचना प्रकाशन, इलाहाबाद 1970
58. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक	डा०दशरथसिंह	विद्या मंदिर, वाराणासी 1962
59. हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन	डा०रमा सेनगुप्त	कमल प्रकाश, इंदौर 1971
60. हिन्दी नाटक	बच्चनसिंह	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय सं० 1967
61. हिन्दी नाटककार	जयनाथ नलिन	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली दूसरा सं० 1961
62. हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण मिश्र	बच्चन त्रिपाठी	382, सी० बड़ी पियरी, वाराणासी, प्रथम सं०संवत्2025
63. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास	दशरथ ओझा	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली तृतीय सं०
64. हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार	रामचरण महेन्द्र	सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा प्रथम सं० 1955
65. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन	सं०महेन्द्र	साहित्यरत्न भंडार, आगरा प्रथम सं० 1967
66. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन	गिरीश रस्तोगी	ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर प्रथम सं० 1967
67. हिन्दी नाटक कोश	सं०दशरथ ओझा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली प्रथम सं० 1975

ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक, संस्करण
68. हिन्दी नाटक: पुनर्मूल्यांकन	डा.सत्येन्द्र तनेजा	ग्रंथम, कानपुर 1971
69. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास	डा.सोमनाथगुप्त	हिन्दी भवन, इलाहाबाद चौथा सं. 1958
70. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन	वेदपाल खन्ना 'विमल'	श्री भारत भारती प्रा.लि. दिल्ली, 1958
71. हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन	शान्ति गोपाल पुरोहित	साहित्य सदन, देहरादून 1964
72. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास	डा.शान्ति मालिक	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1971
73. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि	गिरिजा सिंह	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1970
74. हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव	डा.श्रीपती शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1961
75. हिन्दी त्रासदी सिद्धान्त और परंपरा	कैलाशपति ओझा	साहित्य सदन, देहरादून प्रथम सं. 1968
76. हिन्दी बंगला नाटक	डा.महेश्वर	माकमिलन कं. आफ इंडिया लि. कलकत्ता, 1974
77. हिन्दी वाङ्मय: बीसवीं शती	सं. डा.नगेन्द्र	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा प्रथम सं. 1972
78. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य	सच्चिदानंद वात्स्यायन	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
79. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-एकादश भाग	सं. सावित्री सिन्हा डा.दशरथ ओझा डा.लक्ष्मीनारायण लाल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्रथम सं. संवत् 2029
80. हिन्दी साहित्य का इतिहास	सं.डा. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
81. हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा.रामचन्द्रशुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
82. हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों का आलोचनात्मक अध्ययन	डा.रूपचन्द पारिख	सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा 3 प्रथम सं. 1972

इतिहास ग्रंथ

ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक, संस्करण
83. अतीत से वर्तमान	राहुल सांकृत्यायन	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी -दूसरा सं. 1965
84. इतिहास दर्शन	बुद्ध प्रकाश	हिन्दी समिति, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, द्वितीय सं. 1968
85. औरंगजेब	यदुनाथ सरकार	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, दिल्ली 1970
86. गुप्त सम्राट और उनका काल	उदयनारायण राय	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1971
87. गुप्त साम्राज्य का इतिहास	वासुदेव उपाध्याय	इंडियन प्रेस पब्लिकेशन प्रा.लि. इलाहाबाद, तृतीय सं. 1969
88. ग्राण्ड डफ लिखित मराठों का इतिहास	अनु. कमलाकर तिवारी	इतिहास प्रकाशन संस्था, इलाहाबाद 1965
89. चन्द्रगुप्त मौर्य और उनका काल	डा. राधा कुमुद मुकर्जी	राजकमल प्रकाशन, लि. नयी दिल्ली, 1962
90. जोधपुर राज्य का इतिहास	डा. नीलाल व्यास	पंचशील प्रकाशन जयपुर 1975
91. टाड कृत राजस्थान का इतिहास	अनु. केशवकुमार ठाकुर	आदर्श हिन्दी पुस्तकालय 1965
92. दिल्ली सल्तनत	आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव	शिवलाल अगरवाल एण्ड कं. आगरा, दसवाँ सं. 1974
93. नंद मौर्य युगीन भारत	नीलकंठ शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1969
94. प्राचीन भारत	राधाकुमुद मुकर्जी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम सं. 1961
95. प्राचीन भारत -इतिहास और संस्कृति	बी.जी.गोखले	एशिया पब्लिशिंग हाउस, मद्रास
96. प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास	रतिभानुसिंह नाहर	किताब महल, इलाहाबाद दूसरा सं. 1961
97. प्राचीन भारत का इतिहास	डा. रमाशंकर त्रिपाठी	मोतीलाल बनारसीदास पाँचवा सं. 1968

ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक- संस्करण
98. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास	गोरेलाल तिवारी	नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस 1933
99. भारत का इतिहास	क्षितीश्वर प्रसाद सिंह	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, कलकत्ता, आठवां सं.
100. भारतीय इतिहास का परिचय	डा.राजबली पांडेय	चौखम्भा विद्या भवन, बनारस दूसरा सं. 1963
101. भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण	के.एम.पणिक्कर	एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई तृतीय सं. 1957
102. भारतीय इतिहास की रूपरेखा	रतिभानुसिंह नाहर	किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद 1961
103. भारत का राजनीतिक इतिहास	राजकुमार	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
104. भारतवर्ष का संपूर्ण इतिहास (पहला और दूसरा भाग)	श्रीनेत्र पांडेय	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ सं.
105. भारतवर्ष का बृहत् इतिहास पहला भाग	पं. भगवद्दत्त	इतिहास प्रकाशन मंडल, नई दिल्ली, दूसरा सं. 1961
106. भारत वर्ष का सैन्य इतिहास	यदुनाथ सरकार अनु. सुशील कुमार त्रिवेदी	मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ एकादमी 1971
107. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ	केशवकुमार ठाकुर	आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद तीसरा सं. 1967
108. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर	विनायक दामोदर सावरकर	राजधानी ग्रंथागार, नई दिल्ली,
109. मुगलकालीन भारत	डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव	शिवलाल अगरवाल एण्ड कं. आगरा
110. मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण (पहला और दूसरा भाग)	इन्द्र विद्या वाचस्पति	हिन्दी रत्नाकर कार्यालय, बंबई

ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक, संस्करण
111. मुस्लिम शासन का इतिहास	एस.आर. शर्मा	लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा, चतुर्थ सं. 1971
112. राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त	शिवलाल अगरवाल एण्ड कं. दूसरा सं. 1962
113. वकाटक गुप्तयुग	सं. रमेशचन्द्र मजुमदार ए.एस. अल्तेकर	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
114. विक्रमादित्य: संवत् प्रवर्तन	डा. राजबली पांडेय	चौखम्भा विद्याभवन, बनारस 1959
115. विश्व इतिहास की झलक (पहला और दूसरा भाग)	जवाहरलाल नेहरू	सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली तृतीय सं. 1962
116. सन् सत्तावन की क्रान्ति	डा. रामविलास शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर, 1957
117. स्वतंत्र दिल्ली (1857)	डा. सैयद अतहर अब्बास रिजवी	हिन्दी समिति-लखनऊ दूसरा सं. 1968
118. सारनाथ का इतिहास	भिक्षु धर्मरक्षित	नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस 1961
119. हमारा राष्ट्रीय आंदोलन तथा संवैधानिक विकास	डा. रामानन्द अग्रवाल	मैट्रोपालिटन बुक कं. दिल्ली तृतीय सं. 1968
120. हिन्दू भारत	रतिभानुसिंह नाहर	किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद
121. हिन्दू सभ्यता	राधा कुमुद मुकर्जी अनु. वासुदेवशरण अग्रवाल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली चतुर्थ सं. 1966

स—मा—प्त

CRITICISM BOOKS (ENGLISH)

122.	An Introduction to the Study of Literature	William Hentry Hudson	George G. Harrap & Co. Ltd. Sydney, 1910.
123.	British Drama	Allardyce Nicoll	George G. Harrap & Co., Ltd., Sydney 5th Edn. 1962.
124.	Shakespear's History Plays	E.M.W. Tillyard	
125.	The Art of Drama	Ronald Peacock	Routledge & Kegan Paul, London 1957
126.	What is Art	Leo Tolstoy	
127.	World Drama	Allardyce Nicoll	George G. Harrap & Co., Ltd., Sydney, 1949.

HISTORY BOOKS (ENGLISH)

128.	A Survey of Indian History	K.M. Panicker	Asia Publishing House, Bombay, 4th Edn. 1964.
129.	A Study of History Abridgment	Arnold Toynbee	Oxford University Press, London, 1960.
130.	Ancient Historical Tradition	F.E. Pargitter	Motilal Banarasi das, Patna, 1962.
131.	Bihar Through Ages	R.R. Divakar	Orient Longmans, Bombay, 1959.
132.	Chandraguptha Maurya and His Times	Dr. R.K. Mookerji	Motilal Banarasi Das, Patna,
133.	Glimpses of World History	Jawaharlal Nehru	Asia Publishing House, Bombay.
134.	History and Culture of Indian People - Age of Imperial Unity.	Gen. Editor, Majumdar,	Bharathiya Vidya Bhavan, Bombay.

15.	listory of Shahjahan f Delhi	Banarasi Prasad Saxena	
16.	ıdia since Independence	V.D. Mahajan	S. Chand & Co., Bombay, 7th Edn. 1964.
17.	Ilia - What it Teaches U	Max Muller	
18.	Oxrd History of India	Vincent A. Smith	Oxford University London, 3rd Edn.,
19.	Ri and Fall of Mughal Emle	R.P. Tripathi	Central Books Depot, Allahabad 3rd Edn. 1963.
10.	Risf the Maratha Pow	Mahadeo Govind Ranade	Publication Division, Ministry of Information & Broadcasting 1961.
11.	Sepoitiny	R.C. Majdumdar	Firma K.L. Mahopadhya Calcutta, 2nd Edn. 1963.
12.	Shivand his Times	Jadunath Sarkar	Orient Longman Ltd., Madras.
13.	The Cical Age - Histoid Culture of Indianple		Bharatiya Vidya Bhavan, Vol.III.
14.	The Caige History of India . V - British India, VI. The Indian Empire	H.H. Dodwell	Chand & Co, New Delhi, 1968.
15.	The Disy of India	Jawaharlal Nehru	Asia Publishing House, Bombay, 1961.
16.	The Histoi culture of Indian P - The Delhi Sultanat	R.C. Majumdar	Bharatiya Vidya Bhavan
17.	The Wondt was India	A.L. Basham	Orient Longmans Ltd., Poona, 1963.